

योग— वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक—तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन



पी—एच.डी. (वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध—प्रबन्ध

शोध निर्देशक

शोधार्थी

डॉ. प्रभाकर पाण्डेय
विभागाध्यक्ष

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

महादेवी चतुर्वेदी
पीएच.डी.

पंजीयन संख्या.— En21-00002

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन प्राध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध—भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची, रायसेन (म.प्र.)

2025

योग— वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक—तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन



पी—एच.डी. (वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध—प्रबन्ध

शोध निर्देशक

शोधार्थी

डॉ. प्रभाकर पाण्डेय
विभागाध्यक्ष

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

महादेवी चतुर्वेदी
पीएच.डी.

पंजीयन संख्या.— En21-00002

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन प्राध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध—भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची, रायसेन (म.प्र.)

2025

शोध—निदेशक प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि शोध विषय “योग— वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक—तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन” महादेवी चतुर्वेदी द्वारा किया गया शोध कार्य है, जिसे साँची बौद्ध—भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में पी—एच.डी. (वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग) उपाधि के लिये मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार—

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह शोध कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मापदण्डों एवं निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की पी—एच.डी. की उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान : साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.वि., साँची, म.प्र

दिनांक

हस्ताक्षर

शोध निर्देशक
डॉ. प्रभाकर पाण्डेय

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

शोधार्थी द्वारा घोषणा पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि यह शोध-कार्य "योग— वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक—तत्वों का समीक्षात्मक अध्ययन" डॉ. प्रभाकर पाण्डेय (शोध निर्देशक) विभागाध्याक्ष, 'वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग' के निर्देशन में किया गया है। यह मेरा मौलिक शोध कार्य है, जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबन्ध में किसी भी प्रकार का ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

साथ ही मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि—

1. मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2009 के मापदण्डों के अनुसार कोर्सवर्क सफलतापूर्वक पूर्ण किया है।
2. मैंने शोध प्रबन्ध अन्तिम रूप से जमा करने के पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति दी है और दिये गये निर्देश एवं सुझावों के आधार पर संशोधन को अपने शोध कार्य में सम्मिलित किया है।
3. मैंने शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित दो शोध पत्रों का प्रकाशन ISSN/रेफर्ड जनरल में कराया है जिसकी छायाप्रति शोध प्रबन्ध के अन्त में संलग्न है। मैंने शोध विषय से सम्बन्धित राष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किया है।
4. साथ ही मैं यह घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कोई भी कंटेंट, किसी अन्य शोध प्रकाशित सामाग्री का हिस्सा नहीं है, यदि साहित्यिक चोरी के अन्तर्गत कोई भी कंटेंट पाया जाता है, तो उसके लिये मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगी।

स्थान : सँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.वि., सँची, म.प्र

दिनांक

शोधार्थी
महादेवी चतुर्वेदी

पीएच.डी.

पंजीयन संख्या .— En21-00002

सर्वाधिकार

मैं महादेवी चतुर्वेदी एतद्वारा घोषणा करती हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन, मध्यप्रदेश द्वारा इस शोध-प्रबन्ध "योग- वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक-तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन" को शैक्षणिक/ अनुसन्धान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने का अधिकारी होगा।

नोट : शोधार्थी अथवा अन्य द्वारा शोध-प्रबन्ध के आँकड़ों/निष्कर्ष का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए।

स्थान : साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.वि., साँची, म.प्र

दिनांक

हस्ताक्षर

शोध निर्देशक

डॉ. प्रभाकर पाण्डेय

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग

शोध मौलिकता प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध "योग- वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में शैक्षिक-तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन" डॉ. प्रभाकर पाण्डेय की साहित्यिक प्रतिबद्धता की जाँच निम्नलिखित उपकरण से की गयी है। मैं यह घोषणा करती हूँ कि—

1. शोध-प्रबन्ध ज्ञान के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह शोध-प्रबन्ध इस विषय में अब तक किये गये कार्य/प्रकाशित/अप्रकाशित होने वाले कार्यों से भिन्न है। किसी भी प्रकार का वाक्य, चित्र, आरेख, अनुच्छेद कहीं से भी नकल नहीं है, तथा जहाँ भी किसी पूर्व के कार्यों का उल्लेख शोध-प्रबन्ध में किया गया है, उसे उद्धरण चिन्ह के अन्तर्गत रखा गया है।
2. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य है (किसी भी कार्य का नकल नहीं है)। शोधार्थी द्वारा किसी अन्य के कार्यों, संकल्पना, प्रक्रिया, परिणाम को अपने शोध-कार्य में दावा नहीं किया गया है।
3. शोध-कार्य के परिणाम एवं विश्लेषण में किसी भी प्रकार की मिथ्या धारणा का सहारा नहीं लिया गया है।
4. शोध-कार्य में किसी भी अनुसन्धान सामग्री, उपकरण या प्रक्रियाओं या परिणामों की अदला-बदली के माध्यम से गलत परिणाम आते हैं, शोध-कार्य में ऐसा कोई भी प्रयास नहीं है।
5. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (उच्चतर शिक्षा संस्थानों में अकादमिक सत्यनिष्ठ एवं साहित्यिक चोरी की रोकथाम को प्रोत्साहन) विनियम, 2018 के दिशा-निर्देश के अनुसार शोध-प्रबन्ध की जाँच DrillBit के द्वारा की गई है।

महादेवी चतुर्वेदी

शोधार्थी

पंजीयन संख्या .- En21-00002



The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language

Hindi

Submission Information

Author Name	Mahadevi Chaturvedi
Title	श्रीमद्भगवद्गीता एवं योग वाशिष्ठ के शैक्षिक तत्त्वों का अध्ययन
Paper/Submission ID	3396331
Submitted by	coordinator.inflibnet@subis.edu.in
Submission Date	2025-03-12 11:02:06
Document type	Thesis

Result Information

Similarity	9%
------------	----

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File





DrillBit Similarity Report

9	16	A	A-Satisfactory (0-10%) B-Upgrade (11-40%) C-Poor (41-60%) D-Unacceptable (61-100%)	
SIMILARITY %	MATCHED SOURCES	GRADE		
LOCATION	MATCHED DOMAIN	%	SOURCE TYPE	
1	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	3	Publication	
2	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	2	Publication	
3	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	2	Publication	
4	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	2	Publication	
27	Paper Submitted to Siddharth University	<1	Student Paper	
28	Paper Submitted to Mahatama Gandhi Gramodaya Vishwavidyalaya, Chitrakoot, Satna	<1	Student Paper	
32	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication	
36	Paper Submitted to Hemchand Yadav Vishwavidyalaya, Durg	<1	Student Paper	
37	Paper Submitted to Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur	<1	Student Paper	
41	Paper Submitted to Dr. Rammanohar Lohia Avadh University, Ayodhya	<1	Student Paper	
44	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication	
45	Paper Submitted to Magadh University, Bodh Gaya	<1	Student Paper	
46	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication	

47	Paper Submitted to Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi	<1	Student Paper
50	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
52	Paper Submitted to University of Allahabad	<1	Student Paper

EXCLUDED SOURCES

5	Paper Submitted to Banaras Hindu University	2	Student Paper
6	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	1	Publication
7	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	1	Publication
8	Paper Submitted to Magadh University, Bodh Gaya	1	Student Paper
9	Paper Submitted to Shri Khushal Das University	1	Student Paper
10	Paper Submitted to Banaras Hindu University	1	Student Paper
11	Paper Submitted to Banaras Hindu University	<1	Student Paper
12	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
13	Paper Submitted to Magadh University, Bodh Gaya	<1	Student Paper
14	Paper Submitted to Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga	<1	Student Paper
15	Paper Submitted to Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga	<1	Student Paper
16	Paper Submitted to Banaras Hindu University	<1	Student Paper
17	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
18	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
19	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication

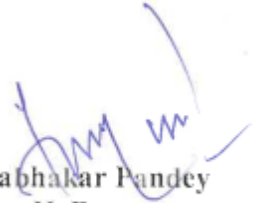
2075
No/AE&HD/SUBIS/2024

Sanchi, Date: 04/11/2024

Certificate

TO WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that **Mahadevi Chaturvedi** having Enrollment Number/Registration Number En21-00002 in the Department of Alternative Education & Holistic Development, School of Sanatan Dharm and Indic Studies, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Sanchi, Raisen, Madhya Pradesh, has Made **Pre-Ph.D. Presentation Seminar** on 07/10/2024 on our University Campus under the supervision of **Dr. Prabhakar Pandey** before the DRC members, faculty members and research Scholars for feedback and comments according to UGC Regulation 2016 on his Research topic "योग-वाशिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक - तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन".



Dr. Prabhakar Pandey
HoD

Department of Alternative Education & Holistic Development
SUBIS, Sanchi

आभार

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः

गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, और गुरु ही भगवान शंकर हैं. गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं ऐसे गुरु के चरणों में मेरा प्रणाम ।

वर्तमान जीवन की मनरुस्थिति व कार्य स्थिति ही भविष्य को निर्धारित करती है भविष्य को और आधिक श्रेष्ठ, सुन्दर, सुखमय व समृद्ध बनाने की मनुष्य में अंतर्निहित लालसा ने उसे निरन्तर सत्य शोधन तथा अन्वेषण सुखी बनाये रखा है और शिक्षा की परिधि में यह गतिशील प्रक्रिया ही मनुष्य को समग्र विकास कराती है शिक्षक उस कलाकार की तरह होता है जी मिट्टी को इच्छानुरूप आकर प्रदान करता है जैसे मिट्टी से घड़ा, दीपक आदि ऐसे ही एक आचार्य आपने शिष्यों को एक अत्यंत ही सुन्दर स्वरूप प्रदान करता है ।

मेरा शोध कार्य प.पूज्यनीय सच्चा बाबा जी महाराज की आसीम कृपा से शोध कार्य पूर्ण किया ।

आभार शृंखला के इस क्रम में मैं साँची बौद्ध भारतीय—ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय के कुलगुरु प्रो.वैद्यनाथ लाभ सर जी महोदय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके नेतृत्व में शोध छात्रा को उत्तम शैक्षणिक वातावरण प्राप्त हुआ साथ ही मैं समय-समय पर शोध सम्बंधित मार्गदर्शन हेतु कुलसचिव और अधिष्ठाता महोदय प्रो. नवीन मेहता सर जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने विभिन्न प्रकार से मौलिक सुझाव देकर मुझे मार्गदर्शन प्रदान किया ।

इसके साथ ही मैं अपने शोध निर्देशक डॉ. प्रभाकर पाण्डेय सर जी, (विभागाध्यक्ष वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग), साँची बौद्ध भारतीय—ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय साँची (म.प्र.) के प्रति नम्र भाव से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध विषय के चयन से लेकर शोध कार्य पूर्ण करने पर्यंत पूर्ण रूप से मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान किया । आपने आपकी विद्वता एवं आशीष को देकर मेरे शोध कार्य को पूर्ण करने में मदद की। इसलिए आपके प्रति विनम्र भाव से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

साँची बौद्ध भारतीय-ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय साँची के वैदिक अध्ययन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. देवेन्द्र सिंह सर और बौद्ध अध्ययन विभाग के डॉ. रमेश रोहित सर के प्रति मैं हृदय से आभार प्रगट करती हूँ, शोध के समय पर उनका मौलिक मार्गदर्शन एवं सानिध्य प्राप्त होता रहा । साथ में मैं समस्त आचार्यों और लाइब्रेरी के हरीश असाठी सर, अमित ताम्रकार सर लिपिक विभाग के श्री धम्मदीप सहारे जी, मितिका शर्मा मैम के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ ।

प्रो.जे.एस.दूवे सर जी, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के प्रो. अम्बिका दत्त शर्मा सर जी, प्रो.राजीव रंजन सर जी , डॉ.अरुण साव सर जी, डॉ.तुषार कान्त शास्त्री सर के प्रति जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने में अपने विद्वत्ता पूर्ण निर्देशक मार्गदर्शक एवं सुझाव दिया ।

मैं मेरे प्रेरणा के स्रोत आदरणीय दादा जी डॉ. प्रभाकर चतुर्वेदी जी की विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मुझे मानसिक रूप से सशक्त व सबल बनाया तथा इनके पारमार्थिक कार्यों से मुझे प्रोत्साहन व उत्साह भी प्राप्त हुआ ।

शोध के समग्र आयामों में उनका मुझे हृदय पूर्वक सहयोग मिला मेरे परम् साथी शिवम् मिश्रा जी ।

मैं अपने माता श्रीमती शशिकला चतुर्वेदीजी एवं पिता पवन कुमार चतुर्वेदी जी और समस्त परिवारजनों दादीजी, भाई, बहन, चाचाजी डॉ, श्री राम जी, चाचीजी डॉ. रिशु जी सभी जनो के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके आशीर्वाद से मैं अपने शोध को पूर्ण कर पायी ।

मेरे शोध कार्य में यथा सम्भव मदद करने वाले विभाग के मित्र बृजेश नामदेव, शुभम वर्मा, रास बिहारी, डॉ.मनेन्द्र दीदी, हरीश आप सब का भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। इसी प्रकार से मैं डॉ.विनय तिवारी, डॉ.महेंद्र शर्मा, डॉ.अंकित शर्मा, डॉ.प्रवेश जाटव, डॉ. विकाश आर्य, डॉ.पुष्पलता, अंकित पाण्डेय, अमन, भूपेंद्र आपसब के प्रति भी मैं हृदय से आभार प्रगट करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर मदद की ।

अन्त में उन सभी ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों, शोध पत्र एवं शोधार्थियों, कर्मचारियों का मैं आभारी हूँ जिनका इस शोध कार्य को सम्पन्न करने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से यत्किंचित सहयोग प्राप्त हुआ। इस शोध—प्रबन्ध की पूर्णता मेरे स्वयं के प्रयास से संभव नहीं थी। अतः इस शोध—प्रबन्ध के कार्य में जिन महानुभावों का मार्गदर्शन, निर्देशन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करना परमकर्तव्य एवं सौभाग्य समझती हूँ।

सादर धन्यवाद

शोधार्थी

महादेवी चतुर्वेदी

वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास

अनुक्रमणिका

अध्याय	पृ.सं.
शोध-निदेशक प्रमाण पत्र	i
शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र	ii
सर्वाधिकार	iii
शोध मौलिकता प्रमाण-पत्र	iv
Pre-Submission Seminar Completion Certificate	viii
आभार	ix-xi
प्रथम अध्याय - प्रस्तावना	1-40
1.1 अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं रूपरेखा	1
1.1.1 योग का परिचय	2
1.1.2 यौगिक ग्रंथों का परिचय	18
1.1.3 शिक्षा का स्वरूप	27
1.1.4 योगशास्त्र में ज्ञान का स्वरूप और उसका शैक्षिक महत्व	31
1.2 शोध की आवश्यकता	35
1.3 शोध के उद्देश्य	37
1.4 शोधप्रश्न	38
1.5 शोध प्रविधि	39
द्वितीय अध्याय - योग-वाशिष्ठ के शैक्षिक और दार्शनिक दृष्टिकोण	41-80
2.1 योग-वासिष्ठ का परिचय	41

2.1.1	ग्रंथ की प्रमाणिकता	43
2.1.2	योग-वाशिष्ठ के रचयिता एवं रचनाकाल	44
2.1.3	योग-वाशिष्ठ अध्याय परिचय	46
2.1.4	योग-वाशिष्ठ के संबंध में मनीषियों का दृष्टिकोण	54
2.2	योग-वाशिष्ठ में शिक्षा की अवधारणा	57
2.3	योग वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान का महत्त्व	58
2.4	मानसिक स्थिरता और ध्यान की शिक्षा-	65
2.5	योग- वासिष्ठ में गुरु -शिष्य परम्परा का महत्त्व	77
तृतीय अध्याय - श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक और दार्शनिक दृष्टिकोण		81-126
3.1	श्रीमद्भगवद्गीता का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य	81
3.1.1	अध्याय विभाजन	85
3.1.2	श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा की अवधारणा	86
3.2	ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्ति योग की शिक्षा	88
3.3	ध्यान, आत्म-नियंत्रण और मानसिक स्थिरता की शिक्षा	95
3.3.1	ध्यान के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में स्थान आहार का वर्णन किया गया है	96
3.3.2	मानसिक स्थिरता की शिक्षा -	101
3.4	भगवद्गीता में नैतिकता और जीवन के उद्देश्य की शिक्षा	103
3.5	शिक्षण विधियाँ और गुरु-शिष्य संवाद	109
3.5.1	श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा का उद्देश्य:	111
3.5.2	शिक्षण विधियाँ-	112
3.5.3	शिक्षक	119

3.5.4	शिक्षार्थी और शिष्य सम्बन्ध	122
3.5.5	शिक्षक से सम्बन्धित अपेक्षार्यः-	126
चतुर्थ अध्याय - योग-वासिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्त्वों की समीक्षा		127-152
4.1	आत्म-ज्ञान का महत्त्व	128
4.1.1	समत्व भाव की महानता:	130
4.1.2	सर्वस्व त्याग की भावना	131
4.2	गुरु-शिष्य परंपरा	133
4.3	कर्म योग की शिक्षा	137
4.4	ध्यान और मानसिक स्थिरता	140
4.5	शिक्षा की आधुनिक प्रासंगिकता	144
4.5.1	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता	147
पंचम अध्याय - उपसंहार एवं सुझाव		153-176
5.1	शोध सारांश	154
5.2	शैक्षिक तत्त्वों की उपादेयता	159
5.3	वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सुझाव	164
5.4	भविष्य के अनुसंधान के लिए सुझाव	168
5.5	निष्कर्ष	171
5.5.1	आत्म-ज्ञान, निष्काम कर्म, गुरु-शिष्य परंपरा, और ध्यान की प्रासंगिकता	171
5.5.2	आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भारतीय तत्त्वों का समावेश	171

5.5.3	शिक्षा का उद्देश्य: नैतिकता, आत्म-ज्ञान, और सामाजिक जिम्मेदारी	172
5.5.4	भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक शिक्षा के बीच संतुलन	172
5.5.5.	शिक्षा का शाश्वत और समग्र स्वरूप	172
5.5.6	नैतिकता का पुनर्स्थापन और सामाजिक समरसता	173
5.5.7	शिक्षा और आध्यात्मिकता का समन्वय	173
5.5.8	शिक्षा में वैराग्य और समत्व का महत्व	173
5.5.9	शिक्षा में संवाद और तर्कशीलता का महत्व	174
5.5.10	शिक्षा में ध्यान और योग का स्थान	174
5.5.11	शिक्षा का उद्देश्य: मानवता और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी	174
5.5.12	भारतीय शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक पुनरुत्थान	175
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची		177-183

परिशिष्ट

પ્રથમ અધ્યાય
પ્રસ્તાવના

अध्याय-1

प्रस्तावना

1.1 अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं रूपरेखा

भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीय उपमहाद्वीप में हजारों वर्षों में विकसित ज्ञान, विश्वास और परंपराओं का एक समृद्ध और विविध संग्रह है। यह वेदों, उपनिषदों और पुराणादि ग्रंथों में निहित है जो काल क्रम में विभिन्न साधना पद्धतियों के माध्यम से विकसित हुई है। भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक प्रमुख पहलू जीवन के प्रति उसका समग्र दृष्टिकोण है। यह व्यक्ति से लेकर समाज तक, मनुष्य से लेकर प्रकृति तक और भौतिक से लेकर आध्यात्मिक तक के सभी पहलुओं के परस्पर संबंध को स्वीकार करता है। इसका एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू अवलोकन और व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने पर जोर देना है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली परम्पराओं और दर्शन का प्राचीन और समृद्ध संग्रह है जो भारत में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। इसमें विज्ञान, आध्यात्म, कला, साहित्य और सामाजिक मानदंड जैसे विभिन्न क्षेत्र शामिल हैं। इसने भारतीय समाज और संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय ज्ञान प्रणाली की नींव वेदों में निहित है। जिन्हें विश्वकासबसे पुराना शास्त्र माना जाता है।¹

भारतीय ज्ञान परम्परा का विकास वेदों और उपनिषदों से लेकर आधुनिक काल तक एक सतत प्रक्रिया रही है। यह परम्परा न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक चिंतन को समृद्ध करती है, बल्कि वैज्ञानिक, साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी इसका व्यापक प्रभाव रहा है। वेदों में ज्ञान की नींव रखी गई, जिन्हें 'अपौरुषेय' और 'श्रुति' कहा गया। इनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद। ऋग्वेद के सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति पर चिंतन करते हुए कहा गया है-

"नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्"(ऋग्वेद 10.129.1)

¹ Education.gov.in.(2023, September 13). Indian Knowledge Systems. Retrieved from [www.education.gov.in: https://www.education.gov.in/nep/indian-knowledge-systems](https://www.education.gov.in/nep/indian-knowledge-systems)

इस सूक्त में ब्रह्मांड की उत्पत्ति के रहस्यों पर विचार करते हुए यह बताया गया है कि प्रारंभ में न तो कुछ अस्तित्व में था और नही कुछ अनस्तित्व में। यह अद्वितीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण भारतीय चिंतन की गहराई को दर्शाता है। इसी क्रम में भारतीय ज्ञान परम्परा में योग को विश्व की सबसे बड़ी देन माना जाता है। जिस प्रकार शून्य के आधार पर आधुनिक विज्ञान स्थापित हुआ उसी तरह आधुनिक जीवन का आधार भी योग बन गया है। योग की यह परम्परा प्रत्येक युग एवं काल में रही है। इसका प्रमाण हमें तत्कालीन ग्रंथों से प्राप्त होता है, जिसमें उच्चस्तरीय योग की क्रियाएँ परिलक्षित होती हैं।

1.1.1 योग का परिचय

योग प्राचीनकाल से ही भारतीय वाङ्मय का अभिन्न अंग रहा है, जिसका प्रमाण हमें भारतीय ज्ञान परम्परा की विरासत में मिलता है। यह एक आध्यात्मिक विज्ञान है जो मन, शरीर और आत्मा को संतुलित बनाये रखता है। 'योग' शब्द का संकेत सर्वप्रथम वेद में मिलता है। योग शब्द संस्कृत के युज् धातु से बना है जिसका अर्थ है- मिलना या जोड़ना है। इस जोड़ने को या मिलना को आध्यात्मिक शब्दावली में 'व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना' से मिलन को योग कहा जाता है। व्यावहारिक स्तर पर योग मन शरीर और भावनाओं में संतुलन और सद्भाव प्राप्त करने की एक विधि है। यह संतुलन यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, षट्कर्म और ध्यान के अभ्यास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है और इन अभ्यासों को परमात्मा के साथ एकता स्थापित करने से पूर्व किया जाना चाहिए।

1.1.1.1 योग का अर्थ

'युज्यते अनेन इति योगः' अर्थात् योग की व्युत्पत्ति 'युज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है- मिलना-जोड़ना, संयोग करना अर्थात् किसी भी वस्तु से अपने आपको जोड़ना या किसी कार्य में स्वयं को लगाना तथा जीवात्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है।²

² संपूर्णानंद, (2017) योग दर्शन, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ पृष्ठ संख्या 40

महर्षि पाणिनि के व्याकरण में दो ऐसी धातुएँ हैं जिसमें योग शब्द की सिद्धि हो सकती है एक है युजिर्³ और दूसरा युज्⁴युजिर् धातु का अर्थबोधक योग शब्द चूँकि स्वयं युज् धातु से ही निष्पन्न हुआ है अतः वहाँ प्रमाणिक रूप से यह कहना कठिन है कि वहाँ पाणिनि को धातु का क्या अर्थ अभिप्रेत है किन्तु युज् धातु का अर्थ समाधि देखकर तो निश्चित रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है किपाणिनि के समय (ई. पूर्व 700 - 600)⁵में समाधि, जो योगाङ्गों में अंतिम है इसके अतिरिक्त एक अन्य युज् धातु संयमन अर्थ में उपलब्ध है⁶ योग शब्द का अर्थ मन की स्थिरता, एकाग्रता या एकता होना चाहिए जो मन की स्थिरता का साधन और परिणाम है।

पाणिनिकृत पाठ में युज के तीन अर्थ हैं जो इस प्रकार हैं-

- 1) युज् समाधौ - दिवादिगणीय
- 2) युजिर् योगे - रुधादिगणीय
- 3) युज् संगमने - चुरादिगणीय

- 1) युज् समाधौधातु से बना 'योग' जिसका अर्थ है - चित्त की स्थिरता अर्थात् समाधि की स्थिति⁷ जैसे- 'यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया'⁸
- 2) युजिर् योगे धातु से बना 'योग' शब्द जिसका अर्थ है समरूप परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध⁹ जैसे 'समत्वं योग उच्यते'¹⁰
- 3) युज संयमने - धातु से बना 'योग' शब्द जिसका अर्थ है - सामर्थ्य, प्रभाव¹¹ जैसे - पश्य मे योग मैश्वरम्¹²

³ सिद्धांत कौमुदी धातु संख्या 1535

⁴ सिद्धांत कौमुदी धातु संख्या 1254

⁵ क) पतंजलिकालीन भारत पृ.25, ख) गोल्डस्टुकर : पाणिनि-हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर पृ.संख्या 54-56

⁶ सिद्धांत कौमुदी धातु संख्या1645

⁷ पतंजलि योग प्रदीप

⁸ गीता 6/20

⁹ पतंजलि योग प्रदीप

¹⁰ गीता 2/48

¹¹ पतंजलि योग प्रदीप

¹² गीता 9/ 5

इस प्रकार योग का अर्थ हुआ योग साधनाओं को अपनाते हुए मन को नियन्त्रित एवं संयमित कर आत्मा का परमात्मा से मिलन।

1.1.1.2 योग की परिभाषा

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग विद्या का सर्वोपरि स्थान है। योग विद्या के अर्थ स्वरूप को बताने वाले अनेक शास्त्रीय एवं यौगिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। जैसे वेद, उपनिषद् और गीताइन तीनों का वर्णन प्रस्थानत्रयीके स्वरूप में देखने को मिलता है तथा रामायण, महाभारत एवं पुराण आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में भी योग का वर्णन मिलता है। भारतीय दर्शन में योग एक अति महत्वपूर्ण शब्द है तथा इसे अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित हैं-

योग को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है-

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चरतश्च (ऋग्वेद 1/18 /7)

अर्थात्- विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग के पूर्ण अर्थात् सिद्ध नहीं होता है।

महर्षि व्यास के अनुसार योग का अर्थ "योगसमाधिः"¹³ योग को समाधि" बतलाया है, जिसका भाव यह है कि 'जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि के द्वारा सचिदानन्द (सत् + चित् + आनन्द) स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करें'।

मनुस्मृति के अनुसार- 'ध्यान योगेन सम्पश्यद गतिं स्यान्तरात्मनः' 16/ 731 अर्थात् ध्यान योग से भी आत्मा को जाना जा सकता है इसलिए ध्यान योग का अभ्यास करना चाहिए।

कठोपनिषद् के अनुसार "जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के साथ मन स्थिर हो जाती हैं, और बुद्धि निश्चेष्ट अर्थात् स्थिर हो जाती है, अपितु निश्चल व निर्मल हो जाती है, तब इसे सर्वोच्च पद प्राप्त हो जाती है। इन्द्रियों की इसी स्थिर धारणा को योग की अवस्था कहते हैं"¹⁴

¹⁴ यदा पञ्चावतिष्ठन्त ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् । (कठोप 2/3 /10 -11)

सांख्य के अनुसार- 'प्रत्ययोर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते' अर्थात् पुरुष प्रकृति का वियोग ही योग है।

विनोबा भावेके अनुसार- 'जीवन के सिद्धांतों को व्यवहार में जीने की जो कला या युक्ति है उसी को योग कहते हैं'¹⁵

महर्षि अरविन्द के अनुसार - जीवन के सिद्धांतों को व्यवहार में लाने की जो युक्ति है वही योग है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के अनुसार योग का तात्पर्य एक भाव का अनुभव अथवा अन्तर्निहित आत्म से तादात्म्य स्थापित करना है, यही एकता वास्तविकता से मन तथा पदार्थ के दैवादित्ता को समाहित करके प्राप्त होती है।

हठयोग प्रदीपिका में योग को समाधि कहा गया है यह समाधि जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता से व सभी संकल्पों के नष्ट होने पर प्राप्त होती है अर्थात् जीवात्मा परमात्मा के मिलन से साधक के सभी संकल्प नष्ट हो जाते हैं और यही अवस्था समाधि या योग की अवस्था है।¹⁶

श्रीमद्भगवद्गीता में विभिन्न सन्दर्भों में निम्नलिखित परिभाषाओं द्वारा योग को परिभाषित किया गया है -

हे धनंजय! तू आसक्ति का त्याग करके सिद्ध -असिद्धि में सम होकर कर्म करो यह समता के भाव को ही योग कहा जाता है । इस प्रकार सुख - दुःख, मान - अपमान, सिद्धि -असिद्धि आदि विरोधी भावों में समान रहने को ही भगवान ने योग कहा है । अतः सुख में न अधिक प्रसन्न होना और दुःख में न अधिक दुखी होना ही योग है ।¹⁷

सम बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है । इससे तू समत्व योग रूप में लग जा , यह समत्व रूप योग ही कर्मों की कुशलता है अर्थात् कर्म बंधन से छूटने का उपाय है । शुद्धि समता युक्त मनुष्य वर्तमान में ही पुण्य और पाप दोनों से रहित हो जाता है । अतः तू

¹⁵ विनोबा भावे, गीता प्रवचन, पृ.26

¹⁶ हठ योग 4/7

¹⁷ योगस्थःकुरुकर्माणिसंगव्यक्त्वाधनञ्जयसिद्धसिद्धयोःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते।(श्रीमद्भगवद्गीता 2/48)

कर्म में लग जा क्योंकि कर्म की कुशलता ही योग हैं । यहाँ श्री कृष्ण ने प्रथम परिभाषा की पुष्टि में कहा है कि कर्मों में कुशलता अर्थात् निष्काम भाव फल की आशा न करते हुए कर्म करना ही कर्म योग है ।¹⁸

जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए वह योग न उकताए हुए अर्थात् धैर्य और उत्साह युक्त चित्त में निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है । दुख के साथ वियोग एवं आनन्द के साथ संयोग ही योग है । अर्थात् दुख रूप संसार के संयोग से रहित है । इस योग को धैर्य और उत्साह के साथ चित्त से निश्चय पूर्वक करना चाहिए ।¹⁹

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता योग की सर्वाधिक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करती है, जिसमें समता, कर्म-कुशलता, निष्कामता एवं सुख-दुःख में समान भाव रखने को योग की संज्ञा दी गई है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः²⁰ अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध होना ही योग है ।

ब्रह्म प्रकाशं शान योगस्त मै काचित्ता

चित्त वृत्ति निरोधच जीव ब्रह्मात्मनोपरः (अग्निपुराण 183/1/3)

अर्थात् ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ने से चित्तकी एकाग्रता ब्रह्म में हो जाती है। जिससे जीव का ब्रह्म से मिलन होता है। चित्त की इस एकाग्रता को योग कहा गया है। यहाँ भी योग दर्शन की चित्त वृत्ति निरोध की परिभाषा का समर्थन हुआ है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा में योग को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वेद, उपनिषद्, गीता (प्रस्थानत्रयी), रामायण, महाभारत और पुराणों समेत अनेक ग्रन्थों में योग के विविध अर्थ एवं स्वरूप बताए गए हैं। योग मूलतः जीवात्मा और परमात्मा के मिलन, चित्त-वृत्तियों के नियंत्रण तथा समता और निष्काम कर्म का नाम है। यह

¹⁸ बुद्धियुक्तजहातीह उभे सुकृतदुष्कृते । तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/50)

¹⁹ तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगं संज्ञितम् । स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा (गीता 6/23)

²⁰ पा.यो. सू. 1/2

आध्यात्मिकता, व्यवहारिक जीवन-कला, मानसिक अनुशासन और आत्म-साक्षात्कार की समग्र प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति का सम्पूर्ण उत्थान एवं मुक्ति है।

1.1.1.3 योग का इतिहास

भारत ही नहीं अपितु विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेद में हमें सर्वप्रथम योग का संकेत मिलता है। कुछ स्थूल दृष्टि सम्पन्न व्यक्तियों की यह मान्यता है कि ऋग्वेद के प्रथम नव मण्डलों के अनुसन्धान से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रारम्भ में आर्य इस संसार के आनन्द में ही पूर्णतया लीन थे एवं इहलौकिक सुख की कामना से ही वे देवी-देवताओं की स्तुति एवं यज्ञ यागादि कर्म किया करते थे। उनकी यह मान्यता निराधार है। वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म-ज्ञान में ही था, अन्य कर्म तो ब्रह्म-ज्ञानी परम्परा प्रेरित करने के लिए थे स्वयं ऋग्वेद के इस मन्त्र से इसकी पुष्टि हो जाती है-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वेनिषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विब्रस्त इमें समासतेः ॥²¹

अर्थात् जिसे ब्रह्म कहते हैं, जिसका अधिष्ठान परम-व्योम है, इसी में वेदों की ऋचायें एवं विश्व के समस्त देवों का निवास है। जो इस ब्रह्म तत्त्व को नहीं जानता उसके लिए शब्दात्मिका ऋचायें निष्प्रयोजन है। जो उस अक्षर ब्रह्म को जानता है बही ब्रह्म सम्बन्धी चर्चाओं में स्थान पाने योग्य हैं।

'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तत्ते पदे संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्'²²

यह श्रुति भी इस कथन का अभिधान करती है कि वेदों में परमात्मस्वरूप ओऽम का ही विवेचन है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि योग-विद्या का प्रारम्भ वेदों से ही हुआ। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'योग' सिन्धुकालीन सभ्यता की देन है। यदि हम सिन्धुकालीन सभ्यता पर दृष्टिपात करें, जिसको पुरातत्त्वविदों ने कुछ काल पहले उद्घाटित किया है, तो हमें पता चलता है कि मोहनजोदड़ो में जो धार्मिक अवशेष

²¹ ऋग्वेद, 1/64/39

²² कठोपनिषद्

प्राप्त हुए हैं उनमें केवल मां भगवती की ही मूर्तियां नहीं हैं, अपितु एक नरदेवता की भी मूर्ति प्राप्त हुई है जो कि ऐतिहासिक शिव का आदि रूप प्रतीत होता है। स्पष्टतः आधुनिक हिन्दू सभ्यता के कई बातों का स्रोत बहुत पूर्व पुरातन काल में उपलब्ध होता है। 'सर 'जॉन मार्शल' ने अपनी पुस्तक 'मोहनजोदड़ों एण्ड द इण्डस सिविलाईजेशन' में स्पष्ट किया है कि मोहनजोदड़ो में जिस नरदेवता की मूर्ति मिली है वह त्रिमुखी है। वह देवता एक कम ऊँचे पीठासन पर योगमुद्रा में बैठे हैं। उनके दोनों पैर इस प्रकार मुड़े हुए हैं कि एड़ी से एड़ी मिल रही है, अंगूठे नीचे की ओर मुड़े हुए हैं एवं हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हुए हैं।²³

इस तथ्य पर विचार करते समय यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, उस समय यौगिक विचारधारा का प्रचलन किसी न किसी रूप में अवश्य रहा होगा। इन्हीं तथ्यों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे वेद के पूर्व की सभ्यता मानकर यह आशय व्यक्त किया है कि सैन्धव सभ्यता से ही प्रथमतः योग-विद्या का अभ्युदय हुआ।

आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि सिन्धु सभ्यता, वैदिक सभ्यता के पश्चात होने वाली वैदिक मूलक सभ्यता है। यह सभ्यता मिश्रित संस्कृति से युक्त थी, जोकि परम्परात्मक रूप से आज भी भारतीय संस्कृति की एक प्रबल विशेषता है। स्थान एवं संस्कृति की भिन्नता के कारण उनमें थोड़ी बहुत भाषा सम्बन्धी भिन्नता एवं शारीरिक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

स्वामी शङ्करानन्द ने इस बात को स्पष्ट किया है कि उत्खनन में प्राप्त देवी देवताओं की प्रतिमायें आध्यात्मिक प्रतीक चिह्न वैदिक-कालीन चिह्नों से समीकृत किए जा सकते हैं तथा अन्त्येष्टि संस्कार एवं अनेक सामाजिक आचार-विचार की समानतायें इनमें निहित मूलभूत एकता का समर्थन करती हैं। इन कारकों के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप यह विचार अभिव्यक्त किया गया है कि मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की सभ्यता वैदिक सभ्यता से नितान्त भिन्न नहीं थी अपितु ये सभ्यतायें वैदिक सभ्यता की ही अङ्ग थीं।²⁴

²³ मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलिजेशन, पृ० 52-53

²⁴ Pre historic Rigvedic culture of the prehistoric Indns. p. 38

यह स्पष्ट हो जाता है कि योग सम्बन्धी विचारधारा का सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है परन्तु ऋग्वेद में अपने पूर्वजों, ऋषियों एवं मार्ग प्रदर्शकों के प्रति समर्पण यह स्पष्ट करते हैं कि उनमें वर्णित सभ्यता का स्वरूप बहुत पहले निर्धारित हो चुका था। ऋग्वेद से हमें जिस सभ्यता का बोध होता है वह ऋग्वेद की रचना से पूर्व ही फल-फूल चुकी थी और अब प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो रही थी। वस्तुतः वैदिक मन्त्रों की रचना योग की उच्चतम भूमिकाओं का ही परिणाम है) ऋषियों ने विश्व में निहित सत्य का दर्शन करके उसे ही वैदिक मन्त्रों में प्रकट किया। निरुक्त में भी इसी आशय को स्पष्ट किया गया है-

‘तद्यदेनस्तिपस्यमानान्ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षत्तदृश्योभवंस्तदृषीणांऋषित्वमिति विज्ञाते’।

अर्थात् तपस्या परायण व्यक्तियों के हृदय में स्वयम्भू ब्रह्मा (अकृतक वेद) आविर्भूत हुआ, इसीलिए वे ऋषि कहलाए। यही कारण है कि वेद को अपौरुषेय एवं ऋषियों को ‘मन्त्रद्रष्टा’ कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि योग का प्रारम्भ ऋग्वैदिक काल से हो गया था।

योगविद्या का इतिहास अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। जब भी योग विद्या के आरम्भ एवं इतिहास की चर्चा की जाती है, तो ‘हिरण्यगर्भ’ का नाम सबसे पहले लिया जाता है। विभिन्न शास्त्रों ने भी योग के आदि प्रवर्तक ‘हिरण्यगर्भ’ ही बताया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-

हिरण्यगर्भो योगस्यवक्ता नान्यः पुरातनः²⁵

अर्थात्- योग के आदिवक्ता या उपदेशक आचार्य हिरण्यगर्भ हैं उनसे पुरातन अन्य कोई नहीं। महाभारत में भी ऋषि व्यास जी ने इस मत से समानान्तर बात बताई है-

सांख्यान्य वक्ता कपिलः परमर्षि च उच्यते। हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः

पुरातनः॥(2/394/65)

²⁵ वृद्धोगियाज्ञवल्क्य स्मृति, 12/5

अर्थात्- सांख्य शास्त्र के वक्ता महर्षि कपिल मुनिहैं और योगशास्त्र के वक्ता आचार्यहिरण्यगर्भ है। हिरण्यगर्भ से प्राचीन अन्य कोई भी योग के वक्ता नहीं है। विभिन्न स्थानों पर यह बात मिलती है।

टीकाकार नीलकण्ठ ने 'महानीति च योगेषु' श्लोकांश के अर्थ में कहा हैं कि- 'योगेषु एष महानीति प्रथम कार्यमा' अर्थात् हिरण्यगर्भ महाराज की यही इति है कि आपने वेदों से भी प्रथम योगविद्या अर्थात् पराविद्या का प्रादुर्भाव किया।

श्रीमद्भागवत में भी इसी अभिप्राय की पुष्टि की गयी हैं--

"इदं हि योगेश्वर योगेनपुणं हिरण्यगर्भो भगवांजगाद् यत्।

यदन्तकाले त्वयि निर्गुणमने, भक्त्या दीधितोज्झिक्त दुष्कलेवर॥"²⁶

अर्थात्-हे योगेश्वर!मनुष्य अनन्त काल में देहाभिमान त्यागकर आपके निर्गुण स्वरूप में चित्त लगाए, इसीको भगवान हिरण्यगर्भ ने योग की सबसे बड़ी कुशलता बताया हैं। अतः यहाँ हिरण्यगर्भ को योग का प्रवक्ता और परमात्मा दोनों के रूप में माना है। हिरण्यगर्भ का ब्रह्म रूप में वेदों में भी उल्लेख है-

'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पातिरेक आसीत्।

सा दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥"²⁷

अर्थात्- सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुए, जो संपूर्ण विश्व के एकमात्र पति है। जिन्होंने स्वर्ग और पृथ्वी को आधार दिया। उन प्रजापति देव का हम हृदय द्वारा पूजन करते हैं। उक्त ऋग्वेद ऋचा के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीनतम वेद भी हिरण्यगर्भ योग के प्रवक्ता हैं।

सृष्टि के आदिकाल में भगवान् हिरण्यगर्भ ने सन्कादिक एवं विवस्वान् को परमात्म साक्षात्कार रूप एक ही सनातन योग का उपदेश दिया। अधिकारी भेद के कारण सनातन योग ब्रह्मयोग अथवा राजयोग एवं कर्मयोग इस प्रकार की दो शाखाओं

²⁶ महाभारत2/394/65

²⁷ ऋग्वेद 1/121/1, यजु. अ. 13 मन्त्र 4

रूप में प्रचलित हुआ।²⁸ पवित्रान्तःकरण वाले सनक, सनातन, सनन्दन, कपिल, आसुरि, वोढ, पंचाशिख प्रभृति विद्वान् सर्वकर्मसंन्यास रूप ब्रह्मयोग अथवा ज्ञान योग के अनुयायी हुए। इसकी पुष्टि महाभारत में की गई है।²⁹

यही ब्रह्मयोग कालान्तर में सांख्य-योग, ज्ञान-योग, आध्यात्मयोग इत्यादि नामों से प्रसिद्ध हुआ ।

हिरण्यगर्भ प्रवर्तित योग की दूसरी शाखा कर्मयोग की परम्परा में किंचित व्युत्थित चित्त से युक्त, संसार के कार्यों को करते हुए परमात्म साधन करने वाले विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु व अन्य ऋषि हुए। इस शाखा का मूल तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति कर्मों को सर्वथा नहीं त्याग सकता वह कर्मों का ईश्वर में समर्पण करते हुए कर्मफलों से आबद्ध न होकर, समाहित चित्त होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। इस परम्परा का उल्लेख छान्दोग्योपनिषद् में इस प्रकार हुआ है-

'तद् एतत् ब्रह्मा प्रजापतये, प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ।'³⁰

इसी शाखा के विषय में कालान्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने यह स्वीकार किया है कि, मेरे द्वारा उपदिष्ट यह योग-विद्या नवीन नहीं है, अपितु बहुत काल से चली आ रही सनातन विद्या ही है-

त्रेता युग में गुरु वशिष्ठ ने अयोध्या के राजा रामचंद्र को योग का अभ्यास करवाया था। द्वापर युग में कृष्ण ने अर्जुन को योग का ज्ञान दिया जो श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित है। योग परम्परा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक प्रमाणिक

²⁸ राजयोग एवं कर्मयोग रूप योग की दो शाखाओं का वर्णन गरुड़ पुराण में इस प्रकार है- आरुरुक्षर्यतीनां व कर्मज्ञां उदाहृते। आरुरुक्षयोगवृक्षाणां ज्ञानत्यागौ परौ मतौ ॥ ग० पु० 1/227/4 इसी द्विविध निष्ठा का गीता में भी वर्णन है- लोकेऽस्मिन् द्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया नघ । ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ (गीता 3/3)

²⁹ सनः सनत्सुजातस्थश्च सनकः सनन्दनः । सनत्कुमारः कपिलः सप्तमश्च सनातनः ॥ सप्तैते मानसाः प्रोक्ता ऋषयो ब्रह्मणः सुताः । स्वयमागतविज्ञाना निवृत्ति धर्ममाश्रिताः । एते योगविदौ मुख्याः सांख्यज्ञानविशारदाः । आचार्या धर्मशास्त्रेषु मोक्षधर्म प्रवर्तकाः ॥ (महा०, शान्ति पर्व, अ० 340, 67-69)

³⁰ छान्दोग्योपनिषद्, 3/11/4

विचार श्रीमद्भगवद् गीता में मिलता है। योगेश्वर श्रीकृष्णअपने शिष्य अर्जुन के संशय को दूर करते हुए योग की प्राचीनता को इस प्रकार से समझाते हैं-

इमं विवस्व ते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान्मनवेप्राहमनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

एवंपरम्पराप्राप्तमिमंराजर्षयोविदुः।

सकालेनेहमहतायोगोनष्टःपरन्तप॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ (गीता 4/1-3)

अर्थात्- इस अविनाशी योग को मैंने विवस्वान (सूर्य) के प्रति कहा, विवस्वान ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु के अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा । इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों द्वारा जाना गया किन्तु इसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्त हो गया। तुम मेरा प्रिय भक्त एवं सखा हो इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुम्हें बताया है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है। अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है। अतः उपरोक्त गीतोक्त कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि योग का आरम्भ सृष्टि के प्रारम्भ से ही था, जो कि समय-समय पर लुप्त होने के पश्चात् पुनः अवतार पुरुषों के द्वारा उद्घोषित होता रहा है।

आधुनिक समय में देखे तोप्रारंभिकमें नाम श्यामाचरण लाहिड़ी, परमहंस योगानंद, महर्षि रमण आदि का आता है। इसी काल में काली के भक्त तथा स्वामी विवेकानंद के गुरु रामकृष्ण परमहंस ने अपने आध्यात्मिक प्रभाव से समाज में उच्च स्थान प्राप्त किया। आज भी बंगाल में उन्हें पूजनीय माना जाता है। भक्ति योगियों में उनका स्थान बहुत ऊंचा है। इनके अतिरिक्त आधुनिक समय के कुछ निम्नलिखित योगाचार्यों ने योग द्वारा समाज की महत्वपूर्ण सेवा की है।

1.1.1.4 योग का लक्ष्य एवं उद्देश्य

श्रीमद्भगवद्गीता मेंभगवान श्रीकृष्ण ने योग साधना को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हुए कहाहै-

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्ति लिप्यते॥ गीता (5/7)

अर्थात्- योग से युक्त, विशुद्ध अन्तःकरण वाला, विजितात्मा, शरीरजयी, जितेन्द्रिय और सब भूतो में मैं अपनी आत्मा को देखने वाला यथार्थ ज्ञानी हो जाता है। इस प्रकार स्थित हुआ पुरुष लोकसंग्रह के लिए कर्म करता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता अर्थात् कर्मों से नहीं बचता है।

गोरक्ष संहिता में कहा गया है-

द्विजसेवित शाखस्य श्रुति कल्पतरोः फलम् ।
समन भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥

अर्थात्- वेद रूपी कल्पवृक्ष के फल योगशास्त्र है। इस योगशास्त्र के सेवन से संसार के तीन प्रकार के पाप (आधिदैविक , आधिभौतिक और आध्यात्मिक) का शमन होता है। महर्षि पतञ्जलि कृत अष्टांगयोग का उद्देश्य शरीर शुद्धि के साथ - साथ चरित्र की शुद्धि का उपाय बताया गया है।

1. यम - नियम हमारे चिन्तन , चरित्र और व्यवहार को शुद्ध सात्विक व निर्मल बनाते हैं। चारित्रिक स्वास्थ्य यम-नियम का मूल उद्देश्य है। पांच यम - सत्य,अहिंसा,अस्तेय, ब्रम्हचर्य,अपरिग्रह । नियम - शौच, संतोष,तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान।
2. शारीरिक स्वास्थ्य आसन-प्राणायाम का उद्देश्य है।
3. प्रत्याहार का मूल उद्देश्य जीवन में संयम है। संयमित जीवन शैली प्रत्याहार द्वारा ही किया जा सकता है।
4. धारणा एवं ध्यान का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति है। धारणा चित्त की चंचलता को रोक कर एक स्थान विशेष पर लगाना है, और अपने - अपने नियत लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करना ध्यान का उद्देश्य है।

5. समाधि ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था है, जिसके द्वारा आत्म साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है। समाधि का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है, जो कि मनुष्य मात्र का परम लक्ष्य है।
6. महर्षि ने क्रियायोग का उद्देश्य ज्ञान एवं भक्तियोग की प्राप्ति बताया है।

1.1.1.5 योग का महत्त्व

1. **शारीरिक महत्त्व**-शारीरिक स्वास्थ्य में योग साधना की महत्वपूर्ण भूमिका है। योग के आठ अंगों में तीसरा, चौथा अंग आसन व प्राणायाम से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। योगासनो से शारीरिक शक्तियों को विकसित किया जाता है। जिससे शरीर हृष्टपुष्ट बनता है। उनसे अंग प्रत्यंग की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, तथा शरीर स्वस्थ व निरोग बनता है। आसन व प्राणायाम के द्वारा सभी अंग सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं, तथा अंतः स्रावी तन्त्र प्रभावित होता है, तथा ग्रन्थियों के स्राव सन्तुलित होते हैं। जिससे शरीर स्वस्थ होता है। योग एक स्वस्थ जीवन जीने की कला है। जिसे अपनाने से सुव्यवस्थित जीवन हो जाता है व शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। श्वेताश्वेतरूपनिषद् में योग का शारीरिक महत्त्व इस प्रकार वर्णन किया गया है-

नः तस्य रोगो न जरा न मृत्युः

प्राप्तस्य योगानिम शरीरम् ॥ 2/12

अर्थात्- जिसने योग रूपी अग्नि में अपने शरीर को तपा लिया उस मनुष्य के शरीर में न तो कोई रोग होता है, और न ही उसमें बुढ़ापे के लक्षण प्रकट होते हैं, और न ही असमय उसकी मृत्यु होती है। ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है योग के अभ्यासों के द्वारा जो भी श्रम या तप किया जाता है, वह कभी भी निरर्थक नहीं जाता है। सत्कारपूर्वक यमपूर्वक की गई साधना मनुष्य को तीनों तापो (दुःखों) से मुक्त करती है।

- 2 . **मानसिक महत्त्व**- योग के द्वारा शारीरिक के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी प्राप्त किया जा सकता है। आज के आधुनिक समाज में मानसिक रोगों की वृद्धि

होती जा रही है। मानसिक रोग एक भयानक बीमारी होती जा रही हैं। जिनका निराकरण करने में आधुनिक विज्ञान असमर्थ है। इस तनाव जन्य परिस्थितियों और रोगों से बचने के लिए योगाभ्यास एक सफल व कारगर चिकित्सा पद्धति है। जिसके द्वारा सम्पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त किया जाता है, योग द्वारा चित्त की वृत्तियों पर अंकुश लगाया जाता है। मन की चंचलता को कम कर मानसिक एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है। शिशुओं के मानसिक विकास की वृद्धि हेतु प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक है। स्मरण शक्ति की वृद्धि योगाभ्यास द्वारा होती है। मानसिक रोग मन से उपजते हैं। यदि मन स्वस्थ हो तो शरीर भी स्वस्थ रहता है। मन और शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है, मन शरीर को प्रभावित करता है। मन में विवाद होने की स्थिति में शरीर दुर्बल हो जाता है। वही यदि शरीर में रोग होने की स्थिति में मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। महर्षि पतंजलि ने योग साधना के अन्तर्गत ऐसी चित्त प्रसादन की साधना बतायी है, जिससे हमारा मन निर्मल होता है। योगाभ्यास से विचार समाप्त होकर सुविचारों का उदय होता है। मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति होती है तथा जीवन तनाव रहित हो कर असीम मानसिक शक्ति की प्राप्ति होती है।

- 3 **आध्यात्मिक महत्त्व** -मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है-मोक्ष की प्राप्ति। इस महान लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम हमारा मन है। यह मन ही है, जो कि बन्धन और मोक्ष का कारण है। जैसा की शास्त्रों में वर्णित है 'मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' अर्थात्- मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। इसलिए योग साधना में मन को ईश्वर बनाकर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। योग के द्वारा अनेको जन्मों के संस्कारों से जो मलिन हुए चित्त का निर्मल का आत्मा के पर्याय स्वरूप का ज्ञान कराया जाता है। योग युक्त होते ही हमारी इन्द्रियाँ जो कि स्वभाव से ही चंचल है, वह अंतर्मुखी होने लगती है। योग साधना के अभ्यास से दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है, और इस योग दृष्टि के द्वारा ही सृष्टि के गूढ़तम रहस्यों को उजागर किया जा सकता है। इस योग साधना द्वारा तत्त्वदर्शन, आत्मदर्शन, अतीन्द्रिय दर्शन, दिव्यदर्शन व अज्ञमनाक्षत्कार किया जाता है। अनेको ग्रन्थों में जिनका वर्णन मिलता है। घेरण्ड संहिता में योग के महत्त्व को निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है-

अभ्यासात्कादिषर्णामां यथाशाखाणि बोधवेत् ।

तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते ॥ 1/5

जिस प्रकार 'क' 'ख' अक्षारारम्भ का अभ्यास करते-करते शाखा का विधान बना जाता है। उसी प्रकार योग का अभ्यास करते-करते तत्त्व ज्ञान प्राप्त हो जाता है। योग वस्तुतः पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन है और मोक्ष को प्राप्त करने का श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम साधन है। ऐसा शास्त्रों द्वारा सिद्ध हो चुका है।

4 **सामाजिक महत्त्व-** किसी भी समाज के उत्थान स्वस्थ व सुसंस्कारिक परिवार की अहम भूमिका होती है। स्वस्थ एवं सुसंस्कारित परिवार में ही एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। इस आदर्श समाज की स्थापना में योग की भूमिका महत्वपूर्ण है। योग मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है, और एक स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। आधुनिक समाज में मनुष्य धन कमाने तथा भौतिक संसाधनों को बटोरने तथा विलासिता पूर्ण जीवन बिता रहा है। प्रतिस्पर्धा व उच्चतम चाह के लिए वह अनैतिक कार्यों को करता जा रहा है। नकारात्मक चिन्तन को प्रथम मिल रहा है। जिससे सामाजिक कुरीतियों या बुराईयों का बढ़ावा मिल रहा है। नकारात्मक चिन्तन से अनेको शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। योग के अन्तर्गत प्राणायाम का व आसनों का अभ्यास शारीरिक व मानसिक रोगों का निवारण हो जाता है। विचार उच्च हो जाते हैं। जिसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है। ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्ति जैसे साधन हमारे समाज पर सीधा प्रभाव डालते हैं। कर्म, भक्ति, ज्ञान का समन्वय जीवन को उच्च बनाता है। समाज को रचनात्मकता तथा भक्तिमय दिशा प्रदान करता है, जिससे मनुष्य के कर्मों में कुशलता विचारों में उच्चता व विवेकज्ञान की प्राप्ति होती है। कर्मों में कुशलता तभी आती है, जब भक्ति के द्वारा विवेकज्ञान की प्राप्ति होती है। तथा कर्म निष्काम भाव से होने लगते हैं और इस प्रकार निष्काम भाव से कर्म की प्रेरणा नैतिक मूल्यों की प्रेरणा सत्य अहिंसा की प्रेरणा योग द्वारा मिलती है। जिससे आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है।

5 **आर्थिक महत्त्व-** मानव जीवन में आर्थिक स्तर और योग विद्या का सीधा सम्बन्ध कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन पुरुषार्थ के मूल में आरोग्य की प्राप्ति कर धर्म के साथ-साथ अर्थका उपार्जन किया जा सकता है। एक निरोगी मनुष्य, स्वस्थ मनुष्य ही अपने आप के साधनों का विकास कर सकता है, और परिश्रमसे अपनी आय को बढ़ा सकता है। यौगिक अभ्यास के अन्तर्गत कर्मयोग निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा देता है। जिससे कर्मयोगी बन मनुष्य अपने व्यवसाय को विस्तृत कर आय अधिक उपार्जित कर सकता है।

यौगिक अभ्यास से कार्यक्षमता विकसित कर बड़े-बड़े उद्योगों के अन्तर्गत कार्यकरने वाले श्रमिकों कर्मचारियों कार्यकुशलता व कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है। जिससे आर्थिक क्षेत्र में लाभ व उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। शरीर में रोग होने की स्थिति में मनुष्य का आर्थिक स्तर प्रभावित होता है। रोगोपचार में होने वाला व्यय व इसके दुष्प्रभाव शारीरिक व मानसिक रूप से भी प्रभावित करते हैं और कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है। योगाभ्यास के सतत अभ्यास से मानसिक एकाग्रता तथा प्रतिरोधी क्षमता वृद्धि होती है। जीवन शक्ति प्रबल होती है। जिसमें आर्थिक सुसम्पन्नता लाई जा सकती है।

6 **नैतिक महत्त्व -** योग व्यक्ति को नैतिक मूल्य सद्गुणों को विकसित करने में सहायक है। योग साधना द्वारा इन्द्रिय संयम कर नैतिक व सद्चिचारों का और आदतों को विकसित किया जा सकता है। योग के अन्तर्गत यदि हम अष्टांग योग की बात करें तो देखेंगे कि इसके व्यवहारिक व चिकित्सकीय पक्ष हैं। अष्टांग योग के अन्तर्गत यम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य) और नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान) हमारे व्यवहार की शुद्धि करते हैं, व नैतिक मूल्यों को विकसित करते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्रचलित नैतिक शिक्षा बालकों में नैतिक गुणों को विकसित नहीं कर पाती हैं। जबकि योगानुष्ठान के द्वारा बालक व सभी आयु वर्ग के व्यक्ति में नैतिक गुण विकसित किये जा सकते हैं। योगानुष्ठान के द्वारा मन की शुद्धि होती है। शरीर की शुद्धि होती है।

योगानुष्ठान करने वाले साधककी बुद्धि विकारों से रहित हो जाती है। तथा विवेक ज्ञान की प्राप्ति होती है। सही गलत का ज्ञान होने लगता है, और इस प्रकार मनुष्य में नैतिक गुणों को विकसित करने में योग की अपनी अहम भूमिका है-

1.1.2 यौगिक ग्रंथों का परिचय

वेद भारतीय ज्ञान परम्परा के प्राचीनतम ग्रन्थ है। वेद शब्द संस्कृत भाषा के 'विद' धातु में 'घञ' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ होता है। ज्ञान या जानना। वेद ऋषियों की वाणी है, जो ऋषियों के द्वारा व्यक्त की गई है, जिसने परम ब्रह्म का साक्षात्कार किया है, वही इसकी वाणी को व्यक्त कर सकता है। वेद की संख्या चार है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद। वेदों को अपौरुषेय माना जाता है। वेदों के ज्ञान 'श्रुति' कहा जाता है अर्थात्- सुना हुआ ज्ञान 'वेद' के वास्तविक अर्थ को जानने के लिए उपयोगी व सहायक अंग को वेदांग कहते हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं। उपयुक्त चारों वेदों में से प्रत्येक के चार भाग होते हैं- १.संहिता २.ब्राह्मण ३.आरण्यक ४.उपनिषद्, शिक्षा(नाक), व्याकरण(मुहूर्त), छंद (पैर,) निरुक्त (कान), ज्योतिष (आँख), कल्प (हाथ)³¹

1.1.2.1 वेदों में योग

योग भारतीय जीवन पद्धति का प्रमुख अंग है और वेद भारतीय संस्कृति का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है योग एक ऐसी कला है जिसे अनेक लोगो ने अपने व्यवहार में उतार कर कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त की है 600-800 ई.पू.तक वेदों में योग के अर्थ को इन्द्रियों को प्रवृत्त करना था समय के साथ-साथ जब वैदिक साहित्य की लिखित रचना हुई 500-600 ई. पू.तक में तब का अर्थ इन्द्रियों का नियंत्रण करना परिभाषित किया गया³²। ऋग्वेद में योग का वर्णन मिलता है जो कि विश्व का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है, योग का उद्भव वेदों से ही माना जाता है, किन्ही विचारको का मत है कि योग सिन्धुकालीन सभ्यता की देन है। किन्तु स्वामी शंकरानंद जी ने इसे स्पष्ट करते

³¹ तैत्तरीय उपनिषद्

³²N.S.Gupta, Philosophical Essays, p.179

हुये कहा है कि सिन्धुकालीन सभ्यता वैदिक सभ्यता का ही अंग है।³³ इसे स्पष्ट होता है कि 'योग का उदभव वैदिक परम्परा से है'।

सर्वप्रथम ऋग्वेद में संकेत मिलते हैं कि योग साधना के द्वारा जो मनुष्य अनेक सिद्धियों को प्राप्त करने की चाह रखते हैं उन्हें देह में बहने वाली नाड़ियों को मूलबन्ध एवं जालन्धर की सहायता से कुम्भक आदि लगाकर प्राणों को नियन्त्रण करते हैं तो सम्पूर्ण देह में एक विशेष ऊर्जा का संचार होने लगता है।³⁴ पूर्व के संकेतों से स्पष्ट है कि वेदों में योग का उल्लेख विभिन्न स्थानों पर मिलता है। यजुर्वेद के श्लोकसंख्या 1 से 5 में योग साधना का उल्लेख किया गया है। प्रारम्भिक श्लोकों में ब्रह्म की उपासना की गई है, इसके उपरान्त उपासना करने वाले एवं इसका मार्ग दिखाने वालों के लिये परमात्मा के वचन है 'जब तुम सनातन ब्रह्म का सत्य, प्रेम, सेवा एवं श्रद्धाभाव से स्वयं की आत्मा को एकचित्तरखकर नमस्कारादि भाव से मेरी उपासना करोगे तब मैं तुम दोनों को आशीर्वाद दूंगा कि तुम्हें जिस प्रकार परमविद्वान को धर्म मार्ग यथावत प्राप्त होता है तुम्हें भी उसी प्रकार सत्यकिर्ती प्राप्त हो।' इसके पश्चात मुमुक्षुओं को संदेश देते हैं कि जो लोग पूर्व में मोक्ष सुख को प्राप्त कर चुके उनके शरणागत जाकर तुम भी मोक्षसुख प्राप्त करो।³⁵ वैदिक परम्परा में योग के प्रणेता परमात्मा हिरण्यगर्भ को माना है।³⁶

ऋग्वेद में योग

यस्मादुते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चनासधीनां योगमिन्वति॥ (1/18/7)

अर्थात्- जो विद्वान बिना योग के कोई भी कर्म करते हैं वे पूर्ण नहीं होते। वेदों में योग के अनुष्ठान के बिना कर्मों को करना अनुचित बताया है। इस प्रकार योग का वेदों में बहुत महत्व बताया है। योग का मूल अर्थ चित्त है इसके पश्चात समाधि के विषय में वर्णन मिलता है।

³³ Swami Sankrananda, The Rigvedic Culture of the Pre-Historic Indus, Ramkrishna Culcutta, p.38

³⁴ ऋग्वेद 1/38/11)

³⁵ वही 11/5

³⁶ स्वामी दिव्यानंद सरस्वती, वेदों में योग विद्या, यौगिक शोध संस्थान, आर्यनगर, ज्वालापुर हरिद्वार, पृ.51

"स घा नो योग आभुवत् स राये स पुरध्याम् गमद् वाजेभिरा स नः।(1/5/3)

अर्थात्- परमात्मा के सानिध्य से हमें समाधि सिद्ध हो तथा ईश्वर की कृपा से विवेक ख्याति व ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो। इसके उपरान्त योग सिद्धि हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गई है। जिसका उल्लेख वेदों में निम्न प्रकार मिलता है।

अष्टविषानि शिवानि षग्मनि सह योगं भजन्तु मे ।

योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।³⁷

अर्थात्- हे ईश्वर! हमें आपकी प्रेरण से अध्यात्म योग प्राप्त हो जाये और उसी अध्यात्म योग में हमें आनन्द, शांति, तृप्ति और सतत आपकी अनुकम्पा प्राप्त होती रहे

1.1.2.1 उपनिषद् में योग

उपनिषद् को समझाने के लिए वेद को जानना जरूरी है वेदों के दो भाग हैं मंत्र तथा ब्राम्हण मंत्र के संग्रह को संहिता कहते हैं तथा इसके विषय को बताने वाले को ब्राम्हण कहते हैं। ब्राम्हणका अंतिम भाग आरण्यक कहलाता है और आरण्यक का अंतिम भाग उपनिषद् है।³⁸ उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति उप, नि उपसर्ग तथा सद धातु से मिलकर बना है सद के तीन अर्थ हैं- विशरण, गति, अवसादन³⁹ अर्थात्- शिष्य, गुरु के समीप बैठकर आत्मज्ञान प्राप्त करना या गुरु, शिष्य के बीच संवाद के माध्यम से जिज्ञासा का समाधान करना ही उपनिषद् है उपनिषद् के दर्शन को वेदान्त कहा जाता है वेदान्त (वेद + अंत) अर्थात् ज्ञान का अंत क्योंकि की इसको जानने के बाद कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता है। उपनिषद् प्रस्थानत्रयी के अंतर्गत आता है यह आध्यात्मिक ग्रन्थ है, इसमें वैदिक शिक्षा का वर्णन बहुत विस्तृत ढंग से किया गया है योग विद्या का वर्णन उपनिषद् में बहुत अधिक किया गया है कहीं -कहीं योग का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार उपनिषद् की संख्या 108 बताई गयी है।⁴⁰ ये वर्तमान में भी उपलब्ध है।

³⁷ अथर्ववेद.19/8/2

³⁸ योगांग, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2075. पृ.141

³⁹ डॉ. अनुजा रावत, योगी, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली पृ. 30

⁴⁰ उपनिषद् अंक, गीता प्रेस गोरखपुर स.2075 पृ. 647

कठोपनिषद यजुर्वेद के कठ शाखा से लिया गया है में दो अध्याय है प्रत्येक अध्याय में तीन वल्लियाँ इसमें योग की परिभाषा बताई गई है -

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥"⁴¹

अर्थात्- मन के साथ समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ भली-भाँति स्थिर हो जाती है तथा बुद्धि की भी कोई चेष्टा नहीं रहती तब इस अवस्था को जीवात्मा की परमगति अर्थात् योगी की अवस्था कहते हैं। जब समस्त बाह्य जगत को छोड़कर आन्तरिक जगत की ओर हो जाती है। तब योग साधक परमात्मा के साथ एक्य हो जाता है।

"तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।

अप्रमत्तस्तरा भवति योगो हि प्रभवाम्ययौ॥"⁴²

अर्थात्- इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही योग कहलाती है। क्योंकि ऐसी अवस्था में योग साधक प्रमाद रहित हो जाता है। परन्तु ऐसे समय में योग की अवस्था में उतार-चढ़ाव आते जाते हैं। इसलिए योग का अभ्यास निरन्तर करते रहना चाहिए।

अमृत नादोपनिषद यह उपनिषद कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्ध रखता है। इस उपनिषद में योग के छः अंगों का वर्णन मिलता है। यह छः अंग योग के प्रसिद्ध अंगों से थोड़ा भिन्न है। निम्न सूत्र में इसका वर्णन मिलता है-

"प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।

तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥"⁴³

अर्थात्- प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि ये छः अंगों का वर्णन इस उपनिषद में मिलता है। इसी प्रकार क्षुरिकोपनिषद में भी छः अंगों का वर्णन मिलता है। दुरिकोपनिषद यह उपनिषद कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है। इसमें योग के छः अंगों का वर्णन मिलता है। यह छः अंग निम्न है आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

⁴¹ 2/3/10, ईशादि, नौ उपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर स.2073 पृ.165

⁴² 2/3/11, ईशादि, नौ उपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर स.2073 पृ.165

⁴³ शर्मा प.श्रीराम 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट मथुरा, मंत्र 1/6 पृ.28

ध्यान तथा समाधि। इस उपनिषद में किसी आसन विशेष का नाम नहीं है। अपितु "आसनमवस्थितः⁴⁴ कहकर इसका वर्णन मिलता है। इसी प्रकार योग चूडामण्युपनिषद में षडंग योग का वर्णन मिलता है।

योगचूडामण्युपनिषद यह उपनिषद सामवेद की शाखा से सम्बन्धित है।

" आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।

ध्यानं समाधितरेतानि योगङ्गानि भवन्ति षड् ॥"⁴⁵

अर्थात्- आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन छः अंगों का इस उपनिषद में वर्णन मिलता है। इसके उपरान्त कुछ उपनिषदों में अष्टांग योग का वर्णन मिलता है। इन अष्टांग अंगों की समानता पातंजलयोग सूत्र से है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

समे शुचौ शर्करा वह्निवाल्मुका विवर्जिते शब्द जलाश्रयादिभिः।

मनोऽनुकुले न तु चक्षुषीडने गुहा निवाताश्रयणे प्रयोजयेत्श्वेताश्वतर⁴⁶

अर्थात्-योगाभ्यास के लिए समतल सूचि, कंकण-पत्थर रहित, आग व बालू से रहित तथा शब्द जलादि का जहाँ व्यवधान न हो। मन को प्रिय लगने वाला स्थान हो, जहाँ आंखों को पीड़ा देने वाली कोई वस्तु नहीं हो ऐसा स्थान ही योगाभ्यास के लिये उपयुक्त स्थान होता है, क्योंकि ऐसे स्थान में योगाभ्यास करने से मन तीव्रता से स्थिर होता है। ऐसे स्थान पर योग सिद्धी शीघ्र प्राप्त होती है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद यह उपनिषद शुक्ल यजुर्वेदीय परम्परा से संबंध रखता है। अष्टांग योग के साथ-साथकर्मयोग व ज्ञानयोग का भी वर्णन इस उपनिषद में मिलता है। अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

⁴⁴ शर्मा प.श्रीराम 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट मथुरा, मंत्र ½ पृ. 91

⁴⁵ शर्मा प.श्रीराम 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट मथुरा, मंत्र ½ पृ. 210

⁴⁶ डॉ.कामख्या कुमार, योग महाविज्ञान स्टैडड पब्लिशर्स नई दिल्ली 2/10 पृ 60

कर्मयोग-

"कर्म कर्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते ॥ ⁴⁷

अर्थात्- विहित कर्मों में इस बुद्धि का बने रहना, यह कर्तव्य कर्म है। शास्त्रानुकूल कर्मों में निरन्तर मन लगाये रखना कर्मयोग कहलाता है।

ज्ञानयोग-

"यत्तु चित्तस्य सततमर्थं श्रेयसि बन्धनम्।

ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः ॥"⁴⁸

अर्थात्- श्रेय के अर्थ में चित्त का सदैव बद्ध रहना ज्ञान योग कहलाता है। यह ज्ञान योग के सिद्धियों को प्रदान करने वाला बतलाया गया है।

1.1.2.2 श्रीमद्भगवद्गीता में योग

गीता भारतीय सनातन संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है गीता सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है, इस ग्रन्थ में योग का बहुत ही विस्तृत वर्णन मिलता है। गीता के प्रत्येक अध्याय के नाम के अंत में 'योग' शब्द आता है। इसमें 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं गीता में भी अन्य योग ग्रंथों की तरह इसमें भी ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान, त्याग, सन्यास, मोक्ष, अध्यात्म की बातें कही गई हैं। ज्ञान की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक भारतीय वाङ्मय का अध्ययन अति आवश्यक है। महर्षि वेद व्यास जी ने महाभारत में कहते हैं- 'विद्या योगेने रक्षति' विद्या अर्थात् ज्ञान की रक्षा भी योग से ही हो सकती है। अब तक के इतिहास में सबसे बड़ा योगी योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण को माना जाता है। गीता के मुख्य नायक स्वयं भगवान श्री कृष्ण हैं जो अर्जुन के माध्यम से समस्त लोक के कल्याण के लिए पुनः योग को प्रकट करते हैं। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि सबसे पहले योगिराज श्री कृष्ण ने योग का ज्ञान सूर्य (विवस्वान) को दिया सूर्यने मनु को दिया मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को योग का गूढ़

⁴⁷ शर्मा प.श्रीराम 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट मथुरा, मंत्र 1/2/ 25 पृ.71

⁴⁸ शर्मा प.श्रीराम 108 उपनिषद्, ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट मथुरा, मंत्र 1/2/ 25 पृ. 71

ज्ञान परंपरा के रूप से दिया है। इस प्रकार योग की ऋषि- मुनियों के माध्यम से एक लम्बी परम्परा चली परन्तु कुछ वर्षों बाद ये लुप्त होगी उसी योग के ज्ञान को भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को पुनः गीता के माध्यम से दिया था। श्रीमद्भगवद्गीता में योग को बहुत ही साधारण शब्दों में समझाया गया है-

योगस्थः कुरु कर्माणि संग व्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।⁴⁹

अर्थात्- हे धनञ्जय! तू आसक्ति का त्याग करके सिद्ध असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्म को कर, क्योंकि समता को ही योग कहा जाता है। इस प्रकार सुख-दुःख, मान-अपमान, सिद्धि-असिद्धि आदि विरोधी भावों में समान रहने को ही भगवान ने योग कहा है। अतः सुख में न अधिक प्रसन्न होना और दुख में न अधिक दुखी होना ही योग है।

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसुकौशलम् । श्रीमद्भगवद्गीता-2/50

अर्थात्- सम बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्व योग रूप में लग जा, यह समत्व रूप योग ही कर्मों की कुशलता है अर्थात् कर्म बंधन से छूटने का उपाय है। शुद्धि समता युक्त मनुष्य वर्तमान में ही पुण्य और पाप दोनों से रहित हो जाता है। अतः तू कर्म में लग जा क्योंकि कर्म की कुशलता ही योग है। कर्मों में कुशलता अर्थात् निष्काम भाव फल की आशा न करते हुए कर्म करना ही कर्म योग है।

तं विद्यात् दुखसंयोगवियोग योग संज्ञितम् ।

स निश्चयेन योगतव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा ॥ (6/23)

अर्थात्- जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए वह योग न उकताए हुए अर्थात् धैर्य और उत्साह युक्त चित्त से

⁴⁹ श्रीमद्भगवद्गीता 2/48

निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है। दुख के साथ वियोग एवं आनन्द के साथ संयोग ही योग है। अर्थात् दुख रूप संसार के संयोग से रहित है। इस योग को धैर्य और उत्साह के साथ चित्त से निश्चय पूर्वक करना चाहिए।

1.1.2.3 योगवशिष्ट में योग का स्वरूप

योगवशिष्ट भारतीय अध्यात्म दर्शन की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें ऋषि वशिष्ट द्वारा श्रीराम को योग एवं अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का उपदेश दिया गया है। योगवशिष्ट योग को मात्र शारीरिक साधना या आसन-प्राणायाम तक सीमित न रखकर इसे पूर्णतः आध्यात्मिक और मानसिक नियंत्रण की प्रक्रिया मानता है। इस ग्रन्थ के अनुसार योग मन की समस्त वृत्तियों का निरोध करते हुए आन्तरिक आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अनुभव करना है। मन के भीतर उपस्थित सांसारिक वासनाओं, इच्छाओं, मोह और भ्रम को समाप्त करके, स्थिर, शान्त और निर्मल चेतना की अवस्था तक पहुँच जाना ही योग की चरम परिणति है।

‘सागर की जिस प्रकार व्यवस्थाएं होती हैं स्पंदन व शांत इसी प्रकार ब्रह्म शांत और स्पंदन होने पर सृष्टि की रचना होती है योग का उद्भव मनुष्य जीवन के रहस्यों से संबंधित जिज्ञासाओं एवं प्रश्नों से हुआ है इन जिज्ञासाओं के समाधान के लिए गुरु अपने शिष्यों को उपदेश देते थे। योगवशिष्ट में भी श्रीरामचंद्र जी एवं महर्षि वशिष्ट के मध्य आध्यात्मिक जीवन की जिज्ञासाओं के समाधान का महत्वपूर्ण संकलन है’⁵⁰

योगवशिष्ट में योग का अर्थ आत्मबोध और मुक्तावस्था की प्राप्ति है, जो व्यक्ति को जन्म-मृत्यु और सुख-दुःख के चक्र से मुक्ति दिलाता है। इसके अनुसार, संसार एक मानसिक कल्पना मात्र है, और मन ही इस संसार के सुख-दुःख, लाभ-हानि एवं बन्धन-मोक्ष का कारण है। इसलिए, योग मन के नियंत्रण एवं शुद्धि की विधि है। योग के अभ्यास से मनुष्य को यह बोध होता है कि संसार की वस्तुएँ और घटनाएँ अस्थायी एवं भ्रमात्मक हैं, जबकि उसका अपना स्वरूप अनन्त, नित्य, चैतन्य और शाश्वत

⁵⁰रावत डॉ.अनुजा, योग एवं योगी सत्यमपब्लिशिंग हॉऊस दिल्ली,पृ.स.54

है। योगवशिष्ट में योग की प्रक्रिया को ध्यान, आत्म-विचार (आत्मचिन्तन), विवेक, वैराग्य एवं स्वाध्याय के माध्यम से बताया गया है। यहाँ बाहरी कर्मकाण्डों की बजाय आत्मनिरीक्षण एवं आध्यात्मिक ज्ञान पर बल दिया गया है। योग का उद्देश्य मानसिक विकारों को मिटाकर पूर्ण आत्मशांति, स्वतंत्रता और परम सत्य की प्राप्ति है। इस प्रकार योगवशिष्ट योग को सांसारिक दुःखों एवं जन्म-मृत्यु के चक्र से पार होने की युक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है, जो जीवात्मा को परमात्मा की अखण्ड ज्योति में विलीन कर, परम शांति और आनंद की प्राप्ति कराता है।

1.1.2.4 आयुर्वेद में योग

योग और आयुर्वेद दोनों ही प्राचीन विद्याएँ हैं। दोनों का प्रयोग और विकास एक सामान उद्देश्य के लिए हुआ है। विद्वानों की मान्यता है कि महर्षि पतंजलि ने अलग-अलग नामों से मानव कल्याण के लिए तीन ग्रंथों की रचना की जिनके द्वारा मानव का कल्याण हो सके। उन्होंने "चित्त की शुद्धि के लिए योग शास्त्र, वाक् शुद्धि के लिए व्याकरण महाभाष्य तथा शरीर शुद्धि के लिए चरक संहिता का निर्माण किया"। इससे स्पष्ट होता है कि योग और आयुर्वेद का उद्देश्य एक समान है। आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है और योग विज्ञान का अभ्यास है। आयुर्वेद का लक्ष्य बताते हुए चरक संहिता में कहा गया है "स्वस्थ व्यक्ति ही वह पुरुषार्थ रखता है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति में प्रवृत्त हो जाता है वस्तुतः मोक्ष की प्राप्ति स्वस्थ व्यक्ति द्वारा ही संभव है" ⁵¹

"आयुर्वेद के दो प्रयोजन हैं पहला स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा दूसरा रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना" ⁵²

1.1.2.5 योग परम्परा में हठयोग एवं राजयोग

योग परम्परा में हठयोग एवं राजयोग एक-दूसरे के पूरक तथा परस्पर सम्बद्ध धाराएँ हैं। राजयोग मूलतः मानसिक अनुशासन एवं चेतना की उच्चतम अवस्था की प्राप्ति पर केन्द्रित है, जबकि हठयोग का आधार शारीरिक अभ्यास एवं प्राण के नियंत्रण पर बल

⁵¹चरक सूत्र 1/15

⁵²चरक सूत्र 3/24

देता है। ये दोनों योग की परम्परा में दो भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए भी एक ही लक्ष्य—समाधि की अवस्था—की प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं। राजयोग का सूत्रपात पतंजलि योगसूत्र में हुआ, जिसमें मुख्य रूप से मन की चित्त वृत्तियों के निरोध पर बल दिया गया है। इसके विपरीत हठयोग शारीरिक शुद्धि, आसनों, प्राणायाम, मुद्रा, बंध आदि शारीरिक-मानसिक क्रियाओं के माध्यम से मन की स्थिरता व समाधि की अवस्था तक पहुँचने की एक व्यावहारिक पद्धति प्रस्तुत करता है।

1.1.3 शिक्षा का स्वरूप

एक नवजात शिशु जब संसार में आता है, तब वह पूरी तरह असहाय और सामाजिक रूप से निष्क्रिय होता है। उसे न बोलना आता है, न चलना-फिरना, और न ही वह अपनी आवश्यकताओं को ठीक से व्यक्त कर पाता है। उसका कोई मित्र या शत्रु नहीं होता। वह समाज के रीति-रिवाजों, परम्पराओं और संस्कारों से बिल्कुल अनजान होता है। उसमें न तो आदर्शों के प्रति आकर्षण होता है और न ही नैतिक मूल्यों के प्रति जिज्ञासा। परन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, शिक्षा के औपचारिक एवं अनौपचारिक माध्यमों के निरंतर प्रभाव से उसमें व्यापक परिवर्तन आने लगते हैं।

शिक्षा मानव विकास की सबसे सशक्त प्रक्रिया है। यह मनुष्य की जन्मजात क्षमताओं को विकसित करके उनमें ज्ञान, कला, कौशल और विवेक का संचार करती है, जिससे उसका व्यवहार सकारात्मक दिशा में बदलता है। शिक्षा के प्रभाव से ही व्यक्ति एक सभ्य, सुसंस्कृत और जिम्मेदार नागरिक बनता है। यह प्रक्रिया जन्म के तुरंत बाद ही प्रारम्भ हो जाती है। परिवार के सदस्य—विशेषतः माता-पिता—बालक को बोलना, सुनना और समझना सिखाते हैं। समय के साथ उसे उठने-बैठने, चलने-फिरने, भोजन करने तथा सामाजिक व्यवहार के नियम सिखाए जाते हैं। लगभग तीन-चार वर्ष की अवस्था में बच्चा औपचारिक शिक्षा के लिए विद्यालय जाता है। विद्यालय में उसे सुनियोजित एवं क्रमबद्ध रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके साथ-साथ परिवार, समाज तथा समुदाय भी निरंतर उसे कुछ-न-कुछ सिखाते रहते हैं। विद्यालय से बाहर आने के बाद

भी सीखने-सिखाने की यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। वास्तव में, समाज में सदैव जारी रहने वाली यह निरंतर प्रक्रिया ही शिक्षा का वास्तविक स्वरूप है।

शिक्षा के द्वारा मनुष्य के यश और सम्मान का प्रकाश सर्वत्र फैलता है। शिक्षा ही व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करती है, उसके जीवन को सुसंस्कृत एवं सफल बनाती है तथा उसे समाज में प्रतिष्ठित करती है। कल्पवृक्ष की भाँति शिक्षा व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करने में सक्षम है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है और सूर्यास्त होने पर पुनः मुरझा जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश से प्रत्येक मनुष्य का जीवन भी कमल की तरह खिल उठता है। किन्तु यदि व्यक्ति शिक्षा से वंचित रह जाए, तो उसका जीवन दरिद्रता, दुःख, निराशा तथा अवसाद के गहरे अन्धकार में डूबा रहता है। वास्तव में शिक्षा एक ऐसा आलोक है, जिसके माध्यम से बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्षमताओं का पूर्ण और समग्र विकास होता है।

"शिक्षा प्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥"

अर्थात् वेद का प्राण 'शिक्षा' है, तथा वेद का मुख 'व्याकरण' माना गया है। इसी प्रकार 'ज्योतिष' को वेद की आँख, 'निरुक्त' को उसके कान, 'छन्द' को वेद के पाँव और 'कल्प' को उसके हाथ के रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार वेदों में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त व्यापक, समग्र और गहन माना गया है। वेदों में शिक्षा का मूल उद्देश्य विशिष्ट ज्ञान प्रदान करने और मानव का समग्र उत्थान करने में है।

वास्तव में शिक्षा एक ऐसी निरन्तर प्रक्रिया है, जो एक साधारण मानव को महामानव के स्तर तक पहुँचाने में अमूल्य भूमिका निभाती है। वेदों में इसीलिए स्पष्ट कहा गया है— "मनुर्भवः जनया दैव्यं जनम्"⁵³ अर्थात्— "तुम मानव बनो तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ मनुष्य का निर्माण करो।" वेदों के अनुसार शिक्षा का परम लक्ष्य केवल ज्ञान देना

⁵³ ऋग . वेद 10.53.6

ही नहीं है, बल्कि मनुष्य के व्यक्तित्व को ऐसा श्रेष्ठ और दिव्य बनाना है कि वह समाज एवं संसार को प्रकाशवान कर सके। तमसो मा ज्यार्तिगमय

'शिक्षा' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'शिक्ष्' धातु में भाववाचक 'अ' प्रत्यय और स्त्रीलिंग बोधक 'टाप्' (>आ) प्रत्यय के योग से हुई है। इसका शब्दिक अर्थ है—किसी विद्या को सिखाने की क्रिया, सिखाने की प्रक्रिया, गुरु के समीप रहकर विद्याभ्यास, विद्या का ग्रहण करना अथवा किसी विषय में दक्षता प्राप्त करना। शिक्षा को वैदिक परंपरा में छह वेदांगों में भी प्रमुख स्थान दिया गया है।⁵⁴

श्री वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत - हिंदी शब्दकोश में इस शब्द का प्रयोग अध्ययन-अध्यापन, अधिगम, ज्ञानाभिग्रहण, शिक्षण, प्रशिक्षण, योग्य होने की इच्छा, निष्णात होने की इच्छा, विनय, विनम्रता आदि(अध्ययन, अधिगम, ज्ञानाभिग्रहण, निष्णात होने की इच्छा, किसी कार्य को करने के योग्य होने की इच्छा, अध्यापन, प्रशिक्षण, विनय, विनम्रता, रणशिक्षा, छः वेदाङ्गों में से एक आदि।⁵⁵ विद्या को अभ्यास के द्वारा अर्जित किया जा सकता है भारतीय मनीषियों ने देवत्व को ज्ञान के अधीन माना है (विद्वांसो हि देवा इति।⁵⁶) विद्या को मुक्तिदायी कहा गया है सा विद्या या विमुक्तये।⁵⁷

अनेक ग्रंथों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को श्रवण, मनन और चिन्तन करने के साथ ही उचित निर्णय लेने की शक्ति भी प्रदान करती है। शिक्षेर्जिज्ञानसायाम।⁵⁸ शिक्षा शिक्षयंतेनयेती वर्णाद्युच्चरणलक्षणं।⁵⁹ अर्थात् जिससे वर्ण का उच्चारण सिखाया जाये उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षेदमं दानं दयामिति।⁶⁰ शिक्षा तात्कालिक दम, दान तथा दया जैसे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक की तरह है।

⁵⁴ शब्दार्थ कौस्तुभ पृ. 1152

⁵⁵ आप्टे, वामन शिवराय, संस्कृतहिन्दी शब्द पृ. 1015-, चौखम्बा विद्याभवन करण 2014

⁵⁶ शतपथ ब्रा . 3.4.3.10

⁵⁷ विष्णु पुराण (1.19.41)

⁵⁸ पा. वार्तिक के अनुसार 1/3/21

⁵⁹ शांकरभाष्य तैत्तिरियोपनिषद 1/2

⁶⁰ वृहदारान्यकोपनिषद 5/2/3

महाभारत में 'शिक्षा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आदिपर्व में प्राप्त होता है। शिक्षा जन्मजात पाशविक प्रवृत्तियों का शोधन, परिमार्जन तथा मार्गान्तरीकरण होता है। इसलिए शिक्षा के पर्यायवाची शब्द में विद्या शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया गया है।⁶¹

1.1.3.1 शिक्षा का उद्देश्य

प्राचीन चिंतन के अनुसार ज्ञान प्रदान करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है गीता में श्लोक संख्या 4/38 में कहा गया है की न ही ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते अर्थात् विद्या से पवित्र संसार में कुछ भी नहीं है और ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र है। शिक्षा के उद्देश्य के विषय में भारतीय शास्त्रों में कहा गया है - कि सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या वही है जो मोक्ष प्रदान कर सके।

शिक्षा ही एक मात्र वह मूल्यवान वस्तु है। जो विद्यार्थियों की क्षमताओं को इस प्रकार विकसित कर सकती है; ताकि वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली जीवन की समस्याओं का ठीक-ठीक समाधान करने में समर्थ हो सकें।⁶²

इस प्रकार शिक्षा उद्देश्य विहीन व निश्चित निर्देशन से वंचित नहीं है, इसलिए अनेक उद्देश्य दृष्टिगत होते हैं। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वतोमुखी विकास अर्थात् शरीर, मन और आत्मा के विकास से हैं, क्योंकि जिस विद्या से इन सबका विकास हो और पुष्पित होना निश्चय हो वही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सभी गुणों का विकास होना चाहिये। इसी कारण श्रीमद् भगवद् गीता आधुनिक शैक्षिक उद्देश्यों में जो तीन आर- Reading, Writing, Arithmetic अर्थमेटिक हैं इनकी अपेक्षा तीन एच- Hand (शरीर) Head (मन) Heart (आत्मा) की शिक्षा पर विशेष बल देती है। गीता यह मानती है कि इन तीन तत्वों के सामन्जस्यपूर्ण विकास से बालक का सर्वतोमुखी विकास सम्भव होता है। इसी भाव से सम्पृक्त कथन श्रीमद्भगवद् गीता में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

⁶¹ म.भा. आदि 01/67 पृ 6

⁶² गाँधी महात्मा, हरिजन, साप्ताहिक 23-5-36 एन.पी.नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

"भुज्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः ।

शान्तिं निर्वाण परमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ ⁶³

इस प्रकार मन को संयमित रखने वाला योगी मन को निरन्तर मुझमें तल्लीन कर निर्वाण प्राप्त करता है, और मुझे में स्थित होकर परम शांति पाता है । विद्यार्थी को पूर्ण समर्पण भाव से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।

1.1.4 योगशास्त्र में ज्ञान का स्वरूप और उसका शैक्षिक महत्व

योगशास्त्र भारतीय दर्शन की उन गहनतम और सुव्यवस्थित ज्ञान-प्रणालियों में से एक है, जो जीवन को केवल भौतिक या लौकिक सीमाओं में नहीं देखता, बल्कि उसे आत्मा, चित्त और चेतना के परिष्करण की यात्रा के रूप में समझता है। इस प्रणाली में ज्ञान का स्वरूप मात्र तथ्यों, सिद्धांतों या तर्कों का संग्रह नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत, आत्मानुभूति से पुष्ट और मोक्ष की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है। योगदर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतञ्जलि इस ज्ञान की आधारभूमि चित्त की स्थिति में रखते हैं। उनके अनुसार-"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (योगसूत्र 1.2) अर्थात् योग वह अवस्था है जिसमें चित्त की समस्त वृत्तियाँ, जो अनुभवों, स्मृतियों, विकल्पों और भावनाओं के रूप में अंतर्मन को प्रभावित करती हैं, शांत हो जाती हैं। यह शांत अवस्था ही वह क्षण है जब साधक अपनी आत्मा के शुद्ध, स्वरूपगत प्रकाश से साक्षात्कार करता है। चित्त की चित्त की पाँच वृत्तियाँ - जिनमें प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, और स्मृति सम्मिलित हैं । जब चित्त सक्रिय होती हैं, तो आत्मा स्वयं के स्वरूप को नहीं देख पाती, जैसे अशांत जल में प्रतिबिंब स्पष्ट नहीं होता। जब ये वृत्तियाँ निरुद्ध होती हैं, तो "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" (योगसूत्र 1.3) की अवस्था आती है — अर्थात् आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होती है।

शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में यह सूत्र अत्यंत गहन महत्व रखता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली, जो मुख्यतः जानकारी, परीक्षा और स्मृति परीक्षण पर आधारित है, वह अक्सर विद्यार्थी के चित्त को शांत करने के स्थान पर और अधिक विक्षिप्त, भ्रमित तथा विकल्पग्रस्त बना

⁶³गीता 6/15

देती है। प्रतिस्पर्धा, सामाजिक अपेक्षाएँ, मूल्यांकन की चिंता और भविष्य की अनिश्चितता छात्र के चित्त को न केवल अस्थिर करती हैं, बल्कि ज्ञान के सच्चे स्वरूप से भी उसे दूर ले जाती हैं। योगशास्त्र का यह सूत्र इस स्थिति को बदलने की प्रेरणा देता है। यह कहता है कि जब तक विद्यार्थी का चित्त विकल्पों, द्वंद्वों और इंद्रियों की उत्तेजना से व्याकुल रहेगा, तब तक उसमें न तो आत्मनिरीक्षण की शक्ति उत्पन्न हो सकेगी, न ही सच्चे ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित होगी। चित्त की शांति और संतुलन के बिना ज्ञान केवल सूचना या स्मृति बनकर रह जाएगा – वह बोध, दृष्टि और चरित्र का रूप नहीं ले सकेगा। इसलिए योगशास्त्र यह प्रस्ताव करता है। कि शिक्षा को चित्तशुद्धि का माध्यम बनाया जाए, जहाँ छात्र बाह्य विषयों के साथ-साथ अपनी आंतरिक वृत्तियों का भी निरोध करना सीखे। जब शिक्षा इस दिशा में कार्य करती है, तब वह व्यक्ति को केवल समाज में सफल बनाने का कार्य नहीं करती, बल्कि उसे जीवन में सार्थक और प्रबुद्ध बनाती है।

इसी क्रम में योगशास्त्र में चित्तवृत्तियों के निरोध की प्रक्रिया को दो मूल साधनों – अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से संभव बताया गया है, जो पतञ्जलि योगसूत्र के सूत्र 1.12 में स्पष्ट किया गया है “अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः” अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध होता है। यह सूत्र योग के आध्यात्मिक संदर्भ में जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी प्रासंगिकता गहन है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में ‘अभ्यास’ को प्रायः केवल दोहराव या रटने की प्रक्रिया तक सीमित कर दिया गया है, जबकि योगदर्शन में अभ्यास का अर्थ है – योगसूत्र के सूत्र 1.14 दीर्घकालिक, निरन्तर, निष्ठापूर्वक किया गया प्रयास, जो मन, बुद्धि और चित्त को एकाग्र, संयमित और स्थिर बनाता है। जब विद्यार्थी इस प्रकार के अभ्यास की आदत डालता है, तो उसमें आत्म-अनुशासन, मानसिक धैर्य और लक्ष्य- केन्द्रितता विकसित होती है। यह अभ्यास उसे बाह्य आकर्षणों और तात्कालिक परिणामों के मोह से दूर रखते हुए भीतर की दृढ़ता प्रदान करता है। वहीं दूसरी ओर, वैराग्य का अर्थ केवल सांसारिक जीवन से विमुख होना नहीं है, जैसा कि अक्सर समझा जाता है। योगशास्त्र में वैराग्य का आशय है - विषयों में रत चित्त को उनसे हटाकर, आत्मलक्ष्य

की ओर उन्मुख करना। यह एक मानसिक स्थिति है, जिसमें विद्यार्थी अपनी जिज्ञासा, ऊर्जा और समय को तात्कालिक सुख, दिखावा या प्रतिस्पर्धात्मक तनाव के बजाय दीर्घकालिक बौद्धिक और आत्मिक विकास की ओर केंद्रित करता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में, जहाँ विद्यार्थी बाह्य दबावों, अंकों की दौड़, और सतही उपलब्धियों की होड़ में घिरा होता है, वहाँ वैराग्य की यह भावना उसे आंतरिक रूप से सशक्त और स्थिर बनाती है। इन दोनों तत्वों -अभ्यास और वैराग्य -का संतुलन शिक्षा को न केवल दक्षता आधारित बनाता है, बल्कि वह चरित्र निर्माण, मानसिक सुदृढ़ता और आत्म-प्रेरणा का भी माध्यम बन जाता है। ऐसा छात्र केवल पढ़ने और परीक्षा देने में सफल नहीं होता, बल्कि वह अपने जीवन में चुनौतियों का सामना आत्मविश्वास और संयम के साथ करने योग्य बनता है। योगशास्त्र की यह साधना पद्धति हमें यह सिखाती है कि शिक्षा को केवल सूचना का हस्तांतरण न मानकर, उसे एक नवजीवन की साधना बनाना चाहिए, जहाँ अभ्यास से सामर्थ्य और वैराग्य से दृष्टि का विकास हो।

योगशास्त्र में वर्णित ज्ञान की उच्चतम अवस्था को पतञ्जलि ने "ऋतम्भरा प्रज्ञा" (योगसूत्र 1.48) के रूप में प्रस्तुत किया है। यह कोई सामान्य बौद्धिक ज्ञान नहीं है, जो केवल स्मृति, तर्क या शास्त्रों के अध्ययन पर आधारित हो, बल्कि यह एक ऐसी प्रज्ञा है जो सत्य (ऋत) को स्वयं में धारण करने वाली है -वह सत्य जो काल, परिस्थिति और व्यक्तिपरक अनुभवों से परे है। पतञ्जलि स्पष्ट रूप से आगे कहते हैं - "श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्" (1.49) अर्थात् यह प्रज्ञा श्रुति (शास्त्रों), अनुमान (तर्क) और परंपरागत ज्ञान से भिन्न एक विशेष प्रकार का ज्ञान है, जो सत्य को प्रत्यक्ष करता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा शिक्षा में आत्मदृष्टि, मौलिकता और रचनात्मकता की उस चेतना का बोध कराती है, जो आधुनिक शिक्षण में कहीं न कहीं गुम होती जा रही है। जब विद्यार्थी स्वयं के अनुभवों, चिंतन और मौन से प्रेरित होकर ज्ञान को खोजता है, तब वही ज्ञान सजीव और आत्मीय बनता है। यह प्रज्ञा उन्हें केवल पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर नहीं रखती, बल्कि वे अपने भीतर की बौद्धिक और नैतिक शक्ति से भी साक्षात्कार करते हैं। ऐसी अवस्था में शिक्षा मात्र व्यावसायिक प्रशिक्षण नहीं रह जाती, बल्कि वह एक अंतर्ज्ञानात्मक प्रक्रिया बन जाती है, जिसमें विद्यार्थी

अपनी अंतरात्मा की आवाज़ को सुनकर निर्णय लेने और जीवन को समझने योग्य बनता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा की यह शक्ति शिक्षा को केवल 'बाह्य अनुवर्तन' से हटाकर 'आंतरिक प्रज्वलन' की ओर ले जाती है, जहाँ छात्र नकल नहीं, नवाचार करता।

योगशास्त्र में ज्ञान की पराकाष्ठा केवल आत्मदर्शन या तात्कालिक अनुभव नहीं है, बल्कि वहविवेकख्यातिके रूप में प्रकट होती है - जिसे पतञ्जलि ने स्पष्ट रूप से योगसूत्र (2.26) में इस प्रकार निरूपित किया है "विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।" अर्थात् प्रकृति और पुरुष (आत्मा) के भेद का अविचल, स्थायी ज्ञान ही सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति का उपाय है। यह विवेक केवल तात्त्विक ज्ञान नहीं है, बल्कि जीवन को दिशा देने वाली एक सजीव अंतर्दृष्टि है, जो व्यक्ति को जागरूक, संवेदनशील और उत्तरदायी बनाती है। यह विवेक शिक्षा को एक नैतिक आधार प्रदान करता है, जिससे छात्र न केवल जानकार या विश्लेषक बनते हैं, बल्कि नैतिकतापूर्ण निर्णय लेने वाले जागरूक नागरिक भी बनते हैं। विवेकख्याति छात्र के भीतर आत्मनियंत्रण की भावना को सुदृढ़ करती है, जिससे वह केवल अपनी इच्छाओं का अनुयायी नहीं होता, बल्कि उनके ऊपर नियंत्रण रखते हुए एक संतुलित और संयमित जीवन जीने की क्षमता प्राप्त करता है। यह करुणा और सह-अस्तित्व की चेतना को भी जाग्रत करता है, जो आज के सामाजिक और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह विवेक विद्यार्थियों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को भी पोषित करता है।

योगशास्त्र में वर्णित अंतिम अवस्था कैवल्य (योगसूत्र 2.25) केवल योगी की साधना की चरम स्थिति नहीं है, बल्कि यह जीवन और शिक्षा दोनों का चरम आदर्श है। पतञ्जलि कहते हैं "तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।" अर्थात् जब अविवेक रूपी कारण (अज्ञान) का अभाव होता है, तब प्रकृति और पुरुष के संयोग का अभाव हो जाता है, और आत्मा (दृष्टा) कैवल्य को प्राप्त हो जाती है। यह कैवल्य - पूर्ण स्वतंत्रता - केवल लौकिक बंधनों से मुक्ति नहीं, बल्कि चित्त की निर्भ्रांति, आत्मा की निष्कलंकता और चेतना की पूर्णता है। शिक्षा के संदर्भ में यह कैवल्य वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति केवल विषयों का ज्ञाता या सूचना-संग्राहक नहीं होता, बल्कि वह अपने भीतर के स्वतंत्र, उत्तरदायी, और विवेकशील आत्मतत्त्व से परिचित हो जाता है। यह स्वतंत्रता

प्रमाण पत्र, डिग्री, अथवा रोजगार से प्राप्त नहीं होती, बल्कि यह आत्मज्ञान और आत्मबोध से उत्पन्न होती है। ऐसी स्वतंत्रता व्यक्ति को अपनी इच्छाओं, विचारों और निर्णयों के लिए भीतर से उत्तरदायी बनाती है।

इस प्रकार, योगशास्त्र में प्रतिपादित ज्ञान केवल बौद्धिक अभ्यास या दार्शनिक विमर्श नहीं है, बल्कि यह आत्मिक जागरण, चेतना के परिष्कार और स्वरूप के साक्षात्कार की एक समग्र प्रक्रिया है। यह ज्ञान व्यक्ति को न केवल बाह्य संसार के सत्य को देखने योग्य बनाता है, बल्कि वह उसकी अंतःचेतना में स्थित आत्मा के प्रकाश को प्रकट करता है। योगदर्शन इस ज्ञान को अभ्यास, वैराग्य, प्रज्ञा, विवेक और अंततः कैवल्य तक विस्तारित करते हुए, शिक्षा के लिए एक अत्यंत गहन और जीवनपरक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

1.2 शोध की आवश्यकता

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कुछ न्यूनतायें दृष्टिगत होती हैं, जैसे मूल्यपरक शिक्षा, चरित्र एवं संस्कार का अभाव, दया भावना, सेवा भाव का अभाव एवं भारतीय संस्कृति के प्रति विरोध का भाव..। शिक्षक और शिक्षार्थी में मध्य अंतर देखने को मिलता है दोनों में एक दूसरे के प्रति दोष भावना देखने को मिलती है विद्यालयों, महाविद्यालयों में पढाई का इतना ज्यादा भर हो जाता है, की छात्रों में मानसिक तनाव अधिक मात्रा में देखने को मिलता है। इन उपयुक्त दोष एवं कमियों का निवारण योगवासिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता में विवेचित शैक्षिक तत्वों के द्वारा किया जा सकता है। आधुनिक समय की शिक्षा व्यवस्था को प्राचीन शिक्षा प्रणाली के उत्कृष्ट मूल्य एवं संस्कार युक्त शिक्षा आदि के द्वारा व्यवस्थित किया जा सकता है।

इसका कारण यह है कि वर्तमान समय में व्यक्ति शिक्षा को रैखिक प्रक्रिया मानते हैं, जबकि शिक्षा चक्रीय प्रक्रिया है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जन्म से प्रारम्भ होती है और मृत्यु तक चलती रहती है। शिक्षा ही एकमात्र अमूल्य सिद्धि है, जो विद्यार्थी के क्षमताओं को विकसित करती है, ताकि वे अपने हर समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बन सकें। शिक्षा मनुष्य को न केवल जीवन के यथार्थ का दर्शन कराती है

वरन यह शिष्य को इस योग्य बनती है की भव सागर की बाधाओं को पार करके अंत ए मोक्ष को प्राप्त कर सके 'सा विद्या या विमुक्तये', अर्थात्- विद्या वही है, जो बंधन से मुक्त कराती है।

योग- वाशिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता इस लिए है क्यों की आज व्यक्ति के अन्दर सिर्फ शिक्षा अर्थात जीवोपर्जन के लिए शिक्षा, जब व्यक्ति को नौकरी, पैसा नहीं मिलता है तो वह मानसिक तनाव से ग्रसित हो जाता है उसके मन में बहुत तरह के विचार चलने लगते हैं और वह अपने आप को बहुत कमजोर महसूस करता है इन समस्याओं से निवारण के लिए सही ज्ञान का होता अति आवश्यक है

योग वाशिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्व समाज के लिए अत्यंत आवश्यक हैं क्योंकि ये व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करते हैं। योग-वाशिष्ठ आत्मज्ञान और मानसिक शांति पर बल देता है, जो आज के तनावपूर्ण जीवन में अत्यधिक प्रासंगिक है। यह व्यक्ति को आंतरिक स्वतंत्रता और बाहरी जीवन के प्रति निर्लिप्तता का संतुलन सिखाता है। वहीं, श्रीमद्भगवद्गीता कर्म, ज्ञान, और भक्ति के माध्यम से जीवन को संतुलित और उद्देश्यपूर्ण बनाने का मार्ग दिखाती है। गीता का 'निष्काम कर्म' सिद्धांत कर्तव्यनिष्ठा और निःस्वार्थ सेवा की प्रेरणा देता है, जिससे समाज में नैतिकता और ईमानदारी को बढ़ावा मिलता है।

इन ग्रंथों की शिक्षा लोगों को मानसिक शांति, नैतिकता, और आत्मनिर्भरता की ओर प्रेरित करती है, जो समाज में एकता और समरसता का आधार बनती है। आधुनिक समस्याओं जैसे तनाव, अवसाद, पर्यावरण संकट, और सामाजिक असंतुलन का समाधान इनके सिद्धांतों में निहित है। 'योग वाशिष्ठ' और 'गीता' यह सिखाते हैं कि व्यक्ति अपने आंतरिक शक्ति और ज्ञान को पहचानकर न केवल अपने जीवन को उन्नत बना सकता है, बल्कि समाज को भी एक नई दिशा दे सकता है। यदि इन ग्रंथों के शैक्षिक तत्वों को जीवन और शिक्षा में अपनाया जाए, तो एक सुसंस्कृत, शांतिपूर्ण और समृद्ध समाज का निर्माण संभव है।

1.3 शोध के उद्देश्य-

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता, भारतीय संस्कृति और शैक्षिक परंपरा के दो महान स्तंभ माने जाते हैं। इस शोध का मुख्य उद्देश्य इन दोनों ग्रंथों में निहित शैक्षिक तत्वों का गहन अध्ययन और समीक्षात्मक विश्लेषण करना है। इन ग्रंथों में प्राचीन भारतीय शिक्षा के मूल सिद्धांत, आदर्श शिक्षक-शिष्य संबंध, नैतिकता, आध्यात्मिकता और आत्म-साक्षात्कार की शिक्षा, तथा व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए शिक्षा के महत्व को समग्र रूप से समझाया गया है। यह शोध इन शैक्षिक तत्वों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए यह जानने का प्रयास करेगा कि आज की शिक्षा प्रणाली में इनकी प्रासंगिकता क्या है और कैसे इनका समावेश समग्र शिक्षा की दिशा में सहायक हो सकता है। इस शोध के विस्तारित उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- ❖ योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शैक्षिकसिद्धांतों और आदर्शों का गहन अध्ययन और विश्लेषण करना। इन ग्रंथों में शिक्षा के उद्देश्यों,
- ❖ ज्ञान प्राप्ति के साधनों और शिक्षा के विविध आयामों का मूल्यांकन करना।
- ❖ शिक्षक-शिष्य संबंध की आदर्श संरचना, जिम्मेदारियों और संवाद के पहलुओं का अध्ययन करना और उनकी आधुनिक शिक्षा प्रणाली में प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
- ❖ नैतिकता, आध्यात्मिकता और आत्म-साक्षात्कार के शैक्षिक तत्वों का विश्लेषण करना और सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन में संतुलन बनाने के लिए उनके महत्व का आकलन करना ।
- ❖ व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक सिद्धांतों की भूमिका का अध्ययन करना ।
- ❖ प्राचीन शैक्षिक सिद्धांतों, जैसे आत्म-चिंतन, स्वानुभव आधारित ज्ञान और आचार-व्यवहार आधारित शिक्षा, को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने की संभावनाओं का अध्ययन करना।

- ❖ समग्र शिक्षा की अवधारणा को योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के दृष्टिकोण से समझना और इसे वर्तमान वैश्विक शिक्षा प्रणाली में लागू करने की दिशा में समाधान प्रस्तुत करना ।
- ❖ वर्तमान शिक्षा प्रणाली में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का समाधान खोजने के लिए योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्वों का उपयोग करना।
- ❖ तनाव, मानसिक असंतुलन और सामाजिक संघर्षों जैसे आधुनिक समाज के मुद्दों को हल करने में योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शैक्षिक शिक्षाओं की उपयोगिता का मूल्यांकन करना।
- ❖ योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक सिद्धांतों को भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए व्यवहारिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना।

1.4 शोधप्रश्न - शोध उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित शोध प्रश्न हैं:

- योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शैक्षिक तत्व क्या हैं, और वे भारतीय शैक्षिक परंपरा के स्तंभ के रूप में कैसे प्रासंगिक हैं ?
- इन ग्रंथों में शिक्षा के उद्देश्यों, ज्ञान प्राप्ति के साधनों और विविध आयामों को कैसे परिभाषित किया गया है ?
- योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में आदर्श शिक्षक-शिष्य संबंधों की संरचना, जिम्मेदारियां और संवाद क्या हैं, और वे आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कितने उपयोगी हैं ?
- नैतिकता, आध्यात्मिकता और आत्म-साक्षात्कार की शिक्षा के माध्यम से सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में संतुलन स्थापित करने के लिए इन ग्रंथों में कौन से तत्व दिए गए हैं ?

- व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित शिक्षा की भूमि का क्या है, और यह समकालीन संदर्भ में कैसे उपयोगी है ?
- प्राचीन शैक्षिक सिद्धांतों, जैसे आत्म-चिंतन, स्वानुभव आधारित ज्ञान और आचार-व्यवहार आधारित शिक्षा, को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कैसे एकीकृत किया जा सकता है ?
- समग्र शिक्षा की अवधारणा को योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर कैसे परिभाषित और विकसित किया जा सकता है ?
- आज की शिक्षा प्रणाली में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के हास को रोकने और उनके पुनर्स्थापन के लिए योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता से क्या समाधान प्राप्त किए जा सकते हैं ?
- प्राचीन शिक्षा प्रणाली के तत्वों का उपयोग कर आधुनिक समाज में तनाव, मानसिक असंतुलन और सामाजिक संघर्षों का समाधान कैसे किया जा सकता है ?
- योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक सिद्धांतों को भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए किस प्रकार से लागू किया जा सकता है ?

1.5 शोध प्रविधि

इस शोध में गुणात्मक अनुसंधान पद्धतिका उपयोग किया गया है, क्योंकि इसका उद्देश्य योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता जैसे प्राचीन ग्रंथों में निहित शैक्षिक तत्वों का गहन अध्ययन और उनके आधुनिक संदर्भ में अनुप्रयोग का विश्लेषण करना है। शोध में विवेचनात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें प्राचीन शैक्षिक सिद्धांतों का आधुनिक शिक्षा प्रणाली से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में, योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के मूल पाठ और उनकी टीकाओं का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही, द्वितीयक स्रोतों में इन ग्रंथों पर आधारित

शोध-लेख, पुस्तकों, और शोध-प्रबंधों का गहन अध्ययन किया गया है। डेटा संग्रहण के लिए पुस्तकालय अनुसंधान और डिजिटल संसाधनों, जैसे JSTOR, Shodhganga, आदि का उपयोग किया गया है। पाठ-विश्लेषणके माध्यम से इन ग्रंथों में निहित शिक्षा के उद्देश्यों, नैतिकता, आध्यात्मिकता और समग्र शिक्षा के तत्वों का मूल्यांकन किया गया है। इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक विश्लेषणद्वारा प्राचीन और आधुनिक शैक्षिक सिद्धांतों के बीच समानता और अंतर का अध्ययन किया गया है। इस विश्लेषण से यह समझने का प्रयास किया गया है कि योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में प्रस्तुत शैक्षिक तत्वों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कैसे एकीकृत किया जा सकता है।

शोध के दौरान यह भी आकलन किया गया है कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत, सामाजिक, और सांस्कृतिक विकास के लिए इन सिद्धांतों का कैसे उपयोग किया जा सकता है। नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए एक व्यावहारिक ढांचा तैयार करने पर भी ध्यान दिया गया है। अंततः, इस शोध में प्राचीन शैक्षिक तत्वों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रासंगिक और उपयोगी बनाने के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रदान किए गए हैं।

द्वितीय अध्याय

योग-वाशिष्ठ के शैक्षिक और दार्शनिक
दृष्टिकोण

द्वितीय अध्याय

योग-वाशिष्ठ के शैक्षिक और दार्शनिक दृष्टिकोण

2.1 योग-वासिष्ठ का परिचय-

भारतीय ज्ञान परंपरा के ग्रंथों में 'योग-वाशिष्ठ' एक विशिष्ट एवं अनुपम ग्रंथ है। यह अद्वैत वेदांत की अवधारणा को स्पष्ट करने वाला अद्वितीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में वैदिक दर्शन एवं भारतीय मान्यताओं का सारांश विद्यमान है। इसलिए इसकी तुलना किसी अन्य ग्रंथ से करना असंभव है। इसके अध्ययन से मन को क्लेश पहुंचाने वाली धारणाओं का नाश है और जीव को अपने 'सच्चिदानंद' स्वरूप का बोध होता है। ज्ञानियों में अग्रणी महर्षि वशिष्ठ जी को जो ज्ञान उनके पिता ब्रह्मा के द्वारा प्राप्त हुआ था वही ज्ञान महर्षि ने श्री रामचंद्र जी को दिया, जिसको प्राप्त करने के पश्चात श्री राम जीवनमुक्त होकर अपने कर्तव्य पथ पर अनवरत रूप से एक योगी की भांति चल सके। इस मायावी संसार में भौतिक रूप से अपने को दूर रखकर अपने जीवन का निर्वाह किया। महर्षि वशिष्ठ और राम के संवाद को महर्षि वाल्मीकि ने लोककल्याण के लिए योग-वाशिष्ठ ग्रंथ के रूप में संकलित एवं संग्रहित किया है।

योग-वाशिष्ठ महारामायण से जुड़ी कथाओं पर अपूर्व कार्य करने वाले रघुनाथ सिंह जी ने लिखा है कि योग-वाशिष्ठ को उत्तररामायण कहते हैं। वासिष्ठ रामायण के लेखन व रचनाकार के बारे में अनेक प्रकार की विवेचनाएँ प्रचलित हैं। 'वासिष्ठ रामायण' में सर्गों के अंतिम में इसे 'योगवशिष्ठ महारामायण' नाम से बताया गया है। प्रचलन में इस का नाम 'योग-वाशिष्ठ' है उसी का प्रयोग रघुनाथ सिंह जी ने किया है।⁶⁴ इससे स्पष्टतः कह सकते हैं कि 'योगवशिष्ठ महारामायण' ही उत्तररामायण है।

योग-वाशिष्ठ ग्रंथ मानव जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष की साधना के लिए विस्तारपूर्वक साधनों का संकलन है। मनुष्य संसार में रहते हुए कर्म बंधनों को काटकर मोक्ष की प्राप्ति कैसे कर सकता है, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। मोक्ष

⁶⁴ सिंह, आर., योगवासिष्ठ कथा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1988 पृ.स. 20

प्राप्ति के साधन के रूप में पूजा, पाठ, प्रार्थना, मंत्र, जप, तप, हठयोग आदि साधनों के अतिरिक्त यदि साधक इस ग्रंथ का अध्ययन, मनन और चिंतन करें तो निश्चित ही इसमें बताए गए विधियों को अपने जीवन में अंगीकार कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

योग-वाशिष्ठ ग्रंथ भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में एक विशिष्ट स्थान रखता है। भारतीय दर्शन के अधिकांश ग्रंथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस ग्रंथ से प्रभावित हुए हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन से भारतीय दर्शन के मूल सिद्धांतों का सार सहज ही प्राप्त हो जाता है। इसे पढ़ने के बाद अन्य ग्रंथों के अध्ययन की आवश्यकता अल्प हो जाती है क्योंकि यह स्वयं में पूर्णता को समेटे हुए है। ग्रंथकार के अनुसार, यदि हास्ति तदन्यत्र। यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ "यदि कोई विषय इस ग्रंथ में उल्लिखित नहीं है, तो वह अन्यत्र भी उपलब्ध नहीं होगा, और जो विषय इसमें सम्मिलित है, वही अन्य ग्रंथों में भी मिलेगा।" इसकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह है कि इसमें किसी प्रकार की संकीर्णता, असहिष्णुता या धर्माधता के लिए कोई स्थान नहीं है। यह ग्रंथ मानसिक संकीर्णताओं से मुक्त होकर प्रत्येक व्यक्ति की धार्मिक मान्यताओं और स्वतंत्रता का समान रूप से सम्मान करता है। इसमें सर्वधर्म समभाव की अवधारणा स्पष्ट रूप से प्रतिपादित की गई है, क्योंकि सभी आध्यात्मिक परंपराओं का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही है।

योग-वाशिष्ठ ग्रंथ के अनुसार, अज्ञानता ही ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह और माया जैसी भ्रांतियों का मूल कारण है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें किसी अन्य ग्रंथ का खंडन या विरोध करने के बजाय सहिष्णुता के साथ उनकी मान्यताओं को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें तर्कसंगत और युक्तिसंगत विचारों को अपनाने पर जोर दिया गया है, भले ही वे किसी छोटे बालक द्वारा ही क्यों न प्रस्तुत किए गए हों। इसके विपरीत, यदि कोई विचार तर्कसंगत नहीं है, तो उसे भले ही किसी महान ऋषि द्वारा लिखा गया हो, त्याग देना चाहिए। इस ग्रंथ में निर्भीकतापूर्वक इस प्रकार के विचार व्यक्त किए गए हैं।

योग-वाशिष्ठ के अनुसार, मनुष्य को उसी मार्ग पर चलना चाहिए जिससे उसकी उन्नति हो सकती है। यदि वह सही मार्ग का अनुसरण नहीं करता, तो उसका जीवन न सुखद होगा और न ही उसे किसी प्रकार का संतोष मिलेगा। ऐसा जीवन उसके लिए न तो लाभकारी होगा और न ही शुभ परिणाम देने वाला। जिस प्रकार विभिन्न स्थानों और दिशाओं से आने वाले यात्री एक ही नगर की ओर जाते हैं, उसी प्रकार सभी दार्शनिक विचारधाराएँ विभिन्न परिस्थितियों और समय में प्रकट हुए मार्गों के माध्यम से एक ही सत्यवेदांत के ज्ञानकी ओर अग्रसर होती हैं। इस ग्रंथ में यह भी कहा गया है कि यदि कोई विचार तार्किक और युक्तिसंगत हो, तो उसे किसी भी व्यक्ति द्वारा कहा गया हो, स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन यदि कोई बात तर्क और विवेक से परे है, तो उसे त्याग देना चाहिए, चाहे वह स्वयं ब्रह्मा द्वारा ही क्यों न कही गई हो।

2.1.1 ग्रंथ की प्रमाणिकता

भारत के अध्यात्मिक ज्ञान परंपरा में वेद, पुराण, उपनिषद, षड्दर्शन, महाभारत, रामायण आदि ग्रंथों के सार सिद्धांतों का प्रामाणिक विश्लेषण करने वाला योग-वाशिष्ठअद्वैत का सर्वमान्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ में अद्वैत वेदांत की धारणा का पूर्ण समायोजन किया गया है। इस ग्रंथ की प्रमाणिकता की सिद्धि इस बात से भी होती है कि कई उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीता में भी ऐसे सूत्र उपलब्ध हैं, जो योग-वाशिष्ठ ग्रंथ में उपलब्ध है। भारतके संपूर्ण वेदांत दर्शन को प्रतिपादित करने वाले साहित्य में 'योग-वाशिष्ठ' ग्रंथ श्रेष्ठतम है। यह ग्रंथ मानवीय चेतना के विकास के लिए परम कल्याणकारी है।

सरल एवं रोचक भाषा शैली का प्रयोग योग-वाशिष्ठ ग्रंथ को सरल एवं रोचक भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है। अध्यात्म एवं योग के कठिन सूत्रों को विभिन्न द्रष्टांतों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि आम जनमानस उसे सरलता से समझकर जीवन में अंगीकार कर सके। किसी भी शिक्षण का उद्देश्य प्राप्त ज्ञान से जीवन के व्यवहार को परिवर्तित करना है। इस ग्रंथ में गूढ़ विषयों को इतने सरल एवं प्रभावोत्पादक तरीके से प्रस्तुत किया गया है, जिससे साधारण मनुष्य भी उसे सरलता

से समझकर अपने जीवन में परिवर्तन ला सकता है। योग-वाशिष्ठ अलंकारों से युक्त सरल एवं सुबोध ग्रंथ है, इसको सुंदर एवं रसपूर्ण काव्य शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें सूत्रों को विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।⁶⁵

योग-वाशिष्ठकार को रसहीन, रूखी और कठिन भाषा पसन्द नहीं है, क्योंकि वह श्रोता के हृदय में न प्रवेश ही कर पाती है और न ही वहाँ पर जाकर प्रकाश करती है।

यत्कथ्यते हि हृदयांगमयोपमान, युक्त्या गिर मधुरयुक्तपदार्थया च।
श्रोतुस्तदंग हृदयं परितो विसारि, व्याप्नोति तैल्मिव वारिणि वार्य शंकाम ॥
त्यक्तोपमानमनोग्यपादं दूरापं, क्षुब्धं धाराविधुरितं विनिगिर्णवर्णम्।
श्रोतुर्न याति हृदयं प्रविनाशमेति, वाक्यं किलाज्यमिव भस्माणि द्रव्यमानम्॥

(यो.वासिष्ठ 3/84/25)

अर्थात्- जो कुछ ऐसी भाषा में कहा जाता है, जो कि मधुर शब्दों वाली और समझ में आने वाले दृष्टान्तों (उपमाओं) और युक्तियों वाली हो, वह सुनने वाले के हृदय में प्रवेश करके वहाँ पर इस प्रकार फैल जाता है, जिस प्रकार तेल की बूँद जल के ऊपर और सुनने वाले की सब शंकाएँ दूर हो जाती हैं। इसके विपरीत वह भाषा जो कि कठिन, कठोर, कठिनाई से उच्चारण किए जाने वाली सरस शब्दों और उपामाओं से रहित है, वह सुनने वालों के हृदय में प्रवेश नहीं कर सकती और वह इस प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार राख में पड़ा हुआ घृत नष्ट हो जाता है।

2.1.2 योग-वाशिष्ठ के रचयिता एवं रचनाकाल - संस्कृत के अन्य अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों के समान योग-वाशिष्ठ जैसा वृहत् ग्रन्थ भी हमें रचना काल और रचनाकार बहुत कुछ उपलब्ध नहीं करता है, समय-समय पर अनेक विद्वानों द्वारा योग-वाशिष्ठ के रचनाकाल और रचनाकार का निर्धारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी आशातीत सफलता नहीं प्राप्त हो सकी, यहां हम उन्हें विभिन्न विद्वानों अनुभवों की गवेषणा के आधार पर योग-वाशिष्ठ के रचनाकाल और रचनाकार के विषय में संक्षिप्त विवेचना करने का प्रयास करेंगे।

⁶⁵ शास्त्रं सुधामेवेदं सालंकारविभूषितम्। काव्यं रसमयं चारु दृष्टान्तैः प्रतिपादितम्॥

योग - वाशिष्ठ के अनुसार महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे उनको यह ज्ञान अपने पिता ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ था। भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता माने जाते हैं और ज्ञान के भी आदिगुरु कहा गया है, ब्रह्मा जी में दो शक्ति हैं ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति। ज्ञान शक्ति का उपदेश महर्षि वशिष्ठ ने श्रीराम को दिया, जिससे वे जीवन मुक्त होकर रहे

संस्कृत साहित्य में अनेक महान ग्रंथों में योग-वाशिष्ठ रामायण जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचनाकाल हमें अतीत के प्रति गम्भीर बना देते हैं। अनेक साक्ष्यों व विद्वानों के मतों के अनुसार इसके लेखन व समय को लेकर बहुत से मतभेद नजर आते हैं और शायद ही किसी अन्य ग्रन्थ के बारे में इतने मतभेद हों। योग-वाशिष्ठ के रचना के समय को लेकर विद्वानों में आपसी बहुत से मतभेद हैं। 'कुछ विद्वान इसे रामायण के स्थानाकार वाल्मीकि की कृति मानते हैं और आधुनिक विद्वान इसे 13वीं व 14वीं शताब्दी में लिखा ग्रन्थ मानते हैं'⁶⁶ योग-वाशिष्ठ महारामायण की भूमिका में इसकी रचना काल सम्बन्धी उपलब्ध जानकारी इस प्रकार है-

'फर्कुहार साहब के अनुसार योग-वाशिष्ठ महारामायण उन संस्कृत काव्यों में से है, जो 13 वीं या 14वीं शताब्दियों में लिखे गए। फर्कुहार साहब ने अपने मत के समर्थन में कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है'⁶⁷ आधुनिक विद्वान् प्रो० शिवप्रसाद भट्टाचार्य ने मद्रास में हुई दूसरी ओरियन्टल कान्फ्रेंस में योग-वाशिष्ठ के लेखन काल के सम्बन्ध में पड़े अपने एक लेख में योग-वाशिष्ठ को 10-12 वीं शताब्दी में लिखा हुआ बताया है।

उनके ग्रन्थों पंचदशी और जीवन्मुक्ति विवेक में योग-वाशिष्ठ से बहुत से उद्धरण लिये गए हैं। उनका जीवन्मुक्ति-विवेक धन्य हो योग-वाशिष्ठ के आधार पर ही लिखा हुआ है। विद्यारण्य स्वामी ने अपने मत समर्थन में अधिकांश श्लोक योग-वाशिष्ठ से ही लिये हैं। विज्ञानभिक्षु का समय 16 वीं शताब्दी का है और विद्यारण्य स्वामी का समय 14 वीं शताब्दी का है। पण्डित अभिनन्द गौड़ ने 9 वी. शताब्दी के पूर्व भाग में योग-वाशिष्ठ का एक सार लोकहिताय मात्र 6000 श्लोकों में 'लघु योगवाशिष्ठ' नाम से

⁶⁶ आत्रेय बी.एल. योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान मथुरा- 281001, 2003, पृ.स. 11

⁶⁷ आत्रेय बी.एल. योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान मथुरा- 281001, 2003, पृ.स. 12

किया था। इसका उल्लेख विभिन्न विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में किया है। पी.सी.दीवानजी इसे 10 वीं सदी का ग्रन्थ मानते हैं

डॉ० विन्टरनीज" के अनुसार योग-वाशिष्ठ शंकराचार्य के किसी समकालीन लेखक की रचना है। वे लिखते हैं कि योग-वाशिष्ठ 9 वीं शताब्दी से पहले की रचना है डॉ.राघवन इसे 1100 ई.से 1300 ई.के मध्य का ग्रन्थ मानते हैं ऐसे ही लीलाधर शर्मा भी 13 वीं - 14 वीं सदी के बीच मानते हैं वे इसे 32000 श्लोकों से युक्त अद्वैत वेदान्त पर आधारित ग्रन्थ मानते हैं ⁶⁸

- 1 बी.एल. आत्रेय 500-650 ईसा पूर्व (After Kalidas but before Gaudapada and Bhartihari हिंदी में लिखें)
- 2 एस.एन. दासगुप्ता 700-800 ईसा पूर्व
- 3 पी.सी. दिवानजी 925-975 ईसा पूर्व
- 4 एस.पी. भट्टाचार्य 1000-1200 ईसा पूर्व
- 5 वी. राघवन 1100-1250 ईसा पूर्व
- 6 टी.जी. मेन्कर 1200 ईसा पूर्व
- 7 जे.एन. फर्कुहार 1300-1400 ईसा पूर्व⁶⁹

उपरोक्त सन्दर्भों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि प्रो. बी.एल. आत्रेय वाशिष्ठ रामायण को छठवीं सातवीं शताब्दी की रचना मानते व सिद्ध करते हैं। वे इसे कवि कालिदास के समय के बाद तथा भर्तृहरि व गौडपाद से पूर्व की रचना मानते हैं।

'जर्मन विद्वान डॉ. विन्टरनिट्ज इस ग्रन्थ को आदि शंकराचार्य के किसी अनुयायी द्वारा रचित रचना मानते हैं जो लगभग 7 वी - 8 वी शताब्दी के आसपास की है'⁷⁰

2.1.3 योग-वाशिष्ठ अध्याय परिचय

योग-वाशिष्ठ में बत्तीस हजार श्लोकों का वर्णन मिलता है। श्री जयदेव वेदालंकार के अनुसार योग-वाशिष्ठ में श्लोक संख्या 32,734 है ⁷¹ निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध

⁶⁸ शर्मा , एल भारतीय संस्कृति कोष , राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली 2012 पृ. 752

⁶⁹ शास्त्री, एस.पी., योगवाशिष्ठ :महारामायण,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , गोरखपुर, 2019, पृ स. XIII

⁷⁰ आत्रेय बी,एल.योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान मथुरा पृ.444

व उत्तरार्ध नामक दो भागों में विभाजित है। योग वाशिष्ठ में वर्णित श्लोकों की संख्या 32,000 है ⁷² इसमें व्यवस्थित तरीके से ग्रंथ की विशालता का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार है-

- ❖ वैराग्य प्रकरण में 33 सर्ग और 1500 श्लोकों है, इस प्रकरण में वैराग्य पर विवेचना है।
- ❖ मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरण में 20 सर्ग और 1000 श्लोकों है, इस प्रकरण में मुक्त होने की इच्छा एवं मन के दासत्व को बंधनकारक बताया है।
- ❖ उत्पत्ति प्रकरण में 100 सर्ग और 700 श्लोकों है, इस प्रकरण में सृष्टि सृजन की प्रक्रिया को समझाया गया है।
- ❖ स्थिति प्रकरण में 62 सर्ग और 3000 श्लोकों है, इस प्रकरण में जगत के स्थित होने की विवेचना की गई है।
- ❖ उपशम प्रकरण में 93 और 5000 श्लोकों है, इस अध्याय में सृष्टि के विलय का वर्णन है।

निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध में 118 सर्ग और 14500 श्लोकों है, इस अध्याय में मोक्ष संबंधीविवेचना की गई है और निर्माण प्रकरण उत्तरार्ध में 216 सर्ग और श्लोक है। इस प्रकार कुल मिलाकर 32,000 का यह एक विशाल आध्यात्मिक ग्रंथ है। संस्कृत भाषा में लिखित वासिष्ठ रामायण छः प्रकरणों में विभाजित है।⁷³

इस ग्रंथ में कई बार किसी गूढ़ विषय के अर्थ को प्रकट करने के लिए द्रष्टांतों की पुनरावृत्ति हुई है। यह एक दोष के रूप में देखा जा सकता है। इस ग्रंथ में पुनरक्ति दोष का दर्शन होता है। इस ग्रंथ में अध्यात्म के सभी पक्षों का समावेश मिलता है। साथ ही साथ गूढ़ रहस्य को बड़े ही वैज्ञानिक एवं सरल तरीके से दृष्टांतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, जन्म, मृत्यु, जीव, जगत, जगदीश, ब्रह्म, परब्रह्म, पुनर्जन्म आदि विषयों के तात्त्विक विवेचना के साथ ही साथ स्वर्ग, नरक, बंधन, मोक्ष, कर्म, कर्म का बंधन, मुक्त कर्म, तत्त्वदर्शी, दुख का कारण, दुख दूर

⁷¹ वेदालंकार, जे., भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास, भाग- 4, न्यू भारतीय बुक को., दिल्ली, 2005, पृ.स.568

⁷² शास्त्री, एस.पी. योगवाशिष्ठ : महारामायणम चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019 पृ.191

⁷³ एस. तेजोमयानंद, योगवाशिष्ठ सार संग्रह : तृतीय संस्करण सेन्ट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट मुंबई, 2016, पृ.स.6

करने का उपाय, योग की साधनाएं, चित, चित्त की शुद्धि, ज्ञान की सात भूमियां, कुंडलिनी शक्ति आदि आध्यात्मिक विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है। योग-वाशिष्ठ में ज्ञान मार्ग को ही मोक्ष का साधन बताया गया है।⁷⁴

वैराग्य प्रकरण – योग वाशिष्ठ रामायण के प्रथम अध्याय का नाम वैराग्य प्रकरण है यह प्रकरण में 33 सर्ग और 1500 श्लोको से सुशोभित है इस प्रकरण में मंगलाचरण के बाद संवाद रूप में सुतीक्ष्ण व अगस्त्य , कारुण्य व अग्निवेश, सुरुचि व देवदूत एवं अरिष्टनेमि व वाल्मीकि की विवेचना वर्णित है योग-वाशिष्ठ रूपी इस महान मुक्ति मार्ग प्रदायक शास्त्र के पठन व पाठन के अधिकारी कौन है ? इस ग्रन्थ के गहन अध्ययन की फल श्रुति का वर्णन तथा त्रिविध दुःखों से मुक्ति पाने की विवेचना द्वितीय सर्ग में की गई है वैराग्य प्रकरण के सर्ग 3 से 33 सर्ग तक निम्न विषयों का वर्णन है – यथा जीवन मुक्त की स्थिति तथा उसके विचार, संसार की नश्वरता व मिथ्यापन, राम की तीर्थयात्रा यज्ञ रक्षा हेतु विश्वामित्र द्वारा राम की माँग, राम का वैराग्य, धन व संपत्ति की असारता, अहंकार की निंदा, तृष्णा व चित्त की निंदा, शरीर व शरीर की अवस्थाओं की निंदा, बाल्यावस्था, युवावस्था व वृद्धावस्था आदि की निंदा, काल का प्रभाव व उसकी स्थिति, मनुष्य जीवन की परिवर्तनशीलता व अनित्यता, संसारीय वस्तुओं की क्षणभंगुरता, सज्जनता से युक्त पुरुषों की दुर्लभता, जगत के पदार्थ की अनित्यता व परिवर्तनशीलता राम की ज्ञान पिपासा एवं तत्त्वज्ञान हेतु विनती, राजदरबार में सिद्ध-मुनियों व महर्षियों का आगमन तथा राम के द्वारा की गई विवेचना की प्रशंसा करना, इस प्रकरण प्रसंगों के प्रकारों से बताया गया है यदि इस भाव के साथ कोई इसे धारण कर ले तो वह मानव ब्रह्माण्डों से मुक्त हो जाएगा तथा वह विषय मुक्त चैतन्य प्रकाश एवं समस्त आर्थिक व्याधि से मुक्त हो जाएगा तथा उसकी समस्त सांसारिक यात्राएँ शांत होइया एवं विकार मुक्त हो जाएगा तथा समस्त भोगेच्छा की स्वते तृप्ति होइशा, जन्म-मरण की यात्रा स्थिर होजायेगी ।⁷⁵

⁷⁴ संक्षिप्त योग वाशिष्ठ, गीताप्रेस गोरखपुर संवत् 2068 पृ.स.161

⁷⁵ मलावीय एस.योगवाशिष्ठ प्रथम भाग भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ 2001, पृ.79

मुमुक्षुत्व प्रकरण:

वासिष्ठ रामायण के द्वितीय प्रकरण को मुमुक्षुत्व प्रकरणे के नाम से जाना जाता है, उक्त प्रकरण में 20 सर्गों से युक्त विभिन्न कथाओं का वर्णन है। जो निम्न प्रकार से है- श्री शुकदेव के द्वारा स्वयं विचार करुले व पिता द्वारा उपदेश दिये जाने पर भी तत्त्वज्ञान में संतुष्टि का अभाव फिर विदेहराज जनक के उपदेशों द्वारा पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करना आदि। श्रीराम की ज्ञान पिपासा की शांत करने हेतु महर्षि विश्वामित्र द्वारा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से निवेदन का वर्णन, श्रीराम की जिज्ञासा समाधान के साथ-साथ जगत की विभिन्न अवस्थाओं के अध्यारोप एवं अपवाद, परमात्म रूप विषय की प्राप्ति, संदेह एवं विदेह के प्रति मुक्तों की समान दृष्टि तथा ज्ञान की स्थैर्यता हेतु शास्त्रों में वर्णित पौरुष की प्रशंसा युक्त विवेचना , पुरुषार्थ के परिणाम की निश्चित प्राप्ति तथा पुरुषार्थ व भाग्य की अभिन्नता की युक्तियों एवं प्रसंगों का वर्णन, पुरुषार्थ भी वास्तविक रूप से दैव ही का प्रतिफल है।

बहुत से उदाहरणों द्वारा पौरुष की प्रधान विशेष अवस्था का वर्णन, मन के चिद् आत्म स्वरूप का विवरेण, स्वयं वशिष्ठ जी एवं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के जन्म का उद्देश्य, ज्ञान को प्राप्त करने के मार्ग की विस्तार से विवेचना , श्रीराम के वैराग्य की स्तुति पूर्वक विवेचना तथा श्रोता वक्ता एवं जिज्ञासु प्रश्नकर्ता के गुण एवं लक्षण का वर्णन, अनर्थ संसार की प्राप्ति का परिणाम, ज्ञान की उत्तमता, श्री रामचंद्र में श्रेष्ठ प्रश्नकर्ता के गुणों का बाहुल्य, जीवनमुक्ति में सहायक वैराग्य एवं परम शांति (राम) का विशेष वर्णन, मुक्ति के चार द्वारपालों की विस्तार से विवेचना , प्रकरणों के अनुसार ग्रंथ परिचय, ग्रंथ के गुणों का वर्णन, महापुरुष के गुण, लक्षण व सदाचार की विवेचना , द्रष्टा व दृश्य के साक्षी ब्रह्म का वर्णन है।⁷⁶

उत्पत्ति प्रकरण-

योग-वाशिष्ठ के तीसरे प्रकरण को 'उत्पत्ति प्रकरण' के नाम से जाना पया है। यह प्रकरण 122 सर्गों से सुसज्जित है। इस प्रकरण के विषय निम्न प्रकार है। ज्ञान द्वारा ही आत्मा की मुक्ति, कर्म एवं समाधि के द्वारा नहीं, आत्मा की अज्ञातावस्था स्वयं

⁷⁶ शास्त्री एस.पी. योगवासिष्ठ महारामायणम् चौखम्बा सुरमारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019,

जगत की सृष्टि करता है, नाशवान व भौतिकता से युक्त इस देह को जो आत्मा समझता है, वह मृत्यु का भोजन बनता है। जिसे सत्त्वज्ञान है यह मृत्यु को जीत लेता है, सृष्टि सृजनकर्ता ब्रह्मा स्वर्ण मन का ही रूप है ब्रह्मों का सकल्प ही जगत की पिति का कारण है। इस कारण मन द्वारा स्थापित राज्य असत समान ही है, उपदेश पश्चात् सभा का विसर्जन, रात्रि को कार्य, प्रातः सभी का सभा में उपस्थित होना और चित्त के स्वाभाविक गुणों का वर्णन, जगत का मूल रूप मन है। मन का मूल रूप परमात्मा है, स्वयं परमात्मा जगत एवं मन का मूल तत्व है। ज्ञान द्वारा आत्मा की प्राप्ति होती है कर्म द्वारा नहीं.....। पुरुषार्थ एवं भाग्य, शक्ति एवं शक्तिमान में भेद नहीं है। जीव तथा मन की उत्पत्ति का वर्णन, चित्त संकल्प द्वारा ही जड़ता को प्राप्त होता है। जीव के स्वरूप का वर्णन: जगत व ब्रह्मा की सत्ता, प्राणियों के शरीर, जीवों की उत्पत्ति प्रक्रिया, कर्म का परिणाम, मन के स्वरूप एवं मन के नाश का उपाय, मन द्वारा ही जगत, विस्तार, मन के संकल्प मात्र से सृष्टि का विस्तार, जगत का चित्त रूप, मनोव्याधि की चिकित्सा, अविद्या का क्षीण होना, विवेकहीनता ही बंधन, ज्ञान की सप्त भूमिकाएं, शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति पदार्थ भावना व तुर्यगा, माया की स्वरूप स्थिति⁷⁷

स्थिति प्रकरण :

'वाशिष्ठ रामायण' में स्थिति प्रकरण चतुर्थ प्रकरण है। यह प्रकरण 62 सर्गों से सुसज्जित है, सर्ग एक से सर्ग बासठ तक विभिन्न कथाओं के बारे में निम्न प्रकार से बताया गया है- चित्तस्वरूपानुसार जगत की स्थिति का वर्णन, संसार की वास्तविक स्थिति का खंडन, जगत का मूल कारण मन ही है मन के पूर्ण शांत होने पर जगत का पूर्ण शून्यवत हो जाना। मूलस्वरूप को विस्तृत होना एवं भेदभ्रम से युक्त स्थिति की अनुभूति, चित्त की शुद्धि और जाग्रत आदि अवस्थाओं द्वारा आत्मस्वरूप बोध स्थिति की प्राप्ति, वैराग्ययुक्त विवेक द्वारा मोक्षलाभ, विभिन्न उपासनाओं द्वारा अन्यान्य फलों की प्राप्ति, विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन, जैसा मन का भाव वैसा ही फल, भाव त्याग द्वारा ब्रह्ममय भाव की प्राप्ति, स्वबोध के भावों की दृढ़ता द्वारा दोषों से मुक्ति अन्तःकरण की

⁷⁷ दशोरा, एन, योगवाशिष्ठ महारामायण पूणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 2019 10-12

शुद्धि और विशुद्धिकरण द्वारा स्वःसाक्षात्कार की स्थिति क्षेत्ररूपी सुगर के ज्ञानी नामक सम्राट की रागमुक्त अवस्था, एकादश इन्द्रियों के प्राबल्य एवं उन् पर नियंत्रण के साम, ज्ञानी एवं अज्ञानी को उपदेश देना व्यर्थ, ब्रह्म तत्त्व एवं जगत तत्त्व के स्वरूपों का वर्णन, अहंकार ही बंधन कारण अहंकार त्याग ही मुक्ति मन कुनै नियंत्रण करने के उपाय, भोग इच्छा के प्रति अनासक्ति, 'सत्संग', विवेक स्थिति स्वबोध का विवरण, सर्वत्र चेतन आत्मा ही है. ज्ञानी क्या? और अज्ञानी क्या?, कर्तव्य के भाव के पीछे वासना ही प्रमुख कारण, तत्त्वबोध से युक्त ज्ञानी में अकर्ता का भाव तथा बंधन मुक्ति का भाव वर्णन, परब्रह्म से ही सृष्टि का सृजन, पालका भाव तथा बंधन मुक्ति का भार वर्णन, परेशा से ही सृष्टि के सृजन पालन और लय से युक्त भाव के साथ ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन, मूढ़ता से युक्त व्यक्ति को उपदेश नहीं वर, विवेकदान तथा जिज्ञासु को ब्रह्मज्ञान का उपदेश, मोया से युक्त संसार के मिथ्याभाव का वर्णन, दृश्यमान जगत की असत्ता एवं सर्वत्र ब्रह्मरूपता का वर्णन, माया द्वारा उत्पन्न दोषों का आत्म स्वरूप के ज्ञान द्वारा निवारण, अज्ञान के कारण जीव के कर्मों के अनुसार विभिन्न योगियों को प्राप्त होता है. इस प्रकरण में बताया गया।

उपशम प्रकरण :

वासिष्ठ रामायण में पाँचवें प्रकरण को 'उपशम प्रकरण के नाम से जाना गया है। यह प्रकरण 93 सर्गों से सुसज्जित है सर्ग 1 से 93 सर्ग तक जो भी प्रसंग है व इस प्रकार है-गुरु वशिष्ठ जी द्वारा प्रवचन, राजा दिसंबर द्वारा योग-वाशिष्ठ के प्रवचन की प्रशंसा करना तथा श्रीराम द्वारा प्रवचन हेतु पुनः आग्रह, माया मिथ्या है, साधक की साधना के क्रम, दुःख का कारण अज्ञान ज्ञान द्वारा शाश्वत सुख की प्राप्ति, आत्मा निर्लिप्त और जगत आसक्ति युक्त है। निष्काम भाव से युक्त रहकर कर्मों में रत रहने का विचार आसक्त भाव से युक्त कर्म दुर्गति प्रदान करते हैं, आत्मज्ञानी की श्रेष्ठ स्थिति, जनक के माध्यम से सिद्ध गीता को सुनना, सजा जनक को प्रभावित करने वाले सिद्धों के उपदेश, जगत की नश्वरता, जीवनमुक्त का स्तर एवं बुद्धि की श्रेष्ठतम अवस्था प्रज्ञा का विशेष महात्म्य, विवेक विज्ञानयुक्त आत्मा का जनक द्वारा वर्णन, विशेष युक्तियों द्वारा चित्त की शांति के उपाय, अपात्र को प्रदान किये गये पदेश व्यर्थ

ही है, मन को नियंत्रण व शांत करने की विधि, मन का उपशम तत्त्वबोध द्वारा, वासना का क्षय, तृष्णा से उत्पन्न दोष, महापुरुषों द्वारा जगत में अनासक्त भाव से विचरण और उनका स्वभाव, पुण्य एवं पावन को निर्वाण स्थिति की प्राप्ति, कथा राजा बलि की. शुक्राचार्य द्वारा राजा बलि को सारभूत रूप से उपदेश, श्रीराम चिन्मय स्वरूप है; ऐसी विशेष विवेचना का वर्णन, उपाख्यान-प्रहलाद, जीवन्मुक्ति की उन्नति हेतु प्रहलाद कथा द्वारा पुरुषार्थ के सामर्थ्य की विवेचना, मायाचक्र का वर्णन प्रशंसा-चित्तनिरोध की, महिमा भगवत्प्राप्ति की, ऋषि का परहित में चिंतन-तपस्या व साधना का कथन, समाधि, सत्ता, सामान्य एवं समाहिता के गुण धर्म, आत्मा के विषय में ध्यान और परमपद का प्राप्त होना, संसार के दुखों से आत्मोद्धार के उपाय, विलास और भास दो तपस्वियों की कथा, मोक्ष प्राप्ति हेतु तत्त्वज्ञान, शरीर और आत्मा दोनों का संबंध आवश्यक है। आस्तिकता बंधन के कारण पर विवेचना , अस्सक्ति और संस्कृति के लक्षण, आस्तिकता भेद और उसके लक्षण और अनुयायियों का वर्णन, वास्तु में ज्ञानी, शरीर के आत्मा में भिन्नता, आत्मा के शुद्ध स्वरूप का विवेचना , अविद्या-वासना और मन व्यवहार के नाश से ही मुक्ति, जीवनमुक्त महात्माओं के गुण एवं महिमा का वर्णन, चित्त में उत्प्रेतन स्पंदन से संसार की भ्रांति, प्राण स्पंदन और चित्त का स्वरूप और उसका निरोध अन्यान्य, चित्त के उपशम ज्ञानयोग के रूप में उपाय, विवेक के महत्ता में चित्त के नष्ट होने का उपाय, ब्रह्मविषयक विचार द्वारा भगवान की प्राप्ति, आत्मा मुनि द्वारा एकाग्रता को सिद्ध करने से मन और इंद्रियों को बोधित महसूस करना, मन और इंद्रियों का वर्णन, विदेह और जीवन मुक्ति मुनियों के चित्त के नाश का वर्णन देह का कारण, मन, प्राण, स्पंदन, वासना, तत्त्व ज्ञान से वासना क्षीणता, मन के नाथ द्वारा परम पद की प्राप्ति होना, मन को संयमित करने का उपाय वैराग्य द्वारा प्राप्त तत्त्व ज्ञान और जीवन मुक्ति मुनियों की स्थिति को इस प्रकरण में समझाया गया है

'योग-वाशिष्ठ ' का दूसरा भाग

वासिष्ठ महारामायण के द्वितीय खण्ड में निर्वाण प्रकरण का विषय वर्णित है। यह प्रकरण छटवें नंबर पर आते है जो कि 2 भागों में विभाजित है- पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध, जिस प्रकार दीपक में तेल के खत्म होने पर वह जलना बंद हो जाता है इसी

तरह मन को सत्ता प्राप्त न होने से उसका दौडना व भटकना बंद हो जाता है। अतः मन निर्वाणावस्था को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार की विवेचना छटवें प्रकरण में वर्णित निर्वाण प्रकरण के दो भागों में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध है पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध की अपेक्षा में छोटा है पूर्वार्द्ध प्रकरण में भी वे ही सिद्धांत वर्णित है जो कि यहाँ नवीन व्याख्यान- प्रपाख्यानों के द्वारा विभिन्न दृष्टांतों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

गुरु वशिष्ठ के उपदेशानुसार अध्यात्म युक्त शास्त्रों में जो विचार है वे तृष्णा नामक विष को शांत करने के लिए औषधि के समान है दिखाई देने वाला यह जगत जो कि अज्ञानी मनुष्यों को वज्र सा जान पड़ता है, उसी प्रकार ज्ञानियों के गुरु वशिष्ठ के उपदेशानुसार आयो युक्त शास्त्रों में जो विचार है वे तृष्णा नामक विष को शांत करने के लिए औषधि के समान है दिखाई देने वाला यह जगत जो कि अज्ञानी मनुष्यों को वज्र सा जान पड़ता है, उसी प्रकार ज्ञानियों के लिए यह मिथ्या है, जैसे- स्वप्नावस्था का अनुभव जाग्रतत्वत्था में, जब तक मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता तब तक यह जगत उन्हें वास्तविक ही जान पड़ेगा। आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर यही जगत स्वप्नवत सा मालूम पड़ता है, और ज्ञानी को शुद्धचित्त से युक्त ब्रह्म ही वास्तविक मालूम होता है। फिर यह जगत भी ब्रह्म की आरोपित दृष्टि से संयुक्त जान पड़ता है, और यह जगत तब अपवाद नहीं लगता ऐसे में ब्रह्म ही बचती है।

आत्मज्ञान को प्राप्त करने के मात्र दो उपाय हैं- प्रथम- योग एवंद्वितीय- ज्ञान। वास्तविक रूप से योग व ज्ञान दोनों योग में समाहित हो जाते हैं। इस विषय को भुशुण्डू नामक उपाख्यान में विस्तृत रूप से बताया गया है। दूसरा माध्यम ज्ञान है, जो की अभ्यास व वैराग्य के माध्यम से जीव के में भाव और शरीर के आलाभांव को आपस में लय कर आत्मज्ञान की यथार्थता का बोध कराता है। इस प्रकरण में श्रीकृष्ण अर्जुनोपाख्यान में ऋषि महर्षियों के बीच सुप्रसिद्ध संवाद का वर्णन है। इस विवेचना में आत्मा के स्वरूप को शुद्धतम ढंग से बताया है। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा इस उपाख्यान में आसक्ति के त्याग, शास्त्रों द्वारा निर्देशित कर्तव्य कर्म, भाग्यवश प्राप्त फलों को त्याग न करने, वासना के त्याग से लिंग भाव वाली देह का नष्ट होना, बंधन का कारण वासना तथा अर्जुन में मोह व वासना क्षीण होना आदि का उपदेश दिया गया है।

भगवान से इस दिव्य ज्ञान को सुनकर अर्जुन को तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। जिससे अर्जुन में वासना, अविद्या व मोह नष्ट हो जाता है।"

इसी प्रकरण के भगीरथोपाख्यान में बताया गया है कि इस जगत में कैसे निरपेक्ष, निर्मम व आसक्ति के माके से मुक्त जीवन जीना चाहिए तथा अपने सामर्थ्यानुसार जगत के सभी कर्तव्य भी पूर्ण करने चाहिए।

प्रकरण की इसी शृंखला में शिखिध्वज तथा रानी चुड़ाला का भी प्रसिद्ध उपाख्यान वर्णित है राजा शिखिध्वज को रानी चुड़ाला ने विद्वत्तापूर्ण उपदेश प्रदान कर अपनी श्रेष्ठ व उत्तम बुद्धि का परिचय दिया। राजा में वैराग्य की उत्कंठा के कारण वे राजकाज को त्यागकर वन चले गये और वहाँ जाकर जप-तप तथा देवताओं की पूजा-अर्चना में लग गये लेकिन वहीं मन की शांति प्राप्त नहीं हुई उधर राज्य में कुछ समय तक रानी चुड़ाला के द्वारा राजकार्य का संचालन किया गया और उसके बाद रानी ने ऋषि पुत्र के वेश में राजा शिखिध्वज के पास जाकर उन्हें उपदेश सुनाया।

अद्वैतात्मरूपी मोक्ष प्राप्ति की कामना जिस व्यक्ति को होती है. वह इस ग्रंथ के श्रवण, मनन और निदिध्यासन का अधिकारी है। निर्माण और जीवनमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करना इस ग्रंथ का प्रयोजन है। संपूर्ण जगत के कल्याण का साधन बन जाना जीवनमुक्ति अवस्था का प्रयोजन है।⁷⁸

2.1.4 योग-वाशिष्ठ के संबंध में मनीषियों का दृष्टिकोण

डॉ. बी. लाल आत्रेय की मान्यता के अनुसार 'भगवान के भक्तों के लिए श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस तथा कर्मयोगियों के लिए श्रीमद्भगवद्गीता का जो महत्त्व है वैसा ही महत्त्व योग-वाशिष्ठ का ज्ञानियों के लिए है। इस ग्रंथ के अध्ययन से राजा से लेकर रंक तक अपने जीवन में आनंद और शांति का अनुभव करते हैं। सभी तरह के पाठकों के आनंद के लिए इस ग्रंथ में अध्ययन सामग्री प्रस्तुत है। भारतीय मनीषा की सर्वोत्तम कृतियों में से महत्त्वपूर्ण यह ग्रंथ है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मभाव

⁷⁸ महाप्रभुलाल गोस्वामी , महाकवि श्रीमद्वाल्मीकिप्रणीत :योग वाशिष्ठ , तारा बुक एजेंसी कामच्छा, वाराणसी पृ.स. 2

में स्थित रहकर संसार में व्यवहार करने के लिए इस ग्रंथ का श्रवण, मनन, निदिध्यासन सर्वोत्तम साधन है।⁷⁹

स्वामी रामतीर्थ जी के अनुसार "योग-वाशिष्ठ भारत की सर्वोत्तम पुस्तकों में से अद्भुत पुस्तक है। इस पुस्तक का अध्ययन करने वाले व्यक्ति में ब्रह्मभावना न हो और वह सब के साथ एकात्मता का अनुभव न करें ऐसा असंभव है।"

श्री भगवानदास के अनुसार "संस्कृत ग्रंथ योग-वाशिष्ठ में बत्तीस हजार श्लोक हैं। भारतीय वेदांत के ग्रंथों में यह ग्रंथ अपने दार्शनिक सिद्धांतों, साहित्यिक सौंदर्य और आत्मानुभव प्राप्त करने के साधनों में आदरणीय है। वेदांत प्रेमियों में यह प्रचलित उक्ति है कि यह ग्रंथ सिद्धावस्था में अध्ययन करने योग्य हैं और साधना की अवस्था में ब्रह्मसूत्र, उपनिषद और भगवद्गीता का अध्ययन करने की आवश्यकता है।"

सूर्यनारायण महर ने लघुवाशिष्ठसार (ऊर्दू) की भूमिका में लिखा है कि "योग-वाशिष्ठ पढ़ने वाला व्यक्ति ज्ञानी जरूर हो जाता है

लाला बैजनाथ जी के अनुसार "अब रात में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं लिखा गया जिसमें अद्वैत सिद्धांतों को इतने विस्तार से विभिन्न दृष्टांतों, आख्यानों और युक्तियों से लाला बैजनाथ जी के अनुसार "अब तक वेदांत में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं लिखा गया जिसमें अद्वैत सिद्धांतों को इतने विस्तार से विभिन्न दृष्टांतों, आख्यानों और युक्तियों से प्रतिपादित किया गया हो। इस ग्रंथ के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से संसार के विषयों में कितना भी आसक्त मनुष्य क्यों न हो, वह वैराग्य संपन्न होकर आत्मपथ पर अग्रसर हो शांति को प्राप्त करता है।"⁸⁰

"योग-वाशिष्ठ ग्रंथ के मतानुसार महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं और भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार ब्रह्मजी इस सृष्टि के सृजनहार हैं। उन्हें ज्ञान का आदिगुरु भी माना जाता है। यह ज्ञान वशिष्ठ जी को अपने पिता ब्रह्माजी से प्राप्त हुआ है। इस सृष्टि की रचना ब्रह्मजी ने की है। संपूर्ण सृष्टि का निर्माण ब्रह्माजी की दो

⁷⁹ आत्रेय बी,एल.योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान मथुरा 1957 पृ. स.40- 44

⁸⁰ महाप्रभुलाल गोस्वामी , महाकवि श्रीमद्वाल्मीकिप्रणीत :योग वाशिष्ठ , तारा बुक एजेंसी कामच्छा, वाराणसी पृ.स 21-23

शक्तियों- ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति से हुई है। इस कारण से ब्रह्माजी को ज्ञान का आदि कारण तथा सृष्टि का सृजनकर्ता माना गया है”।

ज्ञान की यह परंपरा शाश्वत एवं सनातनकाल से गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार चलती आ रही है, जिस ज्ञान को वशिष्ठ जी ने अपने पिता ब्रह्माजी से प्राप्त किया था, उसी ज्ञान को महर्षि वशिष्ठ जी ने श्री राम जी को दिया था । इस ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात श्रीरामजी ने धराधाम पर जीवन मुक्त होकर अपने कर्तव्य कर्म का निर्वाह किया तथा जगत की माया मोह से मुक्त होकर समाज कल्याण की भावना से लोगों को सनमार्ग पर चलने एवं सत्कर्म करने के लिए प्रेरित किया। महर्षि वाल्मीकि जी ने महर्षि वशिष्ठ जी और रामजी के संवाद के रूप में प्रचलित इस ज्ञान को संग्रहित किया है। महर्षि वाल्मीकिजी ने कहा है कि 'ब्रह्मा जी के आदेशानुसार मैंने इस ज्ञान की रचना महर्षि भरद्वाज को ज्ञान देने के लिए किया था।⁸¹

इस प्रकार इस ग्रंथ के रचनाकार महर्षि वाल्मीकि जी को माना जाता है परंतु कुछ विद्वानों, इतिहासकारों का मानना है कि ग्रंथ की रचना वाल्मीकि जी के बाद हुई है। इस ग्रंथ में महाभारत युद्ध एवं भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा के अर्जुन को दिया गया गीता के उपदेश का भी वर्णन मिलता है।

किसी व्यक्ति द्वारा 32,000 श्लोकों से युक्त यह ग्रंथ किसी विशेष समय में रचा गया हो ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता है। महर्षि वशिष्ठ और श्रीराम जी के बीच का संवाद इतना विशाल नहीं रहा होगा। यह संवाद गुरु-शिष्य परंपरा के रूप में मौखिक रूप से चलता रहा होगा। कालांतर में कुछ आचार्यों ने संकलित कर इसे विस्तार देने का कार्य किया होगा। इसे प्रामाणिक एवं प्रभावी बनाने के लिए बाद में बहुत सारे प्रसंग भी जोड़े गए होंगे। इस कारण से ही ग्रंथ में 'पुनरुक्ति दोष' का दर्शन होता है। श्रीरामजी के विषाद को दूर करने के लिए महर्षि वशिष्ठ जी के द्वारा आत्मबोध कराने के लिए दिया गया उपदेश निश्चित ही संक्षिप्त रहा होगा। अरिष्टनेमि का उपदेश, शुकदेव का उपदेश, बौद्धदर्शन का उपदेश, गीता का उपदेश श्रीराम जी को दिया

⁸¹ दशोरा, नंदलाल, योगवाशिष्ठ महारामायण, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 2010 पृ.स.33

जाना सुसंगत प्रतीत नहीं होता है। इसे पूर्णरूपेण आध्यात्मिक ग्रंथ बनाने के दृष्टिकोण से बाद में शायद इन्हें अलग से जोड़ा गया होगा ऐसा प्रतीत होता है।

यह ग्रंथ कब लिखा गया यह महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि ज्ञान के जिज्ञासुओं का संबंध ज्ञान से होता है। इस ग्रंथ में भारतीय दर्शन का सारतत्व समाहित है। उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, गीता और पुराणों में जिन आध्यात्मिक मान्यताओं का वर्णन है, उसमें भारतीय दर्शन का सार्थक तत्व मौजूद है। अध्यात्म की जिज्ञासा और साधना करने वाले साधकों को जो ज्ञान चाहिए, वह इस ग्रंथ में उपलब्ध है। इस ग्रंथ के निर्देशानुसार अपने गुणों और रुचि के मार्ग का अनुसरण कर कोई भी साधक, अपना आत्मकल्याण सरलता से कर सकता है। ज्ञान के पिपासुओं के लिए योग-वाशिष्ठ एक सच्चा पथ प्रदर्शक है। सत्य-सनातन ज्ञान देशकाल की सीमाओं से परे होता है। सत्य ज्ञान अनादि और अनंत होने के कारण काल, भेद की सीमा से परे होता है। योग-वाशिष्ठ ग्रंथ के रचनाकार महर्षि वाल्मीकि को ही मानना उचित प्रतीत होगा।

2.2 योग-वाशिष्ठ में शिक्षा की अवधारणा

अद्वैतात्मरूपी मोक्ष प्राप्ति की कामना जिस व्यक्ति को होती है, वह इस ग्रंथ के श्रवण, मनन और निदिध्यासन का अधिकारी है। निर्माण और जीवनमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करना इस ग्रंथ का प्रयोजन है। संपूर्ण जगत के कल्याण का साधन बन जाना जीवनमुक्ति अवस्था का प्रयोजन है।⁸²

भारतीय ज्ञान परंपरा में कर्म से रहित ज्ञान को भार स्वरूप माना गया है। ज्ञान का फल निष्काम भाव से अपने कर्तव्य कर्म का पालन करना है।

योग-वाशिष्ठ महारामायण के 'वैराग्य प्रकरण में सुतीक्ष्ण नामक ब्राह्मण के मन में संशय उत्पन्न हुआ कि, मोक्ष प्राप्ति का साधन ज्ञान है या कर्म या इन दोनों का समुच्चय ? इसका उत्तर देते हुए महर्षि अगस्त्य ने कहा कि है ब्राह्मण, ज्ञान और

⁸²महाप्रभुलाल गोस्वामी , महाकवि श्रीमद्वाल्मीकिप्रणीत :योग वाशिष्ठ , तारा बुक एजेंसी कामच्छा, वाराणसी पृ.स. 2

निष्काम कर्म से परमपद मोक्ष की प्राप्ति तसी प्रकार होती है जिस प्रकार पक्षीगण अपने दोनों पंखों से आकाश में उड़ान भरते हैं'⁸³।

चित्त की समस्त वासनाओं का परित्याग होने के पश्चात व्यक्ति को परम शांति का अनुभव प्राप्त होता है। ज्ञान के द्वारा जब चित्त की वासना का नाश हो जाता है तब वासनायुक्त चित्त भी कर्तृत्य और भोक्तृत्य स्वरूप में अभिव्यक्त हो जाता है का अभाव हो जाता है।

2.3 योग वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान का महत्त्व

आत्म ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का साधन है आत्म ज्ञान वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप का बोध होता है कि संसार-समुद्र से पार होने का उपाय न वन में वास करना है, न किसी विशेष देश में वास करना, न शरीर को कष्ट देने वाले तप और क्रियायें, न क्रियाओं का त्याग करना, न किन्हीं क्रियाओं का अनुष्ठान करना, न किसी विशेष और विचित्र प्रकार के आचार व्यवहार; न तीर्थाटन, न दान, न कोई विशेष प्रकार की विधा, न कोई विशेष ध्यान, न योग, न तप, न यज्ञ, न दैव (तक्रदीर), न विशेष प्रकार के कर्म, न धन, न बन्धुजन, न व्रत आदि, न शास्त्र, न गुरु का वाक्य, न ईश्वर की पूजा । तप और तीर्थ आदि से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, मोक्ष की नहीं। इसलिये मैं कहता हूँ कि बन्धन में पड़े हुए मन के लिये संसार से पार होने का ज्ञान के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ⁸⁴। ज्ञान की बन्धन और अविद्या से मुक्ति का कारण है ,ज्ञान के द्वारा ही विद्या और अविद्या में अन्तर समझ आता है

ज्ञान की सात भूमियाँ

आत्मज्ञान और आत्मबोध से मन में यह साफ जाहिर हो जाता है की ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है । केवल वाचिक ज्ञान से कुछ लाभ नहीं होता हिया ज्ञान का अभ्यास क्रमशः करने से लाभ होता है । 'ज्ञानी और विद्वान् लोग ही केवल इस बात का निर्णय कर सकते हैं ,कि ज्ञान मार्ग का क्रम क्या है किन-किन सीढ़ियों पर चढ़कर ज्ञान की सिद्धि का इच्छुक अपने ध्यये पर पहुंच

⁸³संक्षिप्त योग वासिष्ठ, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2068 पृ.स.3

⁸⁴ आत्रेय बी,एल.योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान मथुरा पृ.स .551

जाता है। ज्ञान के मार्ग पर जो जो क्रमिक अवस्थाएं आती हैं। उनका नाम योग वाशिष्ठ में भूमिया अथवा भूमिकायें हैं। जैनियों में उनका नाम गुणस्थान है, पतंजलि योग सूत्र में उनका योग के अंग कहा गया है, जैमिनियों के मतानुसार 14 गुणस्थान हैं, बौद्ध के अनुसार 10 भूमि हैं, पतंजलि योग सूत्र के अनुसार अष्टांग योग है। योग वाशिष्ठ के अनुसार ज्ञान के साथ भूमिया मानी जाती हैं।⁸⁵

आत्मज्ञान और आत्मबोध के लिए महर्षि वाशिष्ठ जी ने योग-वाशिष्ठ में ज्ञान की सात भूमिकाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। जो निम्न प्रकार हैं-

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता

विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा ॥ (यो.वासिष्ठ 6।118/5)

सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यातोऽसंसक्तिनामिका ।

पदार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ (यो.वासिष्ठ 6।118।6)

शुभेच्छा विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावना और तुर्यगा। इन सात भूमिकाओं का क्रमशः पालन करके व्यक्ति संसार के विभिन्न दुखों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में सांसारिक दुखों से मुक्ति आत्मज्ञान से ही संभव है और आत्मज्ञान अर्थात् मैं शरीर नहीं आत्मा हूं, शिष्य स्वरूप हूं। शिवोऽहम का बोध होना आत्मज्ञान है। आत्मज्ञानी मनुष्य को संसार में किसी भी चीज का कोई भी प्रभावित नहीं कर पाता क्योंकि संसार की नश्वरता का ज्ञान उसे होता जाता है।

इमां सप्तपदां ज्ञानभूमिमाकर्णयानघ ।

नानया ज्ञातया भूयो मोहपङ्के निमज्जसि ॥ (यो.वासिष्ठ 3।118/1)

वदन्ति बहुभेदेन वादिनो योगभूमिकाः ।

मम त्वभिमता नूनमिमा एव शुभप्रदाः ॥ (यो.वासिष्ठ 3।118/2)

हे राघव ! ज्ञान की सात भूमिकाओं को अलग अलग जानकर तुम मोह के कीचड़ में नहीं फँसोगे। बहुत से लोग योग भूमिकाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं; मेरी राय में तो वे शुभ गति को देने वाली इस प्रकार हैं।

⁸⁵ आत्रेय बी, एल. योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान मथुरा पृ.स.639 -640

- 1 **शुभेच्छा-** यह ज्ञान की प्रथम भूमिका के रूप में जानी जाती है। इस संसार की नश्वरता का ज्ञान जब होता है तब व्यक्ति को जगत से वैराग्य हो जाता है। वैराग्य से पूर्ण व्यक्ति इस संसार में रहने वाले अज्ञानी लोगों की भांति मूर्छित होकर जीवन नहीं जी सकता है। महर्षि वशिष्ठ श्रीराम से कहते हैं कि 'हे राम! मैं इस जगत में मूढ़ की भांति स्थिर होकर क्यों रहूँ? शास्त्रों एवं सत्त पुरुषों द्वारा बताए गए तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार करूँगा और वैराग्यपूर्ण जीवन जिऊँगा'। ज्ञानी लोग इसे ही शुभेच्छा कहते हैं।⁸⁶ "शुभेच्छा की साधना से व्यक्ति का सामाजिक विकास होता है। सामाजिक विकास की अधिगम प्रक्रिया में जब आत्म ज्ञान होता है तब 'अहम् ब्रह्मास्मि'⁸⁷ अर्थात् मैं ब्रह्म है, 'प्रज्ञानं ब्रह्म'⁸⁸ अर्थात् वह प्रज्ञान ही ब्रह्म है, 'अयमात्मा ब्रह्म'⁸⁹ अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है और 'तत्त्वमसि'⁹⁰ अर्थात् वह ब्रह्म तू है, का बोध होता है ।
- 2 **विचारणा-** शास्त्रों के श्रवण, मनन, चिंतन और सत्तपुरुषों के संग से सत्संग होता है। परिणामस्वरूप विवेक वैराग्य का उदय होता है। महर्षि वशिष्ठ श्रीराम से ज्ञान की दूसरी भूमिका विचारणा के संबंध में कहते हैं कि साधक जब सदशास्त्रों का श्रवण, मनन, अध्ययन तथा सत्तपुरुषों का संग है 'तब विवेक वैराग्य उत्पन्न होता है। विवेक-वैराग्य से अभ्यासपूर्वक सदाचार में संलग्न रहने को ही विचारणा कहते हैं'।⁹¹
- 3 **तनुमानसा-** 'शुभेच्छा और विचारणा के अभ्यास से साधक जब अपनी इंद्रियों को पूरी तरह से नियंत्रित कर लेता है तब ज्ञान की तीसरी भूमिका तनुमानसा का उदय होता है। शुभेच्छा और विचारणा के अभ्यास से इंद्रियों का संसार के विषय भोगों में आसक्ति का मिट जाना और अनासक्त भाव से जगत में विचरण करने को

⁸⁶ संक्षिप्त योग वाशिष्ठ, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2068, सर्ग - 118 पृ.स. 167।

⁸⁷ शर्मा प.श्रीराम , शर्मा भगवती देवी. उपनिषद् (सरल हिंदी भावार्थ सहित) ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा-281003, 2015 , 1/4/10 बृहदारण्यक उपनिषद् पृ.स.254 ।

⁸⁸ शर्मा प.श्रीराम , शर्मा भगवती देवी. उपनिषद् (सरल हिंदी भावार्थ सहित) ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा-281003, 2015 , 3/1/3 ऐतरेय उपनिषद् पृ.स. 49 ।

⁸⁹ शर्मा प.श्रीराम , शर्मा भगवती देवी. उपनिषद् (सरल हिंदी भावार्थ सहित) ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा-281003, 2015 ,1/2 मांडूक्य उपनिषद् पृ.स. 361

⁹⁰ शर्मा प.श्रीराम , शर्मा भगवती देवी. उपनिषद् (सरल हिंदी भावार्थ सहित) ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा-281003, 2015 ,6/8/7 छन्दोग्य उपनिषद् पृ.स.164

⁹¹ संक्षिप्त योग वाशिष्ठ, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2068, उत्पत्ति प्रकरण , सर्ग -118 पृ.स. 167 .

ही तनुमानसा कहते हैं। तनुमानसा में मन बाहरी विषयों से अनासक्त होकर शुद्ध एवं अंतर्मुखी हो जाता है। इसलिए इसे तनुमानसा कहते हैं।⁹²

- 4 **सत्त्वापत्ति-** ज्ञान की चौधी भूमिका सत्त्वापत्ति में शुभेच्छा श्रवण विचारणा-मनन और तनुमानसा-निदिध्यासन के अभ्यास से 'चित्त सांसारिक विषयों से पूर्णतः विरक्त हो जाता है। परिणामस्वरूप आत्मा के शुद्ध सतत्त्वरूप का साक्षात्कार होता है। इसी को सत्त्वापत्ति कहते हैं'।⁹³ श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं हे अर्जुन! जो आत्मा में ही सुखी है, आत्मा में ही रमण करता है, और आत्मा में ही ज्ञानवान है, ऐस ज्ञानयोगी परब्रह्म के साथ एकात्मभाव को प्राप्त हुआ शांत, शाश्वत, अप्रमेय ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।
- 5 **असंसक्ति-** योग-वाशिष्ठ ग्रंथ में महर्षि वशिष्ठ जी श्रीराम से कहते हैं 'कि शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, और सत्त्वापत्ति इन चारों भूमिकाओं के अभ्यास हो जाने के कारण संसार के विषय में आ सकती होने पर सत्ता के प्रकाश में मन स्थिर हो जाए तब उसे असंसक्ति कहते हैं'।⁹⁴ श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ऐसे साधकों के लिए कहते हैं कि इस संसार के नाम-रूपात्मक ज्ञान को आत्मज्ञान की ज्ञानाग्नि में भस्म कर देने वाला साधक, जब ऐसी अवस्था को प्राप्त करता है तब उसके द्वारा शास्त्र सम्मत कर्म बिना किसी संकल्प और कामना के सहज माय से होने लगता है, क्योंकि ज्ञान की अग्नि में उसके समस्त कर्म भरम हो जाते हैं।
- 6 **पदार्थाभावनी-** शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति और असंसक्ति ज्ञान की इन पांच भूमिकाओं के सिद्ध हो जाने पर, ऐसे ज्ञानी साधक के अंतःकरण में जगत के पदार्थों का अभाव हो जाता है। उसे बाहर भीतर के किसी पदार्थ का आभास स्वयं नहीं होता है। दूसरों के द्वारा प्रेरित करने पर ही ऐसी ज्ञानी पुरुष को संसार के किसी पदार्थ का ज्ञान होता है। ज्ञान की इस छोटी-छोटी भूमिका में अंतःकरण से

⁹² तेजोमयानंद स्वामी, योग वाशिष्ठसारसंग्रहः, सेन्ट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट मुंबई - 400072 महाराष्ट्र, 2016 पृ.सं. 99 -100

⁹³ संक्षिप्त योग वाशिष्ठ, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2068, पृ.सं. 167

⁹⁴ आत्रेय बी.एल. योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान मथुरा पृ.सं. 642

संसार के पदार्थों का अभाव हो जाता है। इसीलिए इसे पदार्थाभावनी कहते हैं। 'ज्ञान की इस भूमिका में साधक की आत्मा निश्चल और निर्मल हो जाती है। परिणामस्वरूप अंतःकरण में संसार के पदार्थों का सर्वथा अभाव हो जाता है। ज्ञान की पदार्थाभावनी दशा साधना के क्षेत्र में उत्कृष्ट अवस्था है'⁹⁵

7. **तुर्यगा-** ज्ञान की छः भूमिकाओं में यह सबसे उत्कृष्ट सातवीं भूमिका है। इस अवस्था में साधक को अपने आत्मभाव की स्वाभाविक स्थिति प्राप्त रहती है। जीवनमुक्त साधकों को इस अवस्था की प्राप्ति होती है। 'संसार के पदार्थों का अंतःकरण से अभाव हो जाने के पश्चात साधक आत्मभाव में स्थित रहता है। साधक के आत्मभाव में स्वाभाविक रूप से स्थिर रहने को ही ज्ञान की सातवीं भूमिका तुर्यगा कहा गया है'⁹⁶

आत्म -ज्ञान प्राप्ति के उपाय -

❖ शम, विचार, संतोष और सत्संग मोक्ष के द्वारपाल

1. **शम** - महर्षि वसिष्ठ जी श्रीराम को भवसागर से तारने वाले तथा मोक्ष के द्वार पर स्थित रहने वाले द्वारपालों के रूप में शम, विचार, संतोष और सत्संग की महिमा का विस्तार से योगवासिष्ठ में वर्णन करते हुए कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में शम की साधना से परम कल्याण की प्राप्ति होती है। यह संसार भ्रम का निवारण करने वाला मंगलमय और परम शांति प्रदान करने वाला है। जिस पुरुष को शम की प्राप्ति हो जाती है उसका चित्त निर्मल और शांत हो जाता है। परिणामस्वरूप ऐसे पुरुष का शत्रु भी मित्र बन जाता है। जैसे सूर्य के किरणों से अंधकार का विनाश होता है उसी प्रकार इस जगत में जितनी मानसिक व्यथाएं, तृष्णाएं और पीड़ाएं हैं, उन सबका विनाश शांत चित्त वाले पुरुषों के समक्ष हो जाता है। शांत वही पुरुष कहा जाता है जो प्रयत्नपूर्वक अपनी इंद्रियों को जीत कर, जगत के समस्त प्राणियों के प्रति समान व्यवहार करता है। वह न तो सुख की इच्छा करता है और न ही

⁹⁵ दशोरा नन्दलाल, योग वाशिष्ठ महारामायण, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार उत्तराखंड, 2010, पृ.स. 199 - 200

⁹⁶ तेजोमयानंद स्वामी, योग वाशिष्ठसारसंग्रहः, सेन्ट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट मुंबई - 400072 महाराष्ट्र, 2016, पृ.स. 117

प्रारब्ध के अनुसार जो प्राप्त है उसका परित्याग करता है। हर्ष और क्रोध उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के होने पर भी. शांत पुरुष, अनुपस्थित रहने के समान न तो हर्ष करता है और न ही क्रोध करता है।

उसका मन गहरी नींद में सोए हुए व्यक्ति के समान स्वस्थ रहता है। जिन पुरुषों का मन शम में आसक्त हो जाता है उनके चित्त से वृत्तियों की निवृत्ति हो जाती है। 'हे रघुनंदन इस क्षमा रूपी उत्कृष्ट साधन का अपहरण, अन्य पुरुषों द्वारा नहीं किया जा सकता है। ज्ञानी लोग इस अमृतस्वरूप साधन का आश्रय लेकर, परम पुरुषार्थ की सिद्धि करते हैं। उसी शम का तुम भी अनुसरण करो'⁹⁷

2. विचार - इस नाशवान संसार के दुख से पार होने के लिए विद्वान पुरुषों के पास विचार के अतिरिक्त दूसरा और कोई साधन नहीं है। संसार रूपी महारोग का विनाश विचार रूपी महाऔषधि से ही संभव है। सत्य का साक्षात्कार करने वाले पुरुषों के विवेक विचार से अशुभ का परित्याग करके शुभ की प्राप्ति करनी चाहिए। विचार के कारण ही बुद्धिमान पुरुषों के ज्ञान, बल, बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्य, क्रिया आदि में सफलता प्राप्त होती है। विचारों के माध्यम से अभीष्ट की सिद्धि और संसार सागर से पार होने का उपाय प्राप्त होता है। जिस पुरुष का मन शांत होता है, वही अपनी आत्मा में परमानंद का अनुभव करता है। इस जगत में जीव को सारे पदार्थ सत्य की भांति सुखद तभी तक प्रतीत होते हैं, जब तक यथार्थ रूप से विचार नहीं किया जाता है।

"मैं कौन हूँ? और यह संसार नामक दोष मेरे पास कहां से आया ? न्याय पूर्वक इस विषय पर अनुसंधान करने की प्रक्रिया को ही विचार कहते हैं।"⁹⁸

3. संतोष - इस जगत में जन्म लेने वाले जीव के लिए संतोष परमसुख का साधन और परम श्रेय है। संतोष से युक्त बुद्धि वाला पुरुष, इस संसार की विषम परिस्थितियों से विचलित नहीं होता है और न ही उसकी बुद्धि का नाश होता है। यह इस जगत

⁹⁷महाप्रभुलाल गोस्वामी , महाकवि श्रीमद्वाल्मीकि प्रणीत: योगवाशिष्ठ तारा बुक एजेंसी , कामच्छ वाराणसी 1988, पृ.स, 160

⁹⁸

में परम विश्राम को प्राप्त होता है। उसके लिए संसार की भोग सामग्रियां विष जैसी प्रतीत होती हैं।

संतोष, राग-द्वेष से उत्पन्न होने वाले दोषों का विनाशक तथा परम सुखद है। उस पुरुष को संतुष्ट कहा जा सकता है जो, अप्राप्त वस्तु की कामना का परित्याग करके, प्राप्त वस्तु में समभाव रखता हो तथा जिसके जीवन में हर्ष और शोक से उत्पन्न होने वाले विकारों का दर्शन नहीं होता हो। जिसका मन सभी प्रकार की पीड़ाओं से मुक्त और संतुष्ट है वही सही अर्थों में साम्राज्य सुख का भोग कर रहा है।

मन जब आत्मा के द्वारा, आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है तब इस सुख की प्राप्ति होती है। मनुष्य अपने शांत मन और शीतल बुद्धि द्वारा शाश्वत, स्थिर, सत्य, सनातन, स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। संतोषी पुरुष अपनी आत्मा द्वारा आत्मा में स्थित होकर, अपने स्वस्थ-स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप उसकी सारी मानसिक व्यथायें उसी प्रकार पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं, जिस प्रकार वर्षा ऋतु में धूल नष्ट हो जाती है।

4 **सत्संग** - इस जगत में मनुष्य के लिए सत्संग सबसे उत्कृष्ट है जो मनुष्य को संसार सागर से पार कराने में श्रेष्ठ साधन है। सत्संग रूपी वृक्ष पर विवेक की पुष्प खिलते हैं। जिसके परिणामस्वरूप मोक्ष फल की प्राप्ति होती है। सत्संग बुद्धिवर्धक, अज्ञान का विनाशक तथा मानसिक विकारों को दूरकर, मनुष्य के जीवन में आने वाली आपत्तियों और मोह को समाप्त करने वाला है। जीवन में सन्मार्ग को प्रकाशित करने वाला तथा हृदय के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर संसार सागर से तारने वाला संग सत्संग है। जिसमें सत्संग होता है। नाशवान संसार में सत्य का अनुसंधान करने तथा आत्म साक्षात्कार के लिए प्रेरित करने वाला संग सत्संग है।

है और विवेक की प्राप्ति सत्संग से होती है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं- बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

जीवन में सन्मार्ग को प्रकाशित करने वाला तथा हृदय के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर संसार सागर से तारने वाला संग सत्संग है। जिसमें सत्संग होता है।

नाशवान संसार में सत्य का अनुसंधान करने तथा आत्म साक्षात्कार के लिए प्रेरित करने वाला संग सत्संग है। आत्मविषयक विचार करने के लिए संत प्रेरित करते हैं, जिससे बुद्धि परम पवित्र होकर आत्म चिंतन करते हुए परम पद का साक्षात्कार कर लेती है। मैं कौन हूँ? यह ? यह संसार किसका है? संत समागम में ऐसे प्रश्नों पर चिंतन-मनन होता है और अंततः सत्य खोजते खोजते अविद्या जनित बाधाओं के दूर होते ही, एक दिन सत्य का प्रकाश, स्वयं प्रकट हो जाता है। शरीर और इंद्रियों द्वारा निर्मित बुद्धि से सत्य के बारे में जाना जा सकता है। परंतु सत्य को जानने वाली बुद्धि ऋतंभरा होती है। विवेक के द्वारा ही सत्य का साक्षात्कार हो सकता है और विवेक की प्राप्ति सत्संग से होती है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं- बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

2.4 मानसिक स्थिरता और ध्यान की शिक्षा-

योगवासिष्ठ के वैराग्य प्रकरण में श्रीराम कहते हैं कि अहंकार के कारण ही मनुष्य के जीवन में आपत्तियां आती हैं और इन आपत्तियों से मुक्त होने के लिए मनुष्य जीवन भर प्रयास करता रहता है। अहंकार ही अनेक प्रकार के मानसिक क्लेशों का कारण है। अविद्या से जन्म लेने वाला यह अहंकार राग, द्वेष और अभिनिवेश रूपी क्लेशों से मन को ग्रस्त कर देता है। क्लेश से मुक्त मन सुख का और क्लेश से युक्त मन दुःख का कारण बनता है। सुख-दुःख सब मन के खेल हैं। मन जिसे नहीं चाहता है उसे पाकर दुःखी होता है और जिसे चाहता है उसे पाकर सुखी होता है। मन के इस स्वाभाविक अधिगम से ही सुख-दुःख के पार हुआ जा सकता है। संसार में सुख-दुःख का निर्माण अहंकार के कारण ही होता है। श्रीराम कहते हैं कि 'यह अहंकार जब तक रहता है तब तक आपत्तिकाल में मुझे दुःख होता है और यदि नहीं रहता है तो मैं निरंतर सुख का अनुभव करता हूँ'⁹⁹। इसलिए अहंकार से मुक्त होना ही जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए। संपूर्ण आपत्तियों का घर संतोष, शांति, आनंद आदि गुणों से रहित इस अहंकार का जीव को आश्रय नहीं लेना चाहिए। इसकी समझ विवेक के दृढ़ होने के पश्चात् ही

⁹⁹ महाप्रभुलाल गोस्वामी, महाकवि श्रीमद्वाल्मीकि प्रणीतः योगवासिष्ठ, तारा बुक एजेंसी कामच्छा, वाराणसी सर्ग 15 पृ.स.42

होती है। विवेक के अभाव में अहंकार नामक अविद्याजनित क्लेश के कारण जीव इस संसार में दुख भोगता रहता है। दुःख का मूल कारण अहंकार ही है।

पांच ज्ञानेंद्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों तथा मन के द्वारा की गई शिक्षा अहंकार से युक्त होता है। अहंकारयुक्त शिक्षा दुःख का कारण तो बन सकता है परंतु सुख-दुख से मुक्त जीवन के निर्माण में अहंकारयुक्त शिक्षा का योग नहीं होता है। वास्तविक अर्थों में देखा जाए तो योग विद्या है। विद्या से अविद्या का नाश होता है। अविद्या का नाश होते ही अहंकार मिट जाता है। अहंकार मुक्त जीवन का निर्माण करना योग विद्या से ही संभव है।

चित्त का निर्माण अहंकार से युक्त ज्ञान के द्वारा होता है। इंद्रियों के माध्यम से जो कुछ भी हम सीखते हैं, उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति अहंकार के रूप में होती है। अहंकार के बिना संसार में अधिगम की प्रक्रिया संभव नहीं हो पाती। संसार का ज्ञान-नाम-रूपात्मक है। किसी भी विषय या वस्तु की अभिव्यक्ति नाम और रूप के माध्यम से ही होती है। शब्द का जब तक चित्र के रूप में चित्त में अंकन नहीं होता, तब तक शब्द का अर्थ चित्त में प्रकट नहीं होता। मस्तिष्क चित्र की भाषा समझता है, शब्दों की नहीं। शब्द के अर्थ का ज्ञान चित्र के रूप में चित्त में अंकित होता है, इसलिए संसार का सारा ज्ञान चित्त-वृत्ति के रूप में संकलित होता है।

1) तृष्णा के कारण चित्त या मन की चंचलता

चेतश्चञ्चलया वृत्त्या चिन्तानिचयचञ्चुरम् ।

धृतिं बध्नाति नैकत्र पञ्जरे केसरी यथा ॥1॥ (1/16 /10)

चेतः पतति कार्येषु विहगः स्वामिपेष्विव ।

क्षणेन विरतिं याति बालः क्रीडनकादिव ॥2॥ (1 /16/22)

जिस प्रकार सिंह पिंजरे के भीतर कहीं पर स्थिर नहीं रहता, इधर-उधर डोलता ही रहता है, उसी प्रकार मन, अपनी चंचल वृत्ति के कारण और चिन्ताओं के समूह से लदा रहता है , कभी भी स्थिर नहीं होता । अपने विषयों की ओर चित्त इस फुरती से दौड़ता है जैसे कि पक्षी अपने खाद्य मांस की ओर, और क्षणभर में ही उनसे इस प्रकार

विरक्त हो जाता है जैसे कि बालक खेल से । अर्थात् मन में ज़रासी भी स्थिरता नहीं है। मन बहुत ही चंचल है ।

श्रीराम जी महर्षि वशिष्ठजी से कहते हैं कि चित्त की चंचलता का कारण अंतःकरण में उठने वाली तृष्णा के कारण है। तृष्णा के जाल में फंसकर मनुष्य मोह के बंधन में बंध जाता है और अपने पारमार्थिक स्वरूप को प्राप्त करने में असमर्थ सा महसूस करता है। यह तृष्णा जड़ और चेतन के ग्रंथि से जुड़ी हुई रहती है। तृष्णा के कारण ही धर्म-अधर्म के अनुसार जीव स्वर्ग और नर्क में आता-जाता रहता है। तृष्णा काली नागिन की तरह इंद्रियों से संबंधित विषय मोगरूपी विष उगलती रहती है। तृष्णा सर्वथानिष्फल, व्यर्थ विस्तार को प्राप्त होने वाली अमंगलकारिणी और क्रूर है। जरा और मृत्यु इसके फल-फूल हैं। तृष्णा इस संसार रूपी नाटक की नहीं है। विषय विचार का त्याग ही तृष्णा रूपी विभूचिका से मुक्ति दिला सकती है।

1) अज्ञान ही समस्त दुःखों का कारण है

जडो देहो न दुःखाहो दुःखो देह्यविचारतः ।

अविचारो घनज्ञानादज्ञानं दुःखकारणम् ॥ (3/115/19)

अपरिज्ञात आत्मैव भ्रमतां समुपागतः ।

ज्ञात आत्मत्वमायाति सीमान्तः सर्वसंविदाम् ॥ (6/1/10/4)

जड़ देह का दुःख नहीं होता, विचारहीन देह वाले को ही दुःख होता है । गहरे अज्ञान से विचारहीनता आती है- इसलिये अज्ञान ही दुःख का कारण है । आत्मा के अज्ञान से ही भ्रम उत्पन्न होता और आत्मा के ज्ञान से ही सर्व प्रकार की सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है।

योग-वाशिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण में श्री वशिष्ठ जी श्रीराम से कहते हैं कि जो लोग देह का अभिमानी करते हैं वे अविवेक के कारण दुःखी में रहते हैं, क्योंकि दुःख का एकमात्र कारण अज्ञान या अविद्या है। अज्ञानी जीवात्माओं को अनेक प्रकार के शारीरिक दुःखों का सामना करना पड़ता है। अविवेक रूपी रोग से बंधा चित्त अनेक

प्रकार की चेष्टाएं करता रहता है। वृत्तियों से युक्त मन संसार के विषयों में भ्रमण करता है। वास्तव में शरीर जड़ है, परंतु मन चित्त के कारण ही नाना प्रकार की वासनाओं में मटकता रहता है। मन का यह भटकाव अज्ञानता या अविद्या के कारण होता है।

चित्त ही अविद्या है

चित्तमेव सकलाडम्बरकारिणीमविद्यां विद्धि ।

सा विचित्रकेन्द्रजालवशादिदमुत्पादयति ।

अविद्याचित्तजीवबुद्धिशब्दानां भेदो नास्ति ।

वृक्षतरुशब्दयोरिव ॥ (3/116/8)

चित्त को ही सारे आडम्बर को उत्पन्न करने वाली अविद्या समझना चाहिए । वह ही विचित्र इन्द्रजाल शक्ति द्वारा इस जगत् को उत्पन्न करती है । जैसे वृक्ष और तरु शब्द एक ही वस्तु के नाम हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है, वैसे ही अविद्या, चित्त, जीव और बुद्धि आदि में कोई भेद नहीं है ।

जब तक चित्त है तभी तक तीनों लोकों की सत्ता है। उसके क्षीण होते ही जगत् क्षीण हो जाता है। यह चित्त चंचल है। इसको वश में करना अत्यंत कठिन है। श्रीराम कहते हैं कि समुद्र को पी जाना, सुमेरु पर्वत को जड़ से उखाड़ फेंकना और अग्नि का ही आहार करना, इन तमाम सारे दुष्कर कार्यों से भी दुःसाध्य कार्य, चंचल चित्त को अपने वश में करना है। इस चित्त के कारण ही सैकड़ों प्रकार के सुख-दुःख जीवन में पैदा होते रहते हैं। अध्यात्म विषयक विवेक के कारण जब मन दुर्बल होता है, तब यह सारे सुख-दुःख निश्चय ही पूर्ण रूप से गल जाते हैं।

अविद्या से उत्पन्न होने वाले अहंकार राग-द्वेष, तृष्णा आदि की निंदा करने के साथ ही साथ श्रीराम ने शरीर की निंदा भी की। शरीर अहंकार रूपी गृहस्थ का विशाल गृह है। यह शरीर गिरकर सदा के लिए धरती पर लोट जाए अथवा चिरकाल तक स्थिर बना रहे, इसमें मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। इस शरीर में तृष्णा रूपी गृहस्वामिनी

बारंबार डोलती रहती है। यह तृष्णा एक पागल घोड़े के समान है, जो यहां से दूर-दूर जाकर बारंबार लौटती और तुरंत संपूर्ण दिशाओं में चक्कर काटने लगती है। यह तृष्णा सर्वथा सूनी, निष्फल, व्यर्थ विस्तार को पाने वाली अमंगल कारिणी और क्रूर है। यह कभी सुखदायिनी नहीं होती तृष्णा के अधीन रहने वाला जीव, जीवन भर दुःख भोगता रहता है। संसार रूपी वन में उगा यह शरीर केवल दुख भोगने के लिए ही है। चित्तरूपी चंचल वानर इसमें उछलता कूदता रहता है। 'यह शरीर तृष्णारूपी सर्पिणी का घर है। मिथ्या और मोह अर्थात् असत्य और अज्ञान के खंभे पर खड़ा यह देहरूपी रूपी गृह मुझे प्रिय नहीं है'¹⁰⁰ यह शरीर समस्त रोगों का घर है। समस्त मानसिक चिंताओं का दुर्गम वन है। इस देह में मुझे कोई प्रेम नहीं है। ना तो मैं शरीर का हूँ और ना ही शरीर मेरा है। जो लोग इस शरीर में आस्था रखते हैं और इसे नित्य स्थिर मानते हैं, वह मोहरूपी मदिरा का पान करके उन्मुक्त हुए लोग हैं।

मन का स्वरूप

सङ्गत्पनंमनोविद्विसङ्कल्पात्तन्निभिद्यते ।

यथाद्रवत्वात्सलिलंयथास्पन्दोऽनिलात् ॥(योग-वाशिष्ठ 3।4।43)

यत्रसंकल्पनंतत्रतन्मनोऽङ्गतथास्थितम् ।

सङ्कल्पमनसीभिन्ने न कदाचनकेचन ॥ (योग- वाशिष्ठ 3।4।44)

परस्यपुंसःसङ्कल्पमयत्वंचित्तमुच्यते । (योग- वाशिष्ठ 5/13/ 80)

यदर्थप्रतिभानंतन्मनइत्यभिधीयते ॥(योग-वाशिष्ठ 3/4/42)

संकल्प करने का नाम मन है; मन संकल्प से भिन्न कुछ नहीं -जैसे जल द्रवत्व से है और वायु स्पन्दन से भिन्न कोई दुसरा पदार्थ नहीं है । जहाँ संकल्प है वहीं मन है। मन संकल्प से भिन्न कभी किसी प्रकार नहीं है । विषयों का चित् (आत्मा) में उदय होना ही मन है । परम पुरुष (आत्मा) के संकल्पमय होने का नाम ही चित्त (मन) है । अनन्त, सर्वशक्तियुक्त महान् आत्मा के संकल्प शक्ति द्वारा रचे हुए रूप का नाम मन है । ब्रह्म की यह संकल्पानुसार कार्य करने वाली कलना नामवाली शक्ति अवच्छेद युक्त

¹⁰⁰ संक्षिप्त योगवाशिष्ठ गीताप्रेस गोरखपुर संवत् 2068, सर्ग 17 पृ.स.43

(परिमित रूपवाली) और त्याग और ग्रहण करने वाली है । वह मन (नामक शक्ति) अपने आप ही स्वतंत्रतापूर्वक नित्यप्रति संकल्पों की रचना करता रहता है, उसी के द्वारा यह विस्तृत माया का जाल (जगत्) तना जाता है ।

आत्मा का यह मलीन और कलंकवाला (भीतर मैल वाला क्योंकि शुद्ध स्वरूप से च्युत हो गया है) स्पन्दन, जो मन कहलाता है, न सर्वथा जड़ ही है और न चेतन। आत्मा की इस विषय की ओर दौड़ने वाली कलना का आत्मभाव तो चेतन है, चेत्य अंश जड़ है । मलीन चित (आत्मा) का स्वयं कल्पना किया हुआ जड़ और चेतन दोनों स्वरूप बाला रूप मन कहलाता है- वह कभी जड़ और कभी चेतन हो जाता है। (ब्रह्म का वह) महान् स्वरूप जो कि संकल्पात्मक है ब्रह्म रूप से चेतन है और दृश्य रूप से जड़ है । जब अपने स्वयं प्रकाश आत्मस्वरूप का विस्मरण होकर कर्तृत्वपन का ही निश्चय रहता है और ध्यान केवल एक विषय की ओर ही रहता है उस समय आत्मा का रूप मन होता है ।

‘मन भावना मात्र है, भावना स्पन्द धर्मवाली होती है, और क्रिया की कल्पना करती रहती है जो कि किसी न किसी फल के रूप में परिणित होने के लिये दौड़ती रहती है- अर्थात्- किसी पदार्थ की रचना करती रहती है। दृश्य के अतिरिक्त मन का और कोई रूप नहीं है। स्पन्दन के लिए उत्सुक चित्त (आत्मा) भ्रमित सी होकर अपने आप को दृश्य रूप से अन्य सी अनुभव करती हुई विभाजित न होते हुए भी अपने एक भाग जैसे रूप को धारण कर लेती है । अपने नित्य एक स्वरूप को भूलकर जो चिति (चेतन स्वरूप आत्मा) की स्थिति है उसका नाम चित्त (मन) है- उससे ही इस जगत् की उत्पत्ति हुई है। मन यद्यपि ब्रह्म में इस प्रकार स्थित है। जैसे- सोने में कंकड़ तो भी वह दृश्य के अनुभव को सत्य समझने के कारण अपने सत्-भाव (ब्रह्मभाव) का आनन्द नहीं ले पाता (अर्थात् विषयों की ओर प्रवृत्ति रहने के कारण विषयों की नाई ही अपने को क्षणभंगुर समझता है, नित्य नहीं जानता)। वास्तव में मन जो कि सत्-रूप ही है (अर्थात् आत्मा ही है) न बाहर है और न हृदय के भीतर है । वह तो आकाश की नाई

सर्वत्र स्थित है । मन सूक्ष्म आकार वाला है, स्थूलभाव को वह अधिक समय तक भावना करते रहने से प्राप्त होता है'¹⁰¹।

मानसिक स्थिरता का अर्थ हुआ मन की स्थिरता मन , मन का स्वभाव है संकल्प करना अगर मन के अनुकूल काम नहीं हुआ। तो मन = चित्त में विभिन्न प्रकार के विचार आने लगते हैं । वह सकारात्मक भी है और नकारात्मक भी हो सकते हैं। 'योग -वाशिष्ठ में मन के साथ ही मानसिक रोगों की भी चर्चा की गई है ।उसके उपाय भी बताये गए हैं मानसिक दुःख अर्थात् आधि और व्याधि अर्थात् शारीरिक दुःख दोनों ही मुखता = मूढ़ता से उत्पन्न होते हैं और तत्त्व ज्ञान से दोनों का क्षय होता है घन - सघन- गहन मोह - चित्त कि वह विकलता जो भय, दुख चिंता आदि से उत्पन्न होती है - देने वाली मानसिक रोग जड़ता अथवा अज्ञानता से है और यह वस्तु 'मुझको प्राप्त हो गई। प्रकार के विचार से ऐसे उत्पन्न होती है -जैसे वर्ष में मेघ बरसता है को 'शारीरिक रोग' इस प्रकार उत्पन्न होते हैं जबकि अज्ञानता के कारण मनुष्य का मन उसके बस में नहीं होता है उसमें अनेक प्रकार की वासना उठाती है। तो मनुष्य उसको पूरा करने के लिए,खाद्या पदार्थों को खाने लगता है, अगम्य स्थानों पर जाने लगता है, अनुचित समय पर अनुचित तरीके से काम करने लगता है, दुष्ट पुरुषों के संगति में बैठने लगता है और अपने मन में खोटे भाव का स्थान देने लगता है। ऐसे होने पर उनकी नाड़ियाँ ठीक-ठाक प्रकार से काम करना छोड़ देती है ।कुछ नाड़ियाँ की शक्ति छीन हो जाती है और कुछ नाड़ियाँ शक्तिशाली हो जाती है ।जिनके द्वारा जीवनशक्ति, प्राणशक्ति का शरीर के अंदर सामान प्रवाह नहीं रहता है ।प्राणशक्ति के संचार में हास्य होने लगता है ऐसा होने से शरीर की स्थिति विचलित हो जाती है और उसमें विभिन्न प्रकार के दोष उत्पन्न हो कर अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

चित्त की गड़बड़ी के कारण शरीर भी गड़बड़ हो जाता है शरीर में जब संक्षोप होता है तो आकुलता और व्याकुलता बढ़ जाती है तो प्राण के प्रसार में सफलता आ

¹⁰¹ आत्रेय बी,एल.योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण जन्म स्थान सेवा संस्थान मथुरा पृ.स.311 -312

जाती है और नाड़ियाँ में विकार उत्पन्न हो जाता हैइसको ठीक रखने के लिए तीन प्रकार के अभ्यास बताए गए हैं' ¹⁰²

मानसिक स्थिरता के साधन

तीन प्रकार का योगाभ्यास :-

एतकतत्त्वघनाभ्यासःप्राणानां विलयस्तथा।

मनोविनिग्रहश्चेतियोगशब्दार्थसंग्रहः॥ (योग-वासिष्ठ 6/1/69।27)

एकस्मिन्नेवसंसिद्धेसंसिध्यन्तिपरस्परम्।

एकार्थभ्यासनप्राणरोधचेतःपरिक्षयाः (योग-वासिष्ठ 6/1/69 /40)

त्रिष्वेतेषुप्रयोगेषुमनःप्रशमनंवरम्। (योग-वासिष्ठ 6/1/69 /21)

साध्यंविद्धितदेवाशुयथाभवतितच्छिवम्॥

योग (संसार से पार उत्तरने की युक्ति) शब्द के तीन अर्थ हैं. (1) एक तत्त्व का गहरा अभ्यास, (2) प्राणों का निरोध और (3) मन का निग्रह । इन तीनों-एक तत्त्व का अभ्यास, प्राण निरोध और चित्त नाश-में से किसी एक का अभ्यास हो जाने पर तीनों ही सिद्ध हो जाते हैं। इन तीनों प्रयोगों में से मन को शान्त करना सबसे उत्तम है । इसके सिद्ध हो जाने पर शीघ्र ही कल्याण हो जाता है।

1 -एक तत्त्व का गहरा अभ्यास

एकतत्त्वघनाभ्यासाच्छान्तं शाम्यत्यलं मनः ।

तल्लीनत्वात्स्वभावस्य तेन प्राणोऽपि शाम्यति ॥(योग-वासिष्ठ 8/69/48)

एक तत्त्व के गहरे अभ्यास से मन सहज में शान्त हो जाता । मन के स्वभाव में लीन हो जाने पर प्राण भी शान्त हो जाता है। एक तत्त्व के गहरे अभ्यास करने की भी योग-वाशिष्ठ में तीन रीतियाँ वर्णन की गई हैं:- ब्रह्म-भावना, पदार्थों के अभाव की भावना और केवलभावना । उनका वर्णन निम्नलिखित है

¹⁰² शास्त्री पण्डित श्रीकृष्ण पन्त, योगवाशिष्ठः(महारायण), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 221001,पृ.स. XCIII-XCIV

(अ) ब्रह्मभावना

विचार्य यदनन्तात्मतत्त्वं तन्मयतां नय ।

मनस्ततस्तल्लयेन तदेव भवति स्थिरम् ॥(योग-वाशिष्ठ 169/49)

प्रत्याहारवतां चेतः स्वयं भोग्यक्षयादिव ।

विलीयते सह प्राणैः परमेवावशिष्यते ॥

यथैव भावयत्यात्मा सततं भविष्यति स्वयम् ॥(योग- वाशिष्ठ 169/52)

भाविता शक्तिरात्मानमात्मतां नयति क्षणात् ।

अनन्तमखिलं प्रावृङ् मिहिका महती यथा ॥ (योग-वाशिष्ठ 4/11/60)

अनन्त आत्मतत्त्व का विचार करके मन को तन्मय बनाने का यत्न करना चाहिये । मन के तल्लीन होने पर वह स्थिर हो जाता है। आत्मतत्त्व (ब्रह्म) में मन को स्थिर करने से प्राणों सहित मन ऐसे लीन हो जाता है जैसे कि वह भोग्य पदार्थों का क्षीण होने पर हो जाता है। आत्मा जैसी-जैसी भावना करता है वह शीघ्र ही वैसा ही हो जाता है और वैसी ही शक्ति से पूर्ण हो जाता है । जैसे- बरसाती नाले बारिश होने से बड़ी-बड़ी नदियाँ बन जाते हैं वैसे ही भावना द्वारा मन आत्मा होकर अनन्त और सब कुछ हो जाता है । (अर्थात् अपने आपको ब्रह्म समझते-समझते वह एक दिन ब्रह्म ही बन जाता है) ।

(ब) पदार्थों के अभाव की भावना

सत्यदृष्टौ प्रपन्नायामसत्ये क्षयमागते ।

निर्विकल्पचिदच्छात्मा स आत्मा समवाप्यते ॥(योग-वाशिष्ठ 4/21/43)

भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् ।

अत्यन्ताभावसम्बोधे यदि रूढिरलं भवेत् ॥ (योग-वाशिष्ठ 317/27)

तज्ज्ञातं ब्रह्मणो रूपं भवेन्नान्येन कर्मणा ।

दृश्यात्यन्ताभावतस्तु ऋते नान्या शुभा गतिः ॥ (योग-वाशिष्ठ 317/28)

जगनाम्नोऽस्य दृश्यस्य स्वसत्तासम्भवं विना ।

बुध्यते परमं तत्त्वं न कदाचन केनचित् ॥ (योग-वाशिष्ठ 317/30)

असत्य दृष्टि के क्षीण हो जाने पर और सत्य दृष्टि के दृढ़ हो जाने पर आत्मा निर्विकल्प और शुद्ध चित्ति का आकार धारण कर लेता है। जगत् रूपी भ्रम के, जो कि आकाश के रंग की नाई देखने मात्र को है वास्तविक नहीं है, अत्यन्त अभाव के ज्ञान के दृढ़ हो जाने पर ब्रह्म के रूप का ज्ञान होता है; अन्य प्रकार से नहीं। दृश्य जगत् के अत्यन्त अभाव की भावना के बिना दूसरी और कोई शुभ गति नहीं है। इस जगत् नाम वाले दृश्य की सत्ता को असम्भव समझे बिना कभी भी कोई परम तत्त्व को नहीं जान सकता। दृष्टा, दर्शन और दृश्य सबको अत्यन्त असत् समझकर निर्विकल्प समाधि में एकतत्त्व के ध्यान में निमग्न होने पर, हृदय में वासना के क्षय के अंकुर का बीज आरोपित होने पर, क्रम से राग द्वेष आदि की उत्पत्ति नहीं होती, संसार की भावना निर्मूल हो जाती है, और निर्विकल्प समाधि भी दृढ़ होने लगती है। अहंभाव और जगत् के अत्यन्त असत् होने का अभ्यास किये बिना नित्य रूप मुक्ति का अनुभव उदय नहीं होता। जो लोग युक्ति और शास्त्र के अध्ययन द्वारा ज्ञाता और ज्ञेय दोनों को अत्यन्त असत् समझने का प्रयत्न करते हैं वे ब्रह्माभ्यासी कहलाते हैं। यह जगत्, मैं और सब वस्तुएँ कभी न उत्पन्न हुई हैं, और न हैं- इस प्रकार का 'निश्चित ज्ञान' ज्ञान का वास्तविक अभ्यास है। दृश्य के असम्भव होने के ज्ञान का नाम ही ज्ञान है। यही जानने योग्य भी है। इसके अभ्यास से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है। इसलिये अभ्यास बड़ी चीज है।

(स) केवलीभाव

यद्दष्टरस्याद्रष्टृत्वं दृश्याभावे भवेद्वलात् ।

तद्विद्धि केवलीभावं तत एवासतः सतः ॥

तत्तामुपगते भावे रागद्वेषादिवासनाः ।

शाम्यन्त्यस्पन्दिते वाते स्पन्दनक्षुब्धता यथा ॥

त्रिजगत्त्वमहं चेतिदृश्येऽसत्तामुपागते । (योग-वाशिष्ठ 3।4।53)

दृश्य के अत्यन्त अभाव होने पर जब दष्टापन आप ही लय हो जाता है तब जो सत्ता शेष रहती है उसे केवली भाव कहते हैं। जैसे हवा के रुक जाने पर उसकी क्रियाएं

शान्त हो जाती हैं वैसे ही उस भाव (केवलीभाव) के प्राप्त हो जाने पर राग द्वेष आदि की सभी बासनायें शान्त हो जाती हैं। तीनों जगत्, तुम, में और सब दृश्य शान्त हो जाने पर द्रष्टा को अपने शुद्ध आत्मस्वरूप होने की केवली भाव अनुभव में आने लगता है। मैं, तुम, और जगत् आदि दृश्य के भ्रम के शान्त हो जाने पर और द्रष्टा के अनुभव में न आने पर केवलता का अनुभव उदय होता है।

प्राणों की गति का निरोध :-

तालवृन्तस्य संस्पन्दे शान्ते शान्तो यथानिलः ।

प्राणानिलपरिस्पन्दे शान्ते शान्तं तथा मनः ॥ (169/41)

तस्मिन्संरोधिते नूनमुपशान्तं भवेन्मनः । (योग-वाशिष्ठ 5/78/15)

मनःस्पन्दोपशान्त्यायं संसारः प्रविलीयते ॥ (योग-वाशिष्ठ 5/78/16)

प्राणशक्ती निरुद्धायां मनो राम विलीयते ।

द्रव्यच्छायानु तद्द्रव्यं प्राणरूपं हि मानसम् ॥ (योग-वाशिष्ठ 5/13/83)

जैसे पंखे की गति रुक जाने पर हवा की गति रुक जाती है, वैसे ही प्राणों की गति रुक जाने पर मन शान्त हो जाता है । प्राण के निरोध करने से अवश्य ही मन शान्त हो जाता है। मन के शान्त होने पर अवश्य ही यह संसार विलीन हो जाता है। प्राण की शक्ति के निरुद्ध हो जाने पर अवश्य ही, हे राम मन विलीन हो जाता है। जैसे द्रव्य की छाया की गति द्रव्य की गति के समान होती है, मन ने ही प्राणों की कल्पना की है और इस बात की भी कल्पना की है कि प्राण उसकी गति है और प्राण के बिना उसकी स्थिति नहीं है । इस कारण से ही वह प्राण के ऊपर निर्भर रहता है । मन जिसका अभ्यास कर लेता है उसी का अनुभव करता है। मन समझता है कि प्राण उसका जीवन है, इसलिये ही प्राण में मन की स्थिति है ।

(आ) प्राणविद्या-

सर्वदुःखक्षयकरी सर्वसौभाग्यवर्धिनी । (योग-वाशिष्ठ 6/1/24/8)

कारणं जीवितस्येह प्राणचिन्ता समाश्रिता ॥ (योग-वाशिष्ठ 6/1/24/9)

इडा च पिङ्गला चास्य देहस्य मुनिनायक ।

सुस्थिते कोमले मध्ये पार्श्वकोष्ठे निमीलिते ॥(योग-वाशिष्ठ 6/1/24/20)

प्राण विद्या से जीव के सब दुःखों का नाश होता है और सबप्रकार के सौभाग्य की वृद्धि होती है। शरीर के मेरुदण्ड (पार्श्वकोष्ठ) के मध्य में दो मिली हुई कोमल इडा और पिङ्गला नामक नाड़ियाँ स्थित हैं । अस्थि और मांस से बने हुए, ऊपर और नीचे को जाने वाली नालियों समेत, कोमल पंखड़ियों वाले कमल के फूल के जोड़ों के समान, तीन यन्त्र (शरीर के ऊपरी भाग में) स्थित हैं इन यन्त्रों के पत्र वायु के प्रवेश से विकसित होते हैं। वायु से व्याप्त होने पर उनके पत्र धीरे धीरे हिलते हैं। उन पत्तों के हिलने से वायु की वृद्धि होती है, जैसे वायु द्वारा लता और पत्रों के स्पन्दित होने पर बाहर चारों ओर हवा फैलती है। भीतर जब वायु का आकार बढ़ता है तो वह वायु ऊपर नीचे, चारों ओर शरीर में नाड़ियों द्वारा फैलती है। हृदय में प्रविष्ट वायु शरीर में फैलकर नाना प्रकार की चेष्टायें करती हुई और विशेष स्थानों में रहती हुई प्राण, अपान, समान वयान और उदान नामों से प्रसिद्ध होती है। शरीर के भीतर हृदय में स्थित तीनों यंत्रों में प्राण की सारी शक्तियाँ रहती हैं, और वहाँ से इस प्रकार शरीर में फैलती हैं जैसे चन्द्रमा से किरणें फैलती हैं ।

वे प्राण शक्तियाँ जाती हैं, आती हैं, आकर्षण करती हैं, हरण करती हैं विहार करती हैं, ऊपर चढ़ती है, नीचे गिरती है । हृदय कमल में रहने वाली वायु प्राण कहलाती है; इसकी एक शक्ति तो आँख में जाकर उनका संचालन करती है; एक त्वचा में जाती है; एक नाक में; एक भोजन को पचाती है; एक जिह्वा में जाकर वाणी का संचालन करती हैं; बहुत कहने से क्या, सारे शरीर को भगवान् प्राण को इस प्रकार चलाता है जैसे कि कोई यांत्रिक (इन्जीनियर) किसी यंत्र को चलाता हो । शरीर के भीतर रहने वाली वायु के दो विशेष भाग हैं, एक ऊपर की ओर जाता है और दूसरा नीचे की ओर-उनके नाम हैं प्राण और अपान । कमल की नाल के एक तन्तु के हजारों हिस्से से भी सूक्ष्म और दुर्लक्ष्य गति प्राण और अपान की है । देह के बाहर और भीतर ऊपरी भाग में सदा गति और स्पन्दशक्ति वाला प्राण सदा रहता है । देह के बाहर और भीतर नीचे के भाग में सदागति और स्पन्दशक्ति वाला अपान सदा रहता है

। प्राण और अपान की गति को जानकर और वश में करके योगी स्वस्थ रहकर सुख भोगता है । हृदय में स्थित कमलपत्र से प्राण का उदय होता है और द्वादश (12) अंगुल तक बाहर आकर वह अस्त हो जाता है।

2.5 योग- वासिष्ठ में गुरु -शिष्य परम्परा का महत्त्व

यदि इस ग्रंथ की शिक्षा विधि पर विचार किया जाए तो वशिष्ठ ने जिस विधि का प्रयोग करके राम को ज्ञान उपदेश करके उनके अज्ञानता और भ्रान्ति का निवारण कर आत्मानंद से आलोकित कर दिया वह एक अनूठी विधि का प्रयोग है ऐसा हीही प्रयोग अष्टावक्र ने राजा जनक पर किया जो श्रवणमात्र से ही जीवन्मुक्त हो गये। योग-वाशिष्ठ में अपनायी गई शिक्षण-विधि सार्थक, उपयोगी एवं शीघ्र स्थायी प्रभाव उत्पन्न करने वाली है। इस विधि के निम्न पक्ष हैं-

शिक्षा का प्रभाव उसी पर होता है जिसमें ज्ञान प्राप्त करने की प्यास है। जो ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक नहीं है उसे ज्ञान देने का प्रयत्न करना वैसा ही है जैसे सूअर के आगे हीरे बिखेर देना जो उन्हें पाँवों तले कुचल मात्र देगा। जो ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक ही नहीं है उसे कभी भी उच्च-कोटि का ज्ञान नहीं दिया जा सकता चाहे ज्ञानदाता स्वयं ब्रह्मा या बृहस्पति ही क्यों न हों। इसके विपरीत ज्ञान-प्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति जीवन की हर परिस्थिति एवं घटना से तथा हर व्यक्ति से ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ज्ञान-प्राप्ति की तीव्र पिपासा होने पर उसे सद्गुरु कहीं ढूँढना नहीं पड़ता, बल्कि वह सद्गुरु स्वयं उसके पास आता है। गुरु भी योग्य शिष्य की सदा तलाश में रहता है जैसे विवेकानन्द को रामकृष्ण, जनक को अष्टावक्र, और राम को वशिष्ठ मिले। ऐसा मिलन संयोग मात्र नहीं है बल्कि प्रकृति का शाश्वत नियम है। राम की ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा ही उनकी जीवन्मुक्ति का कारण है। जब ऐसी जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से पूर्व जन्म के सुसंस्कारों के फलस्वरूप अनायास ही जाग्रत होती है तो सुफल देने वाली होती है। विवेकानन्द, भर्तृहरि, शुकदेव, जनक, राम, रामकृष्ण आदि की ज्ञान-पिपासा ने ही उन्हें उच्च ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बनाया। राम में

भी सर्वप्रथम ऐसी ही ज्ञान-पिपासा जाग्रत हुई तभी वशिष्ठ ने उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार करके ज्ञानोपदेश दिया।

1) शिष्य की पात्रता

ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा का होना ही ज्ञान-प्राप्ति के लिए आवश्यक नहीं है। गुरु उस शिष्य की पात्रता की परीक्षा लेकर ही उसे ज्ञानोपदेश देता है। जिस शिष्य में पात्रता है वही उस ज्ञान का लाभ उठा सकता है अन्यथा वह इस उच्च ज्ञान का दुरुपयोग कर स्वयं का तथा समाज का अहित कर सकता है। योग-वाशिष्ठ में कहा है-

जिसमें अभी बुद्धि का पूरा प्रकाश नहीं हुआ है, उसको इस प्रकार के सिद्धांत का उपदेश करना उचित नहीं है, क्योंकि वह सिद्धांत को भोग की दृष्टि से काम में लाकर नाश की ओर प्रवृत्त होगा।" (4/39/21)

"पहले शिष्य को शम, दम आदि अच्छे गुणों द्वारा शुद्ध करना चाहिए, तब उसको 'सब कुछ ब्रह्म है' इस प्रकार का उपदेश करना चाहिए।" (4/39/23)

"जो अज्ञानी को, 'सब कुछ ब्रह्म है' इस सिद्धांत का उपदेश देता है, वह उसे नरक की ओर प्रवृत्त करता है।" (4/39/24)

इस प्रकार सर्वप्रथम गुरु उस शिष्य की पात्रता की परीक्षा करता है। इस परीक्षा में खरा उतरने पर ही उसे अपने पास बिठा कर ऐसा ज्ञान देता है। यदि उसकी जिज्ञासा तो है किन्तु पात्रता नहीं है तो वह सर्वप्रथम शम, दम आदि नियमों का पालन करने को कहता है। उसकी पूर्ण चित्त-शुद्धि होने पर ही वह उच्च ज्ञान का उपदेश देता है। राम की विषाद की स्थिति तथा चित्त की निर्मलता को देखकर ही वशिष्ठ ने समझ लिया कि वे आत्मज्ञान के अधिकारी थे तथा उनको ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा थी तभी उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार किया। ऐसी ही पात्रता की शर्त पूरी करवा कर ही अष्टावक्र ने राजा जनक को, राजा जनक ने शुकदेव को ज्ञान का उपदेश दिया। ये जप, तप, ध्यान, यज्ञ, पूजा आदि साधन चित्त-शुद्धि के ही उपाय हैं जिनसे ज्ञान की पात्रता आती है।

2) सैद्धान्तिक विवेचन

पात्रता की शर्त पूरी होने पर गुरु शिष्य के सामने पहले सृष्टि रचना का सैद्धान्तिक विवेचन करता है जिससे शिष्य इस सम्पूर्ण सृष्टि-रहस्य को हृदयंगम कर ले। इसके बाद वह साधना के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालता है। इससे शिष्य की रुचि जाग्रत होकर वह ध्यानस्थ हो जाता है। ध्यान द्वारा जब वह पूर्ण ग्राहक की स्थिति में आ जाता है तब गुरु उसे अन्तिम एवं सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य को उसके सामने प्रकट करता है जिसे वह तत्काल ग्रहण कर लेता है जिससे उसका समस्त अज्ञान एवं भ्रान्ति दूर होकर वह आत्मज्ञान के आलोक से आलोकित हो जाता है। शिष्य को इस स्थिति में पहुँचा देना ही गुरु का उद्देश्य होता है। इसमें शिष्य के साथ गुरु भी अपनी सफलता मानता है। जिस गुरु के शिष्य तो हज़ारों हों किन्तु वह एक को भी आत्म-ज्ञान करा कर जीवन्मुक्त न करा सके तो वह असफल गुरु है। वह अपने गुरु पद का अधिकारी भी नहीं है।

3) प्रयोग विधि

जिस प्रकार एक विज्ञान का अध्यापक अपने छात्रों को सैद्धान्तिक विवेचन करने के बाद उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए प्रयोगशाला में विद्यार्थी से विभिन्न प्रयोग करवाता है जिससे छात्र उसकी सत्यता को स्वयं देख सके, उसी प्रकार इस ग्रन्थ में हर सिद्धान्त का गुरु ने प्रयोगात्मक पक्ष भी राम के सामने विभिन्न उपाख्यानों द्वारा रख कर यह सिद्ध किया कि ये सिद्धान्त विभिन्न व्यक्तियों पर किस प्रकार घटित हुए। इस प्रकार शिष्य के सम्मुख यह ज्ञान दिया जाये जो सैद्धान्तिक ज्ञान न होकर प्रयोग सिद्ध होने से पूरी तरह हृदयंगम हो जाय।

4) आत्मज्ञान की साधना

अध्यात्म के अनुसार आत्म-ज्ञान तो गुरु के उपदेश से एक ही क्षण में होता है किन्तु उसके लिए पात्रता प्राप्त करने में समय लगता है। पात्रता पूर्ण होने पर ही गुरु ज्ञान का उपदेश देता है अन्यथा वह पात्रता की तैयारी के लिए साधना करवाता है। लम्बे

समय की साधना केवल चित्त-शुद्धि के लिए ही होती है अन्यथा साधना का कोई प्रयोजन नहीं है। साधना से उपलब्धि नहीं होती बल्कि पात्रता आती है। साधना से चित्त-शुद्धि होकर साधक पूर्ण ग्राहकता की स्थिति में आ जाता है। यही उसकी पात्रता है तथा इसी स्थिति में गुरु उसे ज्ञानामृत का पान कराता है तभी उसका प्रभाव शिष्य पर होता है अन्यथा वह जहर भरे पात्र में अमृत उडेलने के समान होता है जिससे अमृत भी जहर बन जाता है और जहर मिश्रित अमृत स्वयं के एवं समाज के लिए हानिकारक ही सिद्ध होता है। जनक, शुकदेव, राम आदि की पात्रता पूर्ण होने से ही गुरु के उपदेश से वे एक ही क्षण में सुनते-सुनते ही आत्म-बोध को उपलब्ध हो गये अन्यथा सम्पूर्ण जीवन तक भी उपलब्धि नहीं होती।

5) शिष्य की परीक्षा

आत्म-बोध के बाद गुरु, शिष्य की परीक्षा भी लेता है कि उसे जो ज्ञान हुआ है वह वास्तविक है या भ्रान्ति मात्र है। ऐसे ज्ञान में भ्रान्ति की अधिक गुंजायश रहती है। कोई भी अज्ञानी शिष्य 'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं शिव हूँ', 'यह सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म ही है' आदि बातें कह कर गुरु को भी धोखा दे सकता है अथवा उसकी स्वयं को भ्रान्ति भी हो सकती है जिसमें वह स्वयं को आत्मा, ब्रह्म आदि मान बैठता है। इसलिए गुरु उस शिष्य की पूर्ण परीक्षा लेकर ज्ञात करता है कि उसे जो ज्ञान हुआ है वह सत्य हुआ है या भ्रान्ति मात्र है। अष्टावक्र ने ऐसे ही जनक की परीक्षा ली, वशिष्ठ ने राम की परीक्षा ली। ऐसी परीक्षा के बाद ही गुरु शिष्य को ज्ञानी या जीवन्मुक्त घोषित करता है।



तृतीय अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक और
दार्शनिक दृष्टिकोण



तृतीय अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक और दार्शनिक दृष्टिकोण

3.1 श्रीमद्भगवद्गीता का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।

(तिलक लोकमान्य बालगंगाधर, श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य अथवा कर्मयोग पृ.स. 2)

जिसके उपनिषद है वे मानो गौएँ है श्री कृष्णा स्वयं दूध दुहने वाले (गवाल) हैं, बुद्धिमान अर्जुन (उन गौओं का पवाला) भोक्ता बछड़ा (वत्स) है और जो दूध दुहा गया है, वही मधुर गीतामृत है। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि हिंदुस्तान की सब भाषाओं में इसके अनेक अनुवाद, टीकाएँ और विवेचन हो चुकी है परंतु जब से पश्चिम विद्वानों को संस्कृत भाषा का ज्ञान होने लगा है, तब से ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि यूरोपीय की भाषाओं में भी इसके अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए हैं तात्पर्य यह है कि इस समय क्या अद्वितीय ग्रंथ समस्त संसार में प्रसिद्ध है ।

भगवद्गीता उपनिषदों का सार है। वास्तव में भगवद्गीता की बात उपनिषदों से भी विशेष है। श्रीमद्भगवद्गीता के रचना का श्रेय महाभारत के पौराणिक संकलनकर्ता श्री वेदव्यास जी को दिया जाता है । श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्म पर्व के 23-40 अध्याय से लिया गया है, इसमें 18 अध्याय और 700 श्लोक प्राप्त होते हैं। 'भगवद्गीता की मूल रचना ईसवी पूर्व 200 में लिखी गई थी । वर्तमान रूप में वर्णित भगवद्गीता, ईसा की दूसरी शताब्दी में वेदान्त के अनुयायी किसी विद्वान द्वारा किया गया है- ऐसी मान्यता है'¹⁰³

प्रस्थानत्रयी के अंतर्गत श्रीमद्भगवद्गीताको स्थान प्राप्त है। मानवीय जीवन के उद्धार के लिए तीन राजमार्ग प्रस्थानत्रयी के नाम से कहे जाते हैं, वैदिक प्रस्थान को 'उपनिषद' कहते हैं। दार्शनिक प्रस्थान को 'ब्रह्मसूत्र' कहते हैं। स्मृति प्रस्थान को

¹⁰³ सर्वपल्लि डॉ.राधाकृष्णन, भगवद्गीता, हिन्दू पॉकेट बुक्स, जे.40 जोरबाग लेन नई दिल्ली 110003, 2012, पृ.स, 17।

श्रीमद्भगवद्गीता कहते हैं। उपनिषदों के मंत्र , ब्रह्मसूत्र के सूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोकों की समतुल्य मान्यता है। हिन्दू धर्म ग्रंथों में प्राप्त होता है कि उपनिषदों और वेदान्त की तुलना में अपेक्षाकृत भगवद्गीता में अधिक सुसंगत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। श्रीभगवद्गीता ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र , नीतिशास्त्र , अधिविद्या का विज्ञान और ब्रह्म के साथ संयोग की कला प्रस्तुत करता है।¹⁰⁴

श्रीमद्भगवद्गीता का प्राकट्य ऐसी परिस्थितियों में हुआ जब ज्ञान 'कर्तव्य' को परिभाषित नहीं कर पा रहा था । ज्ञान और कर्म का अंतर्विरोध जीवन में पलायन की ओर ले जाता है। अर्जुन भी इसी मानसिक उथल-पुथल की स्थिति में अपने कर्तव्य पथ से विचलित हो रहा था । ऐसी स्थिति में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा भगवद्गीता के ज्ञान की शिक्षा अर्जुन को दी। किसी भी शिक्षण प्रक्रिया का उद्देश्य सिखाने से है। सिखाने से व्यक्ति के व्यवहार में वांछित परिवर्तन होता है। सिखाने से ज्ञान की प्राप्ति होती है, वही ज्ञान मानवीय व्यवहार में परिलक्षित होता है। ज्ञान का व्यवहारिक होना ही उसकी सफलता है। कई बार परिस्थितियों में ज्ञान और कर्म का मेल नहीं हो पाता। ज्ञान और कर्म के योग के बिना जीवन असंतुष्ट सा रहता है। असंतुष्ट जीवन का आधार ज्ञान और कर्म के योग का नहीं होना है, भगवद्गीता का प्राकट्य उस व्यवहार में परिवर्तन के लिए है, जिसको करने के लिए अर्जुन अपने कर्तव्य पथ से विचलित हो रहा है। एकसाथ परिस्थिति वश अर्जुन ने स्वयं के लिए जिस कर्म को नियत कर रखा है। उससे बचने का प्रयास विभिन्न तर्कों के माध्यम से अर्जुन द्वारा दिए जा रहे तर्क ज्ञान से युक्त है, परंतु उन परिस्थितियों में व्यवहारिक नहीं है।

अर्जुन का व्यवहार ज्ञान से युक्त हो, इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण द्वारा 'श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्याय में से प्रथम छः अध्यायों में कर्मयोग का ज्ञान दिया गया है, क्योंकि अर्जुन कर्म न करने के लिए अपने ज्ञान का व्यवहारिक प्रयोग कर रहे, ऐसा ज्ञान जो व्यक्ति को अव्यवहारिक कर्म करने के लिए विवश करें, वह अधिगम नहीं बल्कि ज्ञान की सूचना मात्र है। ज्ञानयुक्त व्यवहार से ही कर्मयोग की साधना हो सकती है। ये कर्मयोग की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम ज्ञानयुक्त कर्म करना सिखया गया। उसके

¹⁰⁴ सर्वपल्लि डॉ. राधाकृष्णन, भगवद्गीता, हिन्दू पॉकेट बुक्स, जे.40 जोरबाग लेन नई दिल्ली 110003, 2012, पृ.सं, 151

पश्चात् दूसरेछः अध्यायों में भक्ति योग की शिक्षा दी गई है। बिना भक्ति के कर्मयोग का संधान नहीं हो सकता, हमारा मन जो भी करना चाहता है, उसके लिए कर्म तभी करता है जब उन चाहतों के प्रति समर्पण हो जिस लक्ष्य के प्रति हम समर्पित नहीं होते, उस कर्म कर पाना सहज नहीं होता है। कर्म का अधिगम उद्देश्यपूर्ण होता है और उद्देश्य की प्राप्ति लक्ष्य के प्रति समर्पित होने से होती है। भगवद्गीता का भक्तियोग समर्पण की संस्कृति है, समर्पण का मनोविज्ञान है। इसके पश्चात् अंत के छः अध्याय ज्ञानयोग की शिक्षा से संबंधित है। ज्ञान के बिना भक्ति विलाप करती है।

श्रीमद्भागवद महापुराण में भक्ति के दो पुत्रों का 'ज्ञान और वैराग्य' का वर्णन है। ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति ही आह्लाद कारण बनती है। ज्ञान और वैराग्य की मूर्छा में से कर्म भी विषाद के ही कारण दुखी रहता है। अविद्या के कारण ही अर्जुन विषादग्रस्त होकर कर्तव्य कर्म नहीं करने का विचार करने लगा, सकाम कर्म सुख-दुख का निर्माण करता है। युद्ध में मृत्यु सहज स्वाभाविक है, परन्तु अपने प्रियजनों की मृत्यु पर विचार करने से शोक और अपने शत्रुओं की मृत्यु पर विचार करने से हर्ष की अनुभूति होती है। वास्तव में सुख-दुख का कारण मित्र और शत्रु है, जिससे से प्रेरित होकर व्यक्ति हर्ष और विषाद की अनुभूति करता है। मित्रों के प्रति भय विषाद का कारण है, और ऐसी भावना से युक्त मनः स्थिति में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को 'कर्मयोग' की शिक्षा दे रहे हैं। अनासक्त भाव से अपना कर्तव्य कर्म करना ही 'कर्मयोग' है।

आसक्ति के कारण कर्म बंधन बन जाता है। अपने तथा अपनों में आसक्ति होने के कारण ही अर्जुन युद्ध कर्म के परिणाम पर विचार करने से किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है। ऐसे में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि- 'हे अर्जुन कर्म करने में तेरा अधिकार है, परन्तु कर्मफल पर तेरा अधिकार नहीं है। तुम्हारा उद्देश्य कर्म का फल कभी नहीं होना चाहिए और न ही वर्मन करने के प्रति संकल्प होना चाहिए'।¹⁰⁵

¹⁰⁵ श्रीमद्भगवद्गीता 2/47

निष्काम कर्म का मूल सिद्धांत यही है कि फल की इच्छा से मुक्त होकर अपने कर्तव्य कर्म का निर्वाह करना चाहिए। अर्जुन के विषाद का कारण फल की इच्छा ही है। अपने शत्रु का विनाश तो अर्जुन चाहता है, पर मित्रों को खोना नहीं चाहता संसार में समस्त दुखों का कारण कामनाओं का होना है। इच्छाओं के अभाव में सुख-दुख दोनों का हो जाता है। जीवन में विषादको दूर करने का एकमात्र उपाय निष्काम कर्मयोग है। पुण्य- पाप और पाप-पुण्य मिश्रित कर्म करने वाले लोग सकाम कर्म करते हैं। निष्काम कर्म से युक्त कर्मयोगी भी योगी की भांति कर्म करता है। योगी अशुक्ल और कर्म करता है, इसलिए अर्जुन को कृष्ण योग में स्थित होकर सभी प्रकार की आसक्ति का परित्याग कर, सफलता और असफलता में समत्व भाव के साथ कर्म करने का उपदेश देते हैं, क्योंकि 'समत्वं योग उच्यते'।¹⁰⁶ समत्वभाव के साथ कर्म करने पर मन कर्म के परिणामों के प्रति उदासीन हो जाता है और शांतिपूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वाह करने में सहायक होता है। जो लोग फल की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म करते हैं, वह दया के पात्र हैं क्योंकि सकाम कर्म बुद्धियोग से किए गए कर्म की अपेक्षा निम्न कोटी का है। जो व्यक्ति समत्व बुद्धि में स्थित होकर अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों को छोड़कर निष्काम कर्म करता है, वही कर्म करने में कुशल है। कर्म करने की कुशलता को ही योग कहते हैं।¹⁰⁷

अनासक्ति योग के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं - मैं संसार को बनता हूँ उसका पालन और संहार करता हूँ, फिर भी मुझे किसी भी प्रकार का कोई कर्म-बन्धन या कर्म-लेप प्राप्त नहीं होता है क्योंकि मैं अपने आपको निष्क्रिय मानता हूँ कर्त्ता होने पर भी कोई अहंकार नहीं करता और किये हुए कर्मों के फल की लेशमात्र भी इच्छा नहीं करता ¹⁰⁸

¹⁰⁶ श्रीमद्भगवद्गीता 2/48

¹⁰⁷ श्रीमद्भगवद्गीता 2/50

¹⁰⁸ श्रीमद्भगवद्गीता 4/14

3.1.1 अध्याय विभाजन

सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता का वर्णन कुल अट्ठारह अध्यायों में किया गया है, जो निम्नलिखित हैं।

अध्याय एक - कुरुक्षेत्र के युद्ध स्थल का सैन्य निरीक्षण।

अध्याय दो - गीता का सार

अध्याय तीन - कर्मयोग

अध्याय चार - दिव्य ज्ञान

अध्याय पाँच - कर्मयोग कृष्ण भावना भावित कर्म

अध्याय छः - ध्यान योग

अध्याय सात - भगवद्ज्ञान

अध्याय आठ - भगवत्प्राप्ति

अध्याय नौ - परमगुह्य ज्ञान

अध्याय दस - श्री भगवान का ऐश्वर्य

अध्याय ग्यारह - विराट रूप

अध्याय बारह - भक्तियोग

अध्याय तेरह - प्रकृति, पुरुष तथा चेतना

अध्याय चौदह - प्रकृति के तीन गुण

अध्याय पन्द्रह - पुरुषोत्तम योग

अध्याय सोलह - दैवी तथा सरी स्वभाव

अध्याय सत्रह - श्रद्धा के विभाग

अध्याय अट्ठारह - संन्यास की सिद्धि

उपरोक्त अट्ठारह अध्यायों में वर्णित गीता का आदर सर्वत्र है। यह किसी मजहब या सम्प्रदाय का साहित्य नहीं है, क्योंकि सम्प्रदाय किसी न किसी रुढ़ि से जकड़े हैं। भारत में प्रगट हुई गीता विश्व मानवता एवं विश्व मनीषा की धरोहर है। गीता आध्यात्मिक देश भारत की आध्यात्मिक धरोहर है। अतः इसे राष्ट्रीय शास्त्र का मान देकर ऊँच-नीच, भेदभाव तथा कलह परम्परा से पीड़ित विश्व की सम्पूर्ण जनता को शान्ति देने का प्रयास होना चाहिये।¹⁰⁹

3.1.2 श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा की अवधारणा

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का एक अंश है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण शिक्षक और अर्जुन शिष्य के रूप में है श्री कृष्ण अर्जुन को ज्ञान, कर्म और भक्ति की शिक्षा देते हैं। शिक्षा की दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता एक अमूल्य निधि है, क्योंकि इसमें शिक्षा के प्रचलित सिद्धांतों का संग्रह मिलता है। शिक्षा की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं – निवृत्ति मार्गीय शिक्षा एवं प्रवृत्ति मार्गीय शिक्षा जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं की दृष्टि से प्रवृत्ति मार्गीय शिक्षा महत्वपूर्ण है। सांसारिक बन्धनों से मुक्ति को निवृत्ति मार्गीय शिक्षा कहते हैं। तथा सांसारिक क्रियाकलापों में संलग्न रहकर जीवन के उच्च ध्येय को प्राप्त करने का मार्ग प्रवृत्ति मार्गीय शिक्षा है श्रीमद्भगवद्गीता में प्रवृत्ति मार्ग की विशेष रूप से स्थापना की गई है। शिक्षा देने के लिए रण क्षेत्र में विजयाकांक्षी होकर प्रवृत्ति मार्ग का अवलम्बन किया गया है।¹¹⁰ राष्ट्र की संस्कृति और जीवन शैली को सुदृढ़ बनाने के लिए गीता में निहित शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। तर्कविद्या, जीवन प्रबंधन, नैतिक शिक्षा, पुरुषार्थ, यज्ञ, तप, दान, एवं धर्म स्थापना इत्यादि के माध्यम से व्यक्ति जीवन में कठिन से कठिन समस्या का निवारण सरलता से कर सकता है। मनुष्य के कर्तव्य, आचरण एवं व्यक्तित्व विकास से संबन्धित शैक्षिक सूत्रों की बहुलता इस ग्रन्थ को अनुपम बनाती है।

शिक्षा शब्द “शिक्ष” धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ – सीखना, सिखाना एवं अनुकरण करना है। सभी जीव स्वभाव से कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं। अतः व्यापक

¹⁰⁹पाठक प्रो. रमेश प्रसाद, श्रीमद्भगवद्गीता का शिक्षा दर्शन, ज्ञान भारतीय पब्लिकेशन शक्तिनगर दिल्ली, 2019 पृ.स.6-7

¹¹⁰शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ लक्ष्मीलाल के० ओड़ 2029, पृ. सं. 128

अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है जिसके द्वारा जीवन के प्रत्येक अनुभवों में वृद्धि होती रहती है। गीता के अनुसार शिक्षा वह है, जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित ब्रह्म अथवा परमात्मा की अनुभूति करवाने में सहायक होती है। आत्मा की अनुभूति शिक्षा के द्वारा ही की जा सकती है। जिनके ज्ञानचक्षु खुल गये हों वो ही इस अंतरात्मा के दर्शन कर सकता है।¹¹¹ बिना ज्ञान के परमात्मा का दर्शन नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति का स्वधर्म, स्वभाव, गुण और कर्म का करणीय एवं अकरणीय का विवेक करना ही शिक्षा है। गीता के अनुसार ऐसा कह सकते हैं कि वास्तविक शिक्षा वह है जो हमें इस योग्य बनाती है कि हम सब प्राणियों में ईश्वर को देखने का सामर्थ्य उत्पन्न कर सकें। गीता दर्शन में युद्ध के समय जब अर्जुन भ्रमित हो रहे थे तब श्री कृष्ण ने अपना ब्रह्म स्वरूप दिखाया था जिसमें सबका वास था। अर्जुन को यह अनुभव कराया कि किसी प्राणी की आत्मा नहीं मरती है, क्योंकि उसका वास ब्रह्म में सन्निहित होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा व्यक्ति के अन्दर अन्तर्निहित क्षमताओं, शक्तियों तथा व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रक्रिया है। शिक्षा सतत् चलने वाली प्रक्रिया है, जो जन्म से लेकर मृत्यु उपरांत तक चलती रहती है। व्यक्ति के अन्दर ज्ञान, आचरण तकनीकी दक्षता आदि विधाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया शिक्षा है। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति के समग्र विकास के लिए आवश्यक है।

आचार्य शंकर के अनुसार योग उस व्यक्ति के द्वारा होता है, जो अपने मन को भगवान में लगाकर अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा हो। सफलता और असफलता में मन को समान बनाए रखने का नाम ही योग है।¹¹²

भगवद्गीताके अठारह अध्याय तीन भागों में विभक्त हैं और प्रत्येक विभाग में छः अध्याय हैं। यदि ध्यानसे देखा जाय तो यह स्पष्ट दिखायी देगा कि प्रत्येक छः अध्यायों में एक नवीन उपदेश है। पहले छः अध्यायों में भगवान् श्रीकृष्णने प्रायः पाँच प्रकार की साधनाप्रणालीका वर्णन किया है, जो उपर्युक्त योग – साधनाके एक न एक अङ्गसे मेल खाता है। अगले छः अध्यायों में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने उपदेशका मूल

¹¹¹ श्रीमद्भगवद् गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, अध्याय 15 /श्लोक 10

¹¹² गोयंका हरिकृष्णदास, शंकरभाष्य श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2073, पृ.स.60-61

अथवा भगवद्गीताका हृदय खोलकर रख दिया है और अपने शिष्यको 'दिव्यदृष्टि' प्रदान की है। अन्त के छः अध्यायोंमें भगवान् श्रीकृष्णने कुछ विशिष्ट और दुरुह सिद्धान्तोंकी मीमांसा की है, जिन्हें समझना योग को पूर्णतः व्यवहार में लानेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। कुछ और विस्तार से देखें तो दूसरे अध्याय में सांख्ययोगकी प्रणाली का विशद वर्णन है। इसका सम्बन्ध सीधे 'ज्ञानयोग'से है।

3.2 ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्ति योग की शिक्षा

ज्ञानयोग की शिक्षा

ज्ञानयोग का उपदेश भगवद्गीता के दूसरे अध्याय और छठे अध्याय में किया गया है। ज्ञानियों को परम पवित्र माना गया है और इसे सभी मार्ग में श्रेष्ठ माना गया है। जिस प्रकार से अग्नि सभी चीजों को जला देती है, उसी प्रकार से ज्ञान मनुष्य के सभी पापों को नष्ट कर देता है और ज्ञान के द्वारा मनुष्य के सारे दुखों का अंत हो जाता है। ज्ञान प्राप्त कर लेने से मनुष्य का अज्ञान और भ्रम दूर हो जाता है।¹¹³ वस्तुतः मनुष्य का सारा दुख और बंधन का मूल कारण अज्ञानता है, जिसके कारण मनुष्य माया और मोह के जाल में फंस जाता है। अज्ञानता के कारण वह क्रोध, लोभ, मोह और मनोविकारों का शिकार हो जाता है। अज्ञानतावश मनुष्य सत्य को नहीं पहचान पाता और सत्य के पीछे पड़ा रहता है उसे स्थाई और अस्थायी वस्तुओं का बोध नहीं रहता है।

रजोगुण के संपर्क में आने से काम वासना उत्पन्न होती है, उसके बाद काम और वासना की अतृप्ति क्रोध का रूप धारण कर लेती है। इसे ही पाप के रूप में संसार का सर्वभक्षी शत्रु समझो।¹¹⁴ जैसे- अग्नि धूँ से ढकी होने पर ढक जाती है। जैसे- दर्पण मैला होने से ढक जाता है। जैसे- गर्भ आवरण झिल्ली से ढक जाता है, वैसे ही यह संसार भर का ज्ञान साधन उस काम से ढक जाता है।¹¹⁵ इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष का ज्ञान भी अतृप्त कामना रूपी नित्य शत्रु से आच्छादित रहता है जो कभी

¹¹³ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥4.37॥गीता

¹¹⁴ काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥गीता 3.37॥

¹¹⁵ धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥गीता 3.38॥

संतुष्ट नहीं रहता है और अग्नि के जाल में फसरहता है।¹¹⁶ भगवद्गीता में कहा गया है कि इन्द्रिय, मन और बुद्धि अर्थात् विवेक ये तीन काम के अधिष्ठाता हैं ये तीन मति भ्रष्ट करते हैं।¹¹⁷

श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में ज्ञान व ज्ञान के महत्त्व को प्रदर्शित किया गया है, इसी अध्याय के आरंभ में भगवान श्री कृष्ण अवतारों के सिद्धान्त का कथन करते हैं 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्' ॥¹¹⁸ तथा संसार के नियम पक्ष को बताते हुए कर्म और यज्ञ के बीच तादात्म्य स्थापित करते हैं, किंतु यह भी कहते हैं कि 'हे अर्जुन! भौतिक पदार्थों द्वारा किये जाने यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ अधिक अच्छा है, क्योंकि निरपवाद रूप से सब कर्म ज्ञान में जाकर समाप्त हो जाते हैं'।¹¹⁹ उस सर्वोच्च ज्ञान को सविनय आदर द्वारा, प्रश्नोत्तर द्वारा और सेवा द्वारा प्राप्त करें। तत्त्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश देंगे।¹²⁰

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥गीता 3./42- 43॥

अर्थात्- इन्द्रिया 'स्थूल शरीर' से श्रेष्ठ हैं और इन्द्रियां से उत्तम 'मन' से, मन से श्रेष्ठ 'बुद्धि' और 'आत्मा' बुद्धि से भी श्रेष्ठ है। आत्मा को लौकिक बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर अपनी इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर संयम रखो और आत्मज्ञान द्वारा कामरूपी दुर्जेय शत्रु का दमन करो॥

भगवद्गीता ज्ञानयोग के द्वारा मनुष्य को मोक्ष प्रदान करने की शिक्षा देती है। भगवद्गीता का उपदेश ही गहरे 'भ्रम और मोह' में पड़े हुए अर्जुन को उसे 'भ्रम और मोह' से छुटकारा पाने के लिए किया गया है। अर्जुन जीवन के उसे मुकाम पर पहुंच गया है। जहां मनुष्य की बुद्धि काम करना बंद कर देती है। बुद्धि, सत्य और असत्य में कोई निर्णय नहीं कर पाती है और जीवन की जटिलताओं के आगे वह पंगु हो जाती

¹¹⁶ आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥गीता 3.39॥

¹¹⁷ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते॥ गीता 3.40॥

¹¹⁸ गीता 4/7

¹¹⁹ गीता 4/33

¹²⁰ गीता 4/34

है। प्रायः मनुष्य के जीवन में इस प्रकार की परिस्थितियां पैदा होती हैं। जब वह कुछ भी निर्णय कर पाने में अपने आपको समर्थ पता है। वस्तुतः भगवद्गीता में अर्जुन पूरी तरह मनुष्य जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि अर्जुन की समस्याएं मनुष्य जाति की समस्या हैं और इसीलिए भगवद्गीता का उपदेश सिर्फ अर्जुन के लिए नहीं बल्कि संपूर्ण मानव जाति के लिए किया गया है। भगवद्गीता मनुष्य को भ्रम और मोह की स्थिति से उबारकर उसे 'मोक्ष और आनंद' की अवस्था प्रदान करती है। प्रायः हम सभी जीवन के उसे मुकाम पर पहुंचे हैं, जहां बुद्धि हमारा साथ छोड़ देती है। जीवन के बहुत गहरी समस्याओं का समाधान बुद्धि के पास नहीं है। मनुष्य की समस्याएं बौद्धिक भी नहीं हैं। अतः उन्हें बुद्धि सुलझाया नहीं जा सकता है। मनुष्य की मूल समस्या आध्यात्मिक है और उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। बुद्धि तो सिर्फ हमारे दैनिक जीवन की ऊपरी समस्याओं में ही उलझी होती है और अपने स्तर पर उन्हें को सुलझाने में व्यस्त रहती है।

भगवद्गीता जब ज्ञानियों की बात करती है, तो उसे आध्यात्मिक ज्ञान ही समझा जाना चाहिए। समस्त ज्ञानेश्वर का ज्ञान है और जब यह ज्ञान मनुष्य को प्राप्त हो जाता है तो उसके सारे बंधन समाप्त हो जाते हैं और तब मनुष्य उसे दुख तिरोहित हो जाता है और सिर्फ जीवन में आनंद होता है, जब वह ज्ञान मनुष्य को प्राप्त हो जाता है, तो सारे अंधकार समाप्त हो जाते हैं, मनुष्य अपनी चेतना में लौट आता है। विश्वास की सच्चाई तो वह जान लेता है। तब वह ईश्वर की अनुकंपा का अधिकारी हो जाता है। ऐसे मनुष्य को भगवद्गीता में 'स्थितप्रज्ञ' संज्ञा दी जाती है। स्थितप्रज्ञ सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर सिर्फ ईश्वर के ध्यान में मग्न हो जाता है।

भगवद्गीता के आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा मनुष्य की बुद्धि को आध्यात्मिक स्तर तक पहुंचाने की बात कहते हैं। इस संबंध में डॉक्टर राधाकृष्णन ने कहा है कि 'भगवद्गीता में जो योग प्रणाली को अंगीकार किया है, वह मानसिक शिक्षक के साधन के रूप में ही स्वीकार किया है। योग साधना हमें ऐसी निर्देश देती है, जिसके द्वारा हम अपने को अपने परिवर्तनशील व्यक्तित्व से ऊपर उठकर असाधारण प्रवृत्ति में ला सकते हैं'।

कर्मयोग की शिक्षा

कर्मयोग भगवद्गीता का एक महत्वपूर्ण योग है। कोई भी व्यक्ति इस कर्मयोग को अपनाकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। भगवद्गीता निष्काम भाव से 'कर्म' करने की सलाह देती है। कर्म करना मनुष्य के लिए आवश्यक है। भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि इस संसार में एक क्षण बिना कर्म किये कोई नहीं रह सकता है। प्रकृति के गुणों द्वारा विवश होकर प्रत्येक व्यक्ति को कर्म करना ही पड़ता है, कर्म किये बिना जीवन नहीं चल सकता है।¹²¹ हमें कोई ना कोई कर्म करना ही है, किंतु हमें यह देख लेना आवश्यक है कि हमारा आचरण धर्म का हित संपादन करने वाला हो, जिसका परिणाम आध्यात्मिक शांति और संतोष की प्राप्ति है। कर्म मार्ग आचरण का वह मार्ग है जिसके द्वारा सेवा के लिए उत्सुक व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है। भगवद्गीता में के अनुसार कर्म ही के द्वारा हमारा समाज संसार के साथ संबंध कायम होता है मनुष्य से यह अपेक्षा की जाती है उसका कर्म नैतिक हो। संपूर्ण विश्व में केवल मनुष्य को ही नैतिक प्राणी कहा जा सकता है, विश्व के अन्य प्राणियों की नैतिक पात्रता नहीं है। क्योंकि गीता में दैवी सम्प्रदा और असुरी सम्प्रदा की चर्चा 16वें अध्याय में मिलती है मनुष्य दैवीय प्राणी है इसमें सात्विक मनोवृत्ति होती है

भगवद्गीता में कर्मयोग को निष्काम कर्म की संज्ञा दी जाती है। भगवद्गीता कहती है कि हमें अपने कामनाओं की दृष्टि के लिए कर्म नहीं करना चाहिए। हमें निष्काम भाव से, कामना रहित भाव से, कर्म करना चाहिए। सारे कर्मों को ईश्वर को आदेश मानकर करना चाहिए, कर्मों के पीछे अपनी इच्छा आत्मकांक्षी को नहीं आने देना चाहिए। कर्म के फल पर भी हमें ध्यान नहीं देना चाहिए। कर्मों का फल देने वाला तो ईश्वर ही है, परन्तु मनुष्य के सभी कर्मों का फल देता है।¹²² मनुष्य तो केवल कर्म ही कर सकता है। अगर मनुष्य शक्ति रहित होकर कर्म करता है। तो उसका परिणाम अलग होता है, वह कर्म मनुष्य का मोक्ष मार्ग बन जाता है। कामना, ममता और संताप-रहित समस्त कर्मों

¹²¹ न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

¹²² कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥

की इच्छा रहित होकर ईश्वर को समर्पित करके कर्म करना चाहिए।¹²³ लेकिन अगर मनुष्य अपनी इच्छा पूर्ति के लिए वासनाओं की पुष्टि के लिए अथवा इंद्रिय भोग के लिए कर्म करता है। तो वह कर्म बंधन में डाल देता है, इसीलिए भगवद्गीता निष्काम कर्म का उपदेश देता है।

1. **कर्म का महत्व** - भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के कर्मयोग द्वारा यह सिखाया है कि 'कर्म करना आवश्यक है। व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, चाहे परिणाम सुखद हो या दुःखद'।

"तस्मादसक्तः सततं कार्यम कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः ॥ (गीता 3/19)

आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। भगवद्गीता इस बात पर जोर देती है कि परिणाम की चिन्ता न करते हुए सच्चे मन से कर्म करते रहना चाहिए अतः कर्मयोग वास्तव में तभी पूर्ण होता है जब फल और आसक्ति दोनों का ही त्याग हो जाता है तब व्यक्ति स्थिर हो जाता है अर्थात् स्थितप्रज्ञ हो जाता है

- **धर्म का पालन** - कर्मयोग में व्यक्ति को अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करने पर जोर दिया गया है। यह सिखाता है कि सही कार्य करना और नैतिकता का पालन करना जीवन का अभिन्न हिस्सा है। अपने धर्म का पालन चाहे उसमें दोष हो अन्य के धर्म का पालन करने से बेहतर है अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारी है। जबकि अन्य के धर्म का पालन भय उत्पन्न करता है।
- **मानसिक संतुलन** - सफलता प्राप्ति के लिए मानसिक संतुलन एवं शांति की अत्यंत आवश्यक है इसी को मानसिक स्वास्थ्य कहा जा सकता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए सकारात्मक सोच आवश्यक है जिसे अपनी क्षमता पर पूरा भरोसा होता है, तथा जो मानसिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ होता है। वह व्यक्ति

¹²³मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ गीता 3.30॥

अपने प्रतिपक्षी को बोलने का पूरा अवसर देता है, बीच में टोका- टाकी नहीं करता है। उसकी पूरी बात सुनता है और उसे पूरे तर्क-वितर्क को सुनता है। तत्पश्चात् अपना पक्ष रखना है, भगवद्गीता में हमें यह भी देखने को मिलता है कि दोनों सेनाओं के मध्य खड़े अर्जुन ने अवलोकन किया तथा चारों ओर अपने प्रियजनों को ही देखकर मोहग्रस्त हो गए और बोल बोलना प्रारंभ किया ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ गीता 28॥

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ गीता 46॥

इस प्रकार अर्जुन के बोलने जाने तक श्री कृष्णा उनके बीच में रोककर कोई बात नहीं करते उनकी पूरी बात सुनते हैं। उसके बाद वह बोलते हैं कि मानसिक संतुलन के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति सफलता में अत्यधिक प्रसन्नता के कारण तथा असफलता में अत्यधिक दुख के कारण निष्क्रिय बन जाता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौः।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ (गीता 38)

कर्म के फल स्वरूप प्राप्त अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में सुख-दुख नहीं होना चाहिए, हर परिस्थिति में कर्तव्य कर्म का ही ध्यान रखना चाहिए, फल की चिंता नहीं करनी चाहिए ।

हमारा ध्यान केवल फल की ओर रहेगा तो उसी अनुपात में हमारा ध्यान कार्य पर कम रहेगा ऐसी स्थिति में प्राप्त फल आशा के अनुरूप नहीं होगा। नेतृत्व के लिए मानसिक संतुलन आवश्यक है। दुख से घबरा जाने वाला व्यक्ति नहीं कर सकता इसी प्रकार सुख से आकर्षित होकर व्यक्ति उसी में मगन रहने वाला व्यक्ति नेतृत्व नहीं कर सकता।

भक्ति योग की शिक्षा

भक्ति का अर्थ है 'भक्त का ईश्वर से प्रेम का संबंध' है। भक्ति में प्रेम और श्रद्धा दोनों सम्मिलित होते हैं। भगवद्गीता में भक्ति मार्ग को 'भक्तियोग' भी कहा जाता

है। भगवद्गीता में भक्ति मार्ग को बहुत अधिक महत्व दिया गया है, भक्ति मार्ग की शिक्षा देना ही भगवद्गीता का सरल मंतव्य है। भक्ति में व्यक्ति को परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण होता है, समर्पित भक्ति में व्यक्ति परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पित होता है। भक्ति योग का सार आत्मा और परमात्मा के बीच प्रेमपूर्ण संबंध की स्थापना है। इसे भगवद्गीता में निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया जा सकता है:

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥गीता 9.2॥

यह ज्ञान राजविद्या (विद्याओं का राजा) और राजगुह्य (सब गुह्यों अर्थात् रहस्यों का राजा) एवं पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष ज्ञानवाला और धर्मयुक्त है, तथा करने में सरल और अव्यय है॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥गीता 12.12॥

यदि तुम यह अभ्यास नहीं कर सकते तो ज्ञान के अनुशीलन में लग जाओ लेकिन ज्ञान से श्रेष्ठ है कर्मफलो का परित्याग क्योंकि ऐसे त्याग से मनुष्य को मनःशांति प्राप्त हो सकती है

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥12.17॥

जो न कभी हर्षित होता न शोक करता है, जो न पछताता है, न इच्छा करता है तथा जो शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की वस्तुओं का परित्याग कर देता है ऐसा भक्त मुझे अत्यंत प्रिय। जो मित्र तथा शत्रु के समान है, जो मन और अपमान शीत और गर्मी, सुख तथा दुख, यश और अपयश के समभाव रखता है, जो संतुष्ट रहता है। जो ज्ञान में दृढ़ है, और जो भक्ति में सलंग्न है एवं जो इस भक्ति के अमर पथ का अनुसरण करते हैं। और जो मुझे ही अपना चरम लक्ष्य बनाकर श्रद्धा सहित पूर्ण रूपेण संलग्न रहते हैं वे भक्त मुझे अत्यंत प्रिय हैं। भक्ति के गुण ही ऐसी आदर्श स्थिति किसी अन्य

दर्शन में नहीं मिलती भक्त दूषित संगति से सदैव मुक्त रहता है, और गीता में कहीं भी भक्त या स्थितप्रज्ञ या गुणातीत आदि गुणों में चमत्कार का कोई स्थान नहीं है, इसीलिए गीता की शिक्षा को स्मरण कर साधको को इन व्यर्थ के चमत्कारों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।

3.3 ध्यान, आत्म-नियंत्रण और मानसिक स्थिरता की शिक्षा

ध्यान मन की गहन विश्रान्ति है। ध्यान से मन स्वच्छ, निर्मल एवं पवित्र हो जाता है। ध्यान एक विशुद्ध मानसिक प्रक्रिया है। जिसके अनुसार किसी वस्तु की स्थापना अपने मनःक्षेत्र में की जाती है। ध्यान की गहराईयों में उतर कर साधक अपना सर्वांगपूर्ण कायाकल्प कर सकता है। ध्यान से मानसिक विश्राम रूपी लाभ तत्क्षण एवं तत्काल प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान के सूक्ष्म एवं विशेष साधनाओं के द्वारा शारीरिक परिवर्तन भी किया जा सकता है। पतंजलि महाभाष्य की उक्ति के अनुसार ध्यान को एकाग्रता से जोड़ा जाता है। उपनिषदों में ध्यान की चर्चा करते हुए कहा गया है- 'ध्यानं निर्विषयम् मनः' अर्थात् मन का विषयों से विरत हो जाना ध्यान है।¹²⁴

परिभाषा

आचार्य श्रीराम शर्मा (1986) के अनुसार 'ध्यान वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके अनुसार किसी वस्तु की मनःक्षेत्र में स्थापना की जाती है'।¹²⁵

स्वामीविवेकानंद के अनुसार 'जब मन को देह के भीतर या बाहर किसी स्थान में कुछ समय तक स्थिर रखने के निमित्त प्रशिक्षित किया जाता है, तब उसको उस दिशा में अविच्छिन्न दिशा से प्रवाहित होने की शक्ति प्राप्त होती है। इस अवस्था का नाम ध्यान है'।

¹²⁴ विवेकानंद स्वामी , ध्यान योग, स्वामी रामकृष्ण मठ, कलकत्ता पृ.23

¹²⁵ आचार्य श्रीराम शर्मा (1986), ध्यान धारणा से दिव्य क्षमताओं का आकर्षण, अखण्ड ज्योति, अंक 4 अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा पृ.21

3.3.1 ध्यान के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में स्थान आहार का वर्णन किया गया है

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥ गीता 6.19॥

अर्थात्- स्पन्दनरहित वायुके स्थानमें स्थित दीपककी लौ चेष्टारहित हो जाती है, योग का अभ्यास करते हुए वश में किए हुए चित्तवाले योगीके चित्तकी वैसी ही उपमा कही गयी है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ गीता 6.10॥

भोग बुद्धि से संग्रह न करनेवाला, इच्छारहित और अन्तःकरण तथा शरीर को वश में रखने वाला योगी अकेला एकान्त में स्थित होकर मन को निरन्तर परमात्मा में लगाये। ध्यान के लिए स्थान कैसा होना चाहिए -

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ गीता 6.11॥

शुद्ध भूमि पर, जिस पर क्रमशः कुश, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न अत्यन्त ऊँचा है और न अत्यन्त नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापना करके ध्यान की स्थिति कैसे होगी कैसे बैठना है -

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥गीता 6.12॥

आसनपर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ गीता 6.13॥

काया, शिर और ग्रीवा को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओं को न देखकर केवल अपनी नासिका के अग्रभाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठे ।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ गीता 6.14॥

प्रशान्त अन्तः करण, निर्भय और ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित होकर, मन को संयमित करके चित्त को मुझ में लगावे कि मैंने किस प्रकार प्रभु भक्ति से शांति तथा निर्भयता प्राप्त की है और मैं जिस प्रकार कर्तव्य पालन में तत्पर हूँ। वैसे ही मेरा अनुकरण करने में तत्पर हो जाये। उसके बाद आहार कैसा होना चाहिए-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ गीता 6.17॥

उस पुरुष के लिए योग दुःखनाशक होता है, जो युक्त आहार और विहार करने वाला है, यथायोग्य चेष्टा करने वाला है और परिमित शयन और जागरण करने वाला है। विद्यार्थी को समय से खाना और समय में सोना और जगाना चाहिए जिससे उसके स्वाध्याय में कोई परेशानी ना हो

1) आत्म-नियंत्रण

भगवद्गीता में आत्म-नियंत्रण का विस्तार से वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने इसे आत्मा के ज्ञान और जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का आधार बताया है। आत्म-नियंत्रण का अर्थ है 'अपनी इंद्रियों, मन और बुद्धि को वश में रखना और उन्हें अपने उच्चतम उद्देश्य, आत्मा और परमात्मा की प्राप्ति की ओर केंद्रित करना'। भगवद्गीता के विभिन्न अध्यायों में आत्म-नियंत्रण के पहलुओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसे और विस्तार से समझते हैं।

1. इंद्रियों पर विजय

इंद्रियां मनुष्य को बाहरी संसार से जोड़ती हैं और इच्छाओं व वासनाओं को जन्म देती हैं। यदि इंद्रियों को नियंत्रित नहीं किया गया तो व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटक सकता है।

ध्यानात् विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥(गीता 2.63-63)

विषयों का चिन्तन करने वाले मनुष्यकी उन विषयों में आसक्ति पैदा हो जाती है। आसक्ति से कामना पैदा होती है। कामना से क्रोध पैदा होता है। क्रोध होने पर सम्मोह (मूढ़भाव) हो जाता है। सम्मोह से स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है। इंद्रियों को नियंत्रित करने का उपाय यह है कि व्यक्ति अपने मन और बुद्धि को स्थिर रखे।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।¹²⁶

जिस तरह कछुआ अपने अङ्गों को सब ओर से समेट लेता है, ऐसे ही जिस कालमें यह कर्मयोगी इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे समेट लेता (हटा लेता) है, तब उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाती है।

2. काम, क्रोध और लोभ से मुक्ति

भगवद्गीता में काम (इच्छा), क्रोध (गुस्सा) और लोभ (लालच) को आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु बताया गया है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।¹²⁷

काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं। इन्हें त्यागकर व्यक्ति आत्म-नियंत्रण प्राप्त कर सकता है।

¹²⁶ गीता 2.58

¹²⁷ गीता 16.21

3. ज्ञान का महत्व

ज्ञान आत्म-नियंत्रण का मूल आधार है। ज्ञान के विषय में गीता में कहा गया है कि -

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।¹²⁸

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है। ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति यह समझ सकता है कि 'आत्मा अमर है और शारीरिक व मानसिक अनुभव केवल क्षणिक हैं'।

4. समत्व योग

आत्म-नियंत्रण के लिए व्यक्ति को सफलता-असफलता, सुख-दुख, हानि-लाभ आदि में समान भाव रखना चाहिए। गीता में कहा गया है कि -

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥¹²⁹

मित्र और शत्रु, मान और अपमान में समान भाव रखना चाहिए जिसके अंतःकरण की वृत्तियाँ सर्वथा शांत हैं जो सर्दी-गर्मी, सुख-दुख आदि द्वंदों में सम और आसक्ति रहित हैं।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।¹³⁰

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता और सुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में स्पृहा नहीं होती तथा जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित हो गया है, वह मननशील मनुष्य समत्व बुद्धि कहा जाता है। यह समभाव व्यक्ति को मानसिक शांति और आत्म-नियंत्रण प्रदान करता है।

¹²⁸ गीता 4.38

¹²⁹ गीता 12.18

¹³⁰ गीता 2.56

5. अभ्यास

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ गीता 6.34॥

क्योंकि हे कृष्ण मन बड़ा ही चञ्चल, प्रमथन स्वभाव वाला बड़ा दृढ़ और बलवान है इसलिए उसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भांति अत्यंत दुष्कर मानता है इसलिए मन को वश में रखना चाहिए शिष्य को मन को, मन को वश में करने के लिए भगवद्गीता में भगवान में अभ्यास और वैराग्य जी बात की है।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ गीता 6.35॥

भगवान् बोले हे महाबाहो! यह मन बड़ा चञ्चल है और इसका निग्रह करना भी बड़ा कठिन है, यह तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु हे कुन्ती नन्दन! अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसका निग्रह किया जाता है। अब अभ्यास क्या है इसको जानेंगे-

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥¹³¹

यदि मेरा अनुकरण करने के लिये मेरे चरित्र में अपने मन को स्थिर रूप एकाग्र नहीं कर सकते तो मेरे चरित्र के एक-एक अंग का धीरे-धीरे अभ्यास करके मेरे तक पहुँचने का यत्न कर।

भगवान के नाम और गुणों का श्रवण, कीर्तन, मनन तथा श्वास के द्वारा जप और भगवत्प्राप्ति विषयक के लिये बारम्बार करने का नाम अभ्यास है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ ¹³²

¹³¹गीता 12.9

¹³²गीता 6.36

परंतु जिसका अन्तःकरण वश में किया हुआ नहीं है, उस मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा अर्थात्- जिसका अन्तःकरण अभ्यास और वैराग्य द्वारा संयत किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा योग प्राप्त किया जाना कठिन है, अर्थात् उसको योग कठिनतासे प्राप्त हो सकता है, यह मेरा निश्चय है। परंतु जो स्वाधीन मनवाला है, जिसका मन अभ्यास वैराग्य द्वारा वश में किया हुआ है और जो फिर भी बारंबारयत्न करता ही जाता है, ऐसे पुरुषद्वारा पूर्वोक्त उपायोंसे यह योग प्राप्त किया जा सकता है।

3.3.2 मानसिक स्थिरता की शिक्षा -

भागवत भगवद्गीता में मानसिक स्थिरता का विषय गहराई से समझाया गया है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह सिखाया कि मानसिक स्थिरता (मन की शांति और संतुलन) न केवल आत्मा के ज्ञान से प्राप्त होती है, बल्कि सही दृष्टिकोण, कर्म और ध्यान के अभ्यास से भी संभव है। इसे विस्तार से समझते हैं।

मानसिक स्थिरता का मतलब है 'मन का विकारों से मुक्त होना' और किसी भी परिस्थिति में संतुलित रहना। यह स्थिरता हमें जीवन के सुख-दुख, लाभ-हानि, और सफलता-असफलता में समान भाव बनाए रखने में मदद करती है। भगवद्गीता के अनुसार 'मानसिक स्थिरता आत्मा के साथ जुड़े रहने और सांसारिक मोह माया से ऊपर उठने से आती है'। (श्लोक जोड़ो)

1. समता का भाव-

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥ गीता 2.14

हे अर्जुन! सर्दी-गर्मी, सुख-दुख आदि इंद्रियों के संपर्क से उत्पन्न होते हैं। ये क्षणिक और अस्थायी हैं, इसलिए तू इन्हें सहन कर। इस श्लोक के अनुसार जीवन की हर परिस्थिति अस्थायी है। सुख और दुख दोनों ही समय के साथ चले जाते हैं। यदि हम इन पर अत्यधिक ध्यान देंगे, तो हमारा मन अशांत हो जाएगा। मानसिक स्थिरता के लिए इन्हें सहन करने की क्षमता (तितिक्षा) विकसित करनी होगी।

2. आत्म-नियंत्रण-

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥ ¹³³

जिसने अपने मन को जीत लिया है, उसके लिए आत्मा मित्र के समान है। लेकिन जिसने मन को वश में नहीं किया, उसके लिए आत्मा शत्रु के समान है। यह श्लोक आत्म-नियंत्रण की महत्ता पर जोर देता है। यदि व्यक्ति अपने मन को नियंत्रित कर लेता है, तो वह जीवन में हर परिस्थिति में स्थिर रह सकता है। ध्यान (मेडिटेशन) और योग के माध्यम से मन की चंचलता को कम किया जा सकता है।

3 . आसक्ति का त्याग

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ ¹³⁴

सब प्राणियों में द्वेष भाव से रहित, सबका मित्र (प्रेमी) और दयालु, ममता रहित, अहंकार रहित, सुख-दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीर को वश में किये हुए, दृढ़ निश्चय वाला मेरे में अर्पित मन बुद्धिवाला, जो मेरा भक्त है, वह मेरे को प्रिय है। भगवद्गीता के अनुसार आत्मा के प्रति समर्पित व्यक्ति आसक्ति और अहंकार से ऊपर उठ सकता है और सच्ची मानसिक स्थिरता प्राप्त कर सकता है।

4. सच्चा ज्ञान और स्थिरता-

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ ¹³⁵

¹³³ गीता 6.6

¹³⁴ गीता 12.13-14

श्रद्धालु, इंद्रियों को वश में रखने वाला और प्रयासशील व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद वह शीघ्र ही परम शांति को प्राप्त कर लेता है। भगवद्गीता में सच्चे ज्ञान को मानसिक स्थिरता का सबसे बड़ा आधार बताया गया है। आत्मा और परमात्मा के ज्ञान से व्यक्ति का मन स्थिर और शांत हो जाता है।

अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपानं तथाऽपरे।

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ ¹³⁶

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥ ¹³⁷

दूसरे कितने ही प्राणायाम के परायण हुए योगी लोग अपान में प्राण का पूरक कर के, प्राण और अपान की गति रोककर फिर प्राण में अपान का हवन करते हैं, तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणों का प्राणों में हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

पदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ ¹³⁸

उस- (तत्त्वज्ञान-) को (तत्त्वदर्शी ज्ञानी महापुरुषों के पास जाकर) समझ । उनको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी महापुरुष तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे।

3.4 भगवद्गीता में नैतिकता और जीवन के उद्देश्य की शिक्षा

श्रीमद्भगवद्गीता में नैतिकता और जीवन के उद्देश्य को अत्यंत गहनता और व्यापक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। भगवद्गीता न केवल धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि यह एक दार्शनिक ग्रंथ भी है जो जीवन की गूढ़ समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता

¹³⁵ गीता 4.39

¹³⁶ गीता 4.29

¹³⁷ गीता 4.30

¹³⁸ गीता 4.34

है। भगवद्गीता के उपदेशों में नैतिकता और जीवन के उद्देश्य के विभिन्न पहलुओं को समझाया गया है। इन दोनों विषयों को विस्तार से समझते हैं:-

नैतिकता

भगवद्गीता में नैतिकता का अर्थ है धर्म (कर्तव्य) और अधर्म (विपथ) के बीच अंतर को समझना और हर परिस्थिति में उचित (धर्मानुकूल) आचरण करना। नैतिकता का आधार स्वार्थरहित कर्म, सत्य, अहिंसा, और इंद्रियों का नियंत्रण है।

1. **धर्म का पालन-** भगवद्गीता के अनुसार, नैतिकता का मुख्य आधार 'स्वधर्म' का पालन है। 'स्वधर्म' के प्रति कर्तव्य व्यक्ति को अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन निष्ठा से करना चाहिए, चाहे उसमें कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न आएँ। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'। (गीता - 3.35) स्वधर्म का पालन करते हुए मरना भी उत्तम है, परधर्म का पालन भयावह है।
2. **व्यक्तित्व विकास -** गीता में प्रतिपादित नैतिकता, धर्म की स्थापना, कर्मयोग, कर्तव्यपालन इत्यादि सिद्धान्त मनुष्य के व्यक्तित्व-विकास के लिए अत्यन्त उपादेय हैं। इसमें चोरी, व्याभिचार, झूठ, छल-कपट, हिंसा, अभक्ष्य-भोजन और प्रमाद आदि नीच कर्मों का सर्वथा त्याग करने का उपदेश दिया गया है।¹³⁹ यदि मनुष्य इसको ग्रहण करले तो उसका व्यक्तित्व पवित्र एवं आदर्श बन सकता है क्योंकि आज की युवा पीढ़ी से नैतिक मूल्य नदारद हो रहे हैं। सत्य और अहिंसा का आचरण युवा वर्ग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्टतया कहा है कि कर्मयोगी समत्वबुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।¹⁴⁰

मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन तीन गुणों के प्रभाव स्वरूप मनुष्य में ममत्त्व, आसक्ति और अभिमान

¹³⁹ श्रीमद्भगवद्गीता 3/8

¹⁴⁰ श्रीमद्भगवद्गीता 5/11

उत्पन्न होता है। इनमें सत्त्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकाररहित है।¹⁴¹ जब सत्त्वगुण बढ़ता है तो मनुष्य के मन की चंचलता अपने आप नष्ट हो जाती है। इससे उसके चित्त और इन्द्रियों में दुख और आलस्य का अभाव होकर चेतनाशक्ति की वृद्धि हो जाती है। रजोगुण से कामना और आसक्ति की उत्पत्ति होती है।¹⁴² तमोगुण का कार्य है- अन्तः करण में ज्ञानशक्ति का अभाव करके उसमें मोह उत्पन्न कर देना। इससे मनुष्य में प्रमाद और निद्रा बढ़ती है।¹⁴³ इस प्रकार सत्त्वगुणसुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में लगाता है।¹⁴⁴

इस प्रकार त्रिगुण का यह सिद्धान्त व्यक्तित्व निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है। इसका अध्ययन मनुष्य में सात्त्विक प्रकृति बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आज व्याभिचार, भ्रष्टाचार, छल-कपट इत्यादि अनेक वैश्विक समस्याएँ हैं। यदि गीता के इस सिद्धान्त को जीवन में अपनाया जाए तो रजोगुण और तमोगुण से युक्त जीवनशैली में परिवर्तन सम्भव है। विशेषकर बाल्यावस्था से बालकों में यह उपयोगी हो सकता है की उसके अन्दर सात्त्विक गुण का विकास हो। कहा भी गया है- 'सत्त्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों में जाते हैं, रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।'¹⁴⁵

3. सामाजिक समता- गीता का प्रधानतम उद्घोष है- समत्व। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों ही मार्गों में साधनरूप में समता की आवश्यकता बताई गई है। यथा "सिद्धि या सिद्धियों समो भूत्वा समत्यं योग उच्यते।" अर्थात् सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को करना ही समत्व योग कहलाता है। मनुष्य के व्यवहार में समता का समावेश करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इस समता तत्त्व को सुगमता से समझाने के लिए भगवान

¹⁴¹ श्रीमद्भगवद्गीता 4/6

¹⁴² श्रीमद्भगवद्गीता 4/7

¹⁴³ श्रीमद्भगवद्गीता 4/8

¹⁴⁴ श्रीमद्भगवद्गीता 4/9

¹⁴⁵ श्रीमद्भगवद्गीता 4/18

श्रीकृष्ण ने गीता में अनेक प्रकारसे सम्पूर्ण प्राणी, क्रिया, भाव और पदार्थों में समता की व्याख्या की है-

मनुष्यों में समता

‘सुहृन्मित्र्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु । साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥’

अर्थात् सुदृढ़ मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं और पापियों में भी समानभाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस श्लोक में स्पष्टतया 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष परिलक्षित होता है। आज के वैश्विक परिदृश्य में इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। आतंकवाद जैसी भयंकर समस्या से निपटने के लिए गीता के इस समता

4. निष्पक्षता और समानता - भगवद्गीता में नैतिकता का एक और पहलू यह है कि व्यक्ति को प्रत्येक प्राणी के साथ समानता का भाव रखना चाहिए। 'विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।' (भगवद्गीता 5.18) अर्थात्- ज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल में समान दृष्टि रखता है।

5. इंद्रियों का संयम - भगवद्गीता नैतिकता का आधार इंद्रियों के नियंत्रण को मानती है। 'यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।' (भगवद्गीता 2.60) अर्थात्- बुद्धिमान व्यक्ति भी यदि इंद्रियों पर संयम नहीं रखता, तो वे उसे अपने मार्ग से विचलित कर सकती हैं।

नैतिकता की स्थापना गीता में पदे पदे नैतिक आचरण का संदेश प्राप्त होता है। मानसिक अवसाद और दुराचरण जैसी समस्याएँ सर्वत्र व्याप्त हैं। इसका कारण है- नैतिक मूल्यों का ह्रास। गीता के उपदेश में निहित शिक्षाओं को अपनाकर इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। श्रीकृष्ण ने गीता में उद्घोष किया है-

‘यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत’¹⁴⁶ अर्थात् जब-जब धर्म की हानि होती है तो उसकी स्थापना के लिए मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप में लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। उन्होंने गीता में निरन्तर कर्म में रत रहने की भी प्रेरणा दी है जिससे आलस्य से मुक्त हुआ जा सकता है। यहाँ पर ‘धर्म’ एवं ‘कर्म’ दोनों आचरण की शुद्धता से सम्बन्धित है। मन, वचन और कर्म की शुद्धता आचरण को पवित्र बनाती है। गीता में कर्तव्य-कर्म और अकर्तव्य-कर्म को व्यापक रूप में दर्शाया गया है। उन्होंने कहा है कि हे अर्जुन ! कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? इस प्रकार का निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिए वह कर्मतत्त्व, मैं तुम्हें भलीभाँति समझाकर कहूँगा।

आशक्ति आचरण को दूषित करती है अतः इसका विस्तारपूर्वक वर्णन भी गीता में किया गया है यथा- आशक्ति से विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना पूर्ण न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है। मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है। स्मृतिभ्रम होने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।¹⁴⁷ इसलिए मनुष्य को इन्द्रियों को वश में रखने का अभ्यास करना चाहिए। चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, हिंसा आदि कर्मों का मन, वचन और कर्म से त्याग आचरण की शुद्धता के लिए आवश्यक है।

जीवन के उद्देश्य की शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर अच्छे, विचारों का निर्माण करना है। मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रशस्त करना है। गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य गीता के अनुसार शिक्षा यह है जो प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित परमात्मा की अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध हो। आत्मानुभूति शिक्षा द्वारा ही संभव है। जिस व्यक्ति के ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं, वे ही इस अन्तरात्मा को पहचान सकते हैं, अज्ञानी मोह के बंधन में पड़ा प्राणी अन्तरात्मा का दर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकता। ‘उत्क्रमन्त स्थितज्ञापि, मुञ्जानं वा गुणान्वितम् । विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः’¹⁴⁸

¹⁴⁶ श्रीमद्भगवद्गीता 4/7

¹⁴⁷ श्रीमद्भगवद्गीता 2/63

¹⁴⁸ श्रीमद्भगवद्गीता 15/10

इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है।

- 1) **स्थित प्रज्ञ-** स्थित प्रज्ञ बुद्धिवाला आज के समय में विद्यार्थी की बुद्धि स्थिर नहीं है, बोलता कुछ है करता कुछ है। उसके विचारों में स्थिरता का अभाव देखने को मिलता है आज विद्यार्थी अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्रचित्त नहीं हो पाता है उसके मन और मस्तिष्क में अनेक प्रकार के द्वंद्व उत्पन्न होते हैं। इस विचारों को स्थिर करने के लिए श्री कृष्ण ने दूसरे अध्याय में बताया है कि स्थित प्रज्ञ का अर्थ है, जिसकी बुद्धि में कंपन ना हो स्थित, कैसे रहता है, कैसे आचरण करता है। स्थिर प्रज्ञ व्यक्ति के मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके आत्मा द्वारा आत्मा को ही संतुष्ट करता है। (श्रीमद्भगवद्गीता 2/55) व्यक्ति में दुख की प्राप्ति होने पर भी उसका मन विचलित नहीं होता है और सुख की प्राप्ति होने पर प्रसन्न नहीं होता, स्थिर प्रज्ञ व्यक्ति आसक्ति, भय और क्रोध से मुक्त होता है। (श्रीमद्भगवद्गीता 2/56) जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगों को समेट कर रखता है। उसी प्रकार मनुष्य को अपने सभी इंद्रियों को विषयों से हटाकर अपनी ओर समेट कर रखना चाहिए। ऐसे ही स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति की इंद्रिय सब प्रकार से विषयों से हटाकर स्वयं में वशीभूत हो जाती है, यही स्थित बुद्धि वह है।' (श्रीमद्भगवद्गीता 2/58-68)
- 2) **निष्काम कर्म करने की भावना जाग्रत करना** - गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'यज्ञार्थं कर्मणो यत्र लोकोय कर्म बन्धन' (श्रीमद्भगवद्गीता 2/26) यज्ञ के अतिरिक्त कार्यों में लगी बुद्धिकर्म बंधन में फंस जाती है। व्यक्ति के अंदर निष्काम भाव नहीं आ पाता है। गीता विद्यार्थी के अंदर निष्काम कर्म को विकसित करने की बात करती है। निष्काम कर्म योग का पालन करने से व्यक्ति फल के निमित्त कार्य नहीं करता है बल्कि कर्तव्य को करते हुए फल की कामना नहीं करना चाहिए, कर्म को ईश्वर में समर्पित करके करना चाहिए, जिससे व्यक्ति के अंदर हताशा निराशा आदि न आये। इसलिए श्रीकृष्ण ने कहा है कि "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" (श्रीमद्भगवद्गीता 2/47) कर्म करने में तेरा अधिकार है। फल में नहीं इसलिए कर्म के फल का हेतु मत हो

- 3) संसारिक मोह से मुक्ति - गृहस्थ जीवन में रहकर भी व्यक्ति को मोह-माया और भौतिक सुखों से ऊपर उठकर जीने की शिक्षा भगवद्गीता देती है। 'माय्येव मन आधत्स्व मायि बुद्धिं निवेशय'। (भगवद्गीता 12.8) अर्थात्-अपनी बुद्धि और मन को मुझमें स्थिर करो, और यही मुक्ति का मार्ग है।
- 4) समत्व (समानता का भाव) - जीवन का उद्देश्य प्रत्येक परिस्थिति में समभाव बनाए रखना है। 'सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ'। (गीता 2.38) अर्थात्-सुख-दुःख, हानि-लाभ, और जीत-हार में समान भाव रखने वाला व्यक्ति जीवन के उद्देश्य को समझता है।

3.5 शिक्षण विधियाँ और गुरु-शिष्य संवाद

श्रीमद्भगवद्गीता आस्तिक दर्शन की कोटि में आता है। यह महाभारत के 'भीष्मपर्व' का एक भाग है, जो अठारह अध्यायों में संस्कृत भाषा के श्लोकों के रूप में लिखित है। इसमें अर्जुन को कृष्ण द्वारा उस समय ज्ञानोपदेश दिया गया है, जब वह कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरवों की सेना का सामना करते समय मोहयुक्त होकर उनसे युद्ध करने के लिए तत्पर नहीं होता। उस समय कृष्ण उसे, उसके कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने के लिए तैयार करते हैं। इस रूप में भगवद्गीता को कृष्ण-अर्जुन संवाद के रूप में देखा जा सकता है। यह एक उच्च श्रेणी का काव्य है, जिसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति का अभूतपूर्व समन्वय दिखाई देता है। भगवद्गीता दर्शन सार्वकालिक, सार्वदेशिक व मानवमात्र के लिए कल्याणकारी है। भगवद्गीता का शिक्षा-दर्शन वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति कर शिक्षा के पुनर्निर्माण में अपना अपूर्व योगदान दे सकता है।

भगवद्गीता मौलिक रूप से एक दार्शनिक ग्रन्थ है। दर्शन का विचार केन्द्र मनुष्य होता है। दर्शन द्वारा मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को जानना और जीवन के अति उद्देश्य निश्चित करने का प्रयत्न किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मार्ग निश्चित करने का कार्य किया गया है। इन

सबके शान एवं प्रशिक्षण के लिए शिक्षा आवश्यक है। इस प्रकार भगवद्गीता दर्शन की दृष्टि से शिक्षा मनुष्य जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में मनुष्य के लौकिक जीवन की अपेक्षा उसके पारलौकिक जीवन को अधिक महत्वशाली माना गया है। भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा ऐसी हो कि इस लौकिक जीवन से सदा-सदा के लिये छुटकारा दिला दे। भगवद्गीता में इसे मोक्ष या मुक्ति प्राप्त करना कहते हैं। जगत गुरु शंकराचार्य ने भी यही बात कही है- 'सा. विद्या या विमुक्तये'¹⁴⁹ अर्थात् 'शिक्षा वही है जो मुक्ति है'।

अतः जहाँ अज्ञानता का अंधकार है, वहाँ शिक्षा मनुष्य को ज्ञान के प्रकाश की तरफ ले जाती है, जीवन की सर्वोत्तम स्थिति का बोध कराती है, जिसमें मोक्ष अथवा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। मुक्ति का अर्थ है इस भौतिक जगत की कलुषित चेतना से मुक्त होना और शुद्ध चेतना में स्थित होना। भगवद्गीता की सारी शिक्षा का मन्तव्य इसी शुद्ध चेतना को जागृत करना है।

भगवद्गीता की शिक्षा का आशय इस प्रक्रिया से है जो मनुष्य को मानव जीवन के उद्देश्य को समझाए। (आसुरी एवं दैवीय संपदा से जोड़कर लिखो)। मानव में मानवीय गुणों का समावेश शिक्षा के द्वारा भी सम्भव है। भगवद्गीता की शिक्षा यह बताती है, जो सदैव परमेश्वर का चिन्तन करता है, वह सबसे बड़ा योगी, सर्वोच्च ज्ञानी तथा महानतम् भक्त है। मनुष्य को भगवान की दिव्य प्रेमाभक्ति में पूर्णतया समर्पित होना होगा।

वास्तव में हम शरीर से नहीं, अपितु अपने मन तथा बुद्धि से कार्य करते हैं। यह मन तथा बुद्धि सदैव परमेश्वर के विचार में भग्न रहे तो स्वाभाविक है। कि इन्द्रियाँ भी उनकी सेवा में लगी रहेंगी। भगवद्गीता हमें सिखाती है कि किस प्रकार मन तथा बुद्धि को भगवान के विचार में लीन रखा जाय। ऐसी तल्लीनाता में मनुष्य भगवद् धाम को जाता है।

¹⁴⁹विष्णु पुराण 1.19.41

भगवद्गीता में शिक्षा वह पवित्र प्रक्रिया है जो ऐसे मानव का निर्माण करें, जो आध्यात्मिक हो, ज्ञानी हो, कर्तव्यनिष्ठ हो, धैर्यशील एवं इन्द्रियों को वश में करने वाला हो, योगी हो, निष्काम भाव से कर्म करे, सरल हो, अहिंसा, सत्यता, क्रोध विहीनता, त्याग, शान्ति, करुणा, लज्जा, संकल्प, क्षमा आदि दिव्य गुणों से युक्त हो। इसके विपरीत गुणों का समावेश मनुष्य के चरित्र में न हो, भगवद्गीता की शिक्षा इसके लिए अनवरत प्रयासरत है। अतः भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा वह है, जो बालक का दिव्य स्वस्थ, मानवीय तथा सर्वांगीण विकास करे तथा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करें।

3.5.1 श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा का उद्देश्य:

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भी शिक्षा का उद्देश्य है, मानव का अधिकतम कल्याण। भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा के द्वारा मानव में ऐसे गुणों, आदतों, क्षमताओं, संस्कारों का विकास हो जिससे वह जीवन में चरम उत्कर्ष पर पहुँच सके तथा अपने जीवन योग, आध्यात्म, ध्यान, तप के बल पर बन्धनों से मुक्ति को प्राप्त हो सके। भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा द्वारा व्यक्ति में वास्तविक गुणों का समावेश हो सके, जिससे व्यक्ति कर्मयोगी बने, सकाम कर्मों से मुक्त हो सके, माया, मोह, लोभ, अहंकार तथा इन्द्रिय सुख में लिप्त हो सके, एक पवित्र जीवन बिताये अपने स्वधर्म का चालन करने की क्षमता उत्पन्न हो सके। सुख-दुःख में सामना कर सके। ब्रह्मचर्य, दान, शील, आदि गुण विकसित हो सके। व्यक्ति का जीवन नियमित एवं पवित्र हो। ईश्वर की भक्ति में लीन हो सके तथा मोक्ष एवं परम पद को प्राप्त कर सके। मनुष्य के जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति है। आत्मा का नाश नहीं होता है। आत्मा एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर को धारण कर लेती है। इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये शिक्षा का यह दायित्व है कि वह मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास पर बात है।

भगवद्गीता की शिक्षा का उद्देश्य है, मनुष्य इन्द्रिय भोगों तथा भौतिक के प्रति अत्यधिक आसक्त न हो। अपने कर्म को पूरी एकता और लगन से करे, कर्म के फल सुखद हो या दुःखद उनमें विचलित न हो। व्यक्ति जय-पराजय की समस्त

आसक्ति त्याग कर समभाव से अपना कर्म करें। यही समत्व योग कहलाती है। मनुष्य इन्द्रिय तृप्ति की समस्त कामनाओं पर नियन्त्रण करें जिससे व्यक्ति स्थिर मन वाला बन सके। भगवद्गीता में स्थिर मन वाले को मुनि कहा गया है। व्यक्ति में राग द्वेष से मुक्त एवं अपनी इन्द्रियों को संयम द्वारा वश में करने की योग्यता प्राप्त कर सकें।

भगवद्गीता की शिक्षा कर उद्देश्य है व्यक्ति का चित्त शान्त हो क्योंकि बिना शान्ति के सुख हो भी कैसे सकता है। भगवद्गीता की शिक्षा निर्देशित करती है कि अपना नियत कर्म करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कोई प्राणी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। व्यक्ति को जड़ पदार्थ, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, आत्मा तथा ईश्वर के बारे में ज्ञान प्रदान कराना। प्राणायाम और योग की शिक्षा प्रदान करना। बालक में माता-पिता और गुरु के प्रति आदर एवं विश्वास का भाव उत्पन्न कराना। ईश्वर की पूजा तथा भक्ति में मनुष्य को रत करना अपने उत्तरदायित्व, जीविका का समाज सम्मत साधन के प्रयोग में सक्षम बनाना। अधर्म एवं बुराई का विरोध करने की शक्ति उत्पन्न करना। सतो, रजो, तमो गुणों तथा उसके प्रभाव के बारे में ज्ञान प्रदान करना। दैवी तथा आसुरी स्वभाव के बारे में ज्ञान प्रदान करना, काम, क्रोध, मद, लोभ से दूर रहने की शिक्षा देना ।

भगवद्गीता की शिक्षा में उचित आहार का भी समावेश है। व्यक्ति को उचित आहार ग्रहण करने का ज्ञान प्रदान करना चाहिये। व्यक्ति के गुण और कर्म में सम्बन्ध होता है। भगवद्गीता में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के गुणों का वर्णन है, जिससे यह शिक्षा मिलती है कि 'व्यक्ति में जो गुण हो उसी के अनुरूप कार्य को उसे ग्रहण करना चाहिए। दूसरे का अंधानुकरण भयावह होता है'। वाणी में संयम एवं मधुरता होनी चाहिए। मन में संतोष, सरलता, गंभीरता होनी चाहिए।

3.5.2 शिक्षण विधियां-

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान कृष्ण और अर्जुन के मध्य विलक्षण और सारगर्भित वार्ता का अद्वितीय संकलन है। भगवद्गीता के समग्र अध्ययनोपरान्त यह ज्ञात होता है कि भगवान कृष्ण एक आदर्श शिक्षक की भूमिका में हैं, और अर्जुन एक आदर्श शिष्य

की भूमिका में हैं। अर्जुन एक जिज्ञासु, मोहग्रस्त, अज्ञानी बालक की तरह प्रश्न करते हैं। उनकी समस्या का समाधान भगवान कृष्ण अपने उपदेश के द्वारा प्रदान करते हैं। भगवद्गीता में जो शिक्षण विधियाँ उपलब्ध हैं, आज इस वर्तमान समय में पूरे विश्व में उन्हीं शिक्षण विधियों को येन-केन प्रकारेण तोड़-मरोड़कर आधुनिक शिक्षा में समाहित किया गया है। क्योंकि इतिहास इस बात का साक्षी है कि 'भारत में जब शिक्षा और सभ्यता भी तो संसार के अन्य देशों में अशिक्षा और असभ्यता थी। वर्तमान समय में विकसित शिक्षण विधियाँ आज भी परम्परावादी ही हैं। विविध आयोग एवं शिक्षाविद् वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल, वैज्ञानिक युग के लिये सर्वोत्तम शिक्षा विधि के रूप में क्रियाविधि को महत्व दे रहे हैं। भगवद्गीता के कर्मयोग में क्रिया-विधि के साथ-साथ अभ्यास विधि, तर्क विधि, स्वानुभव विधि भी मिलती है। स्थान-स्थान पर भगवद्गीता में 'कर्म करो' की शिक्षा दी गयी है। वस्तुतः भगवद्गीता में वर्णित है कि जो साधक कर्तव्य कर्म की परम्परा को सुरक्षित रखने के लिये लोक संग्रह के लिये सृष्टि चक्र की परम्परा चलाने के लिये कर्तव्य कर्म का पालन करता है, तो वह अपने सभी दायित्वों से मुक्त हो जाता है। उसे उसके प्रिय वस्तु की उसे प्राप्ति हो जाती है। इसे कर्मयोग कहते हैं। व्यक्ति अपने प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिये क्रिया-विधि, स्वानुभव-विधि तथा अभ्यास-विधि का सहारा ले सकता है इसकी पुष्टि भगवद्गीता में वर्णित विचारधारा के अनुसार निम्नवत् किया जा सकता है-

- **क्रिया-विधि-**श्रीमद्भगवद्भगवद्गीता में शिक्षक की भूमिका अदा करने वाले श्रीकृष्ण ने इस बात पर बल दिया है कि 'हे अर्जुन। तू कर्मों को करता हुआ भी सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।'¹⁵⁰ अर्थात्- व्यक्ति क्रिया करके जिस कार्य को कर रहा है, उसमें प्रवीणता प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः कर्म क्रिया पर ही आधारित होता है यदि व्यक्ति क्रिया नहीं करेगा तो कर्म होगा ही नहीं, ऐसी परिस्थिति में भगवद्गीता क्रिया-विधि को शिक्षा की सर्वोत्तम विधि के रूप में मान्यता देती है।

¹⁵⁰ गीता 12/ 10

- **अभ्यास-विधि** - भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि हे धनंजय! अभ्यास योग द्वारा तू मेरी प्राप्ति की इच्छा कर।¹⁵¹ इससे स्पष्ट होता है कि भगवद्गीता ज्ञान की प्राप्ति हेतु अभ्यास-विधि का समर्थन करती है।
- **इन्द्रिय प्रशिक्षण विधि** -भगवद्गीता में वर्णित है कि 'जो मनुष्य इन्द्रियों पर नियंत्रण करके आसक्ति रहित होकर समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है वही श्रेष्ठ है, इन्द्रिय प्रशिक्षण विधि को एक अभोग अस्त्र बताती है, इसके द्वारा सभी प्रकार के कार्यों में सफलता प्राप्त की जाती है। क्रिया-विधि एवं अभ्यास-विधि एक दूसरे के पूरक के अर्थात् एफ सिक्के के दो पहलू के समान है।
- **स्व-अनुभव एवं अनुभूति की विधि** - भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में वर्णित वृत्तान्तों से स्पष्ट होता है कि 'ज्ञान की प्राप्ति में स्वानुभव का विशेष महत्व है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इतना ज्ञान दिया कि 'मैं ही (परमतत्त्व) सब कुछ हूँ' किन्तु उनके द्वारा बताये गये ज्ञान को अर्जुन आत्मसात् नहीं किया। तब श्रीकृष्ण ने उसे अपने विराट स्वरूप का दिग्दर्शन कराया। विराट स्वरूप की प्रत्यक्षानुभूति एवं अनुभव प्राप्त करने के अश्वशक्ति और मेंदिग्दर्शन कराया। विराट स्वरूप की प्रत्यक्षानुभूति एवं अनुभव प्राप्त करने के बाद ही अर्जुन ने श्रीकृष्ण द्वारा बताये गये कल्याणकारी शिक्षाओं को ग्रहण किया और कहा भी कि 'हे जनार्दन! आपके पुनः इस सौम्य मनुष्य रूप को देखकर (अनुभव एवं प्रत्याक्षानुभूति द्वारा) मैं इस समय स्थिर चित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ।'¹⁵²

भगवद्गीता के इस दृष्टांत से स्पष्ट होता है कि यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति एवं धारणा में स्वानुभव एवं प्रत्यक्षानुभूति विधि को विशेष महत्व है, भगवद्गीता अपने शिक्षण विधि में स्वानुभव एवं प्रत्यक्ष अनुभूति विधि का समर्थन करती है।

¹⁵¹ गीता 12/9

¹⁵² गीता 4/37

- **उपदेश विधि-**भगवान कृष्ण ने अपने उपदेशों के माध्यम से मौखिक रूप से सीधे अर्जुन को शिक्षित किये हैं। अतः उपदेश विधि भी भगवद्गीता में एक शिक्षण विधि के रूप में प्रयोग की गयी है जिसे अनुदेशन विधि भी कहा जाता है।
- **प्रश्नोत्तर एवं वाद-विवाद विधि** - अर्जुन भगवान कृष्ण से प्रश्न करते हैं और तर्क-वितर्क भी करते हैं। अपने शंका प्रस्तुत करते हैं और गूढ़ वार्तालाप भी करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भगवद्गीता में प्रश्नोत्तर एवं वाद-विवाद विश्व का भी प्रयोग हुआ है। गीता में इस विधि का प्रयोग कृष्ण अर्जुन संवाद सर्वत्र मिलता है प्रारंभ में युद्ध क्षेत्र में परिजनों के सम्मुख होता हुआ अर्जुन जब श्री कृष्ण से पूछता है

येषामर्थं काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।

त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ गीता 1.33॥

अर्थात् हम जिसके लिए राज्य भोग और सुखी इच्छा कर रहे हैं वही साधन और जीवन की आशा छोड़कर युद्ध में खड़े हैं अतः मैं राज्य और सुखों को नहीं चाहता इस पर श्री कृष्णा उसे समझाते हैं तर्क विधि के द्वारा

गीता में अर्जुन से कृष्ण के बीच निरंतर तर्क भीतर चला रहा तथा कृष्णा तर्क द्वारा अपने विचारों से अर्जुन को संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं इस प्रकार गीता में प्रश्न उत्तर एवं तर्क वितर्क विधि द्वारा कृष्ण अर्जुन संवाद चला रहा शंका समाधान में जिज्ञासु शिक्षक किसी भी गुण विषय पर उत्पन्न हुई अपने मां के विचारों को शंका के रूप में विषय ज्ञात गुरु के समक्ष प्रस्तुत करता है और इसकी संख्या का समाधान शिक्षक या गुरु करता है

- **श्रवण-मनन विधि** - इस विधि में मूलतः आध्यात्मिक ज्ञान को सुना जाता है। उस पर मनन, चिन्तन किया जाता है और चिन्तन के बाद जो स्वीकार करने योग्य होता है उसे स्वीकार किया जाता है। अतः भगवद्गीता में श्रवण, मनन विधि का

भी प्रयोग हुआ है। यह विधियां भक्ति योग अथवा भावना प्रधान छात्रों के लिए आवश्यक होती है गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥ गीता 9.34॥

केवल मुझे चित्र आनंद वासुदेव परमात्मा में ही अनंत प्रेम से ही नित्य निरंतर आंचल मां वाला हो और मुझ परमेश्वर को ही श्रद्धा प्रेम सहित निष्काम भाव से नाम, गुण और प्रभाव के श्रवण, कीर्तन, संगीत, स्मरण ध्यान, मनन एवं पठन द्वारा निरंतर भजने वाला हो, इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु के प्रति समर्पण भाव आवश्यक है।

- विश्व रूप दर्शन विधि (समग्रता का ज्ञान) - भगवान कृष्ण अर्जुन के संशय को दूर करने के लिए तथा उन्हें सत्य का ज्ञान कराने के लिए उन्हें अपने दिव्य रूप का दर्शन कराये हैं। जिस दिव्य रूप को देखकर अर्जुन भाव-विभोर हो जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भगवद्गीता में विश्व रूप दर्शन विधिका भी प्रयोग किया गया है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं दृष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ गीता 11.54॥

हे अर्जुन ! केवल अनन्य भक्ति द्वारा मुझे उस रूप में समझा जा सकता है जिस रूप में हैं तुम्हारे समक्ष खड़ा हूँ और इस प्रकार मेरा साक्षात् दर्शन भी किया जा सकता है। केवल इसी विधि से तुम मेरे ज्ञान के रहस्य को पा सकते हो। जो मनुष्य मेरे लिये ही सब कर्तव्य कर्म करता है, मेरे परायण है, आसक्ति रहित है और सब प्राणियों के प्रति वैर भाव से रहित है , ऐसा भक्त मुझको प्राप्त कर लेता है परमात्मा न नेत्रों से, न वाणी से न दूसरी इन्द्रियों से ही ग्रहण किया जा सकता है। तप अथवा कर्म से भी नहीं, उसे विशुद्ध अंतःकरण वाला साधक ध्यान करता हुआ ही ज्ञान को निर्मलता से देख सकता है ।

भगवद्गीता व्याख्यान, प्रवचन, कक्षा शिक्षण विधि का समर्थन करती है। वस्तुतः भगवद्गीता की शिक्षा की श्रीकृष्ण ने अर्जुन को संवाद विधि द्वारा प्रश्नोत्तर रूप में इन्हीं शिक्षण विधियों को अपनाकर ज्ञान प्रदान किया है। सम्भवतः यह मंतव्य देती है कि इन शिक्षण विधि से शिक्षा देते हुये भी बालकों को क्रिया-विधि से सीखने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। लेकिन वर्तमान व्याख्यान प्रवचन विधि में शिक्षक बालकों को रटे-रटाये तथ्यों को बता देते हैं। बालकों को उनकी जिज्ञासा के अनुकूल तथ्यों को बताने से कतराते हैं, जिससे व्याख्यान शिक्षण विधि हीनता के स्तर पर पहुंचता जा रहा है। भगवद्गीता के अनुसार व्याख्यान शिक्षण विधि का प्रयोग करते समय बालकों को जिज्ञासा के अनुकूल तथ्यों को शिक्षण देना चाहिये तथा यह प्रश्नोत्तर विधि पर केन्द्रित होना चाहिये। भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के सांतवे श्लोक के पूर्वाध में अपनी कमजोरी के कारण 'मुझे क्या करना चाहिये? और क्या नहीं करना चाहिये? इस विषय में अर्जुन का प्रश्न है फिर चौबनवें श्लोक में 'स्थितप्रज्ञ' के क्या लक्षण है ? वह कैसे बोलता है ? बैठता है ? और कैसे चलता है ? इस तरह के जिज्ञासा पूर्ण चार प्रश्न है ? श्रीकृष्ण इन प्रश्नों का उत्तर क्रमशः देते हुये कहते हैं आत्मा से आभा में ही सन्तुष्ट रहने वाला व्यक्ति स्थित प्रज्ञ कहा जाता है।¹⁵³

इस प्रकार सम्पूर्ण भगवद्गीता प्रश्न और तर्कसंगत यथार्थ उत्तर से ही परिपूरित है। भगवद्गीता के प्रश्नोत्तरी विधि या संवाद विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह भगवद्गीता के प्रश्नोत्तरी विधि या संवाद विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अर्जुन द्वारा पूछे गये एक प्रश्न का जब तक तर्कसंगत यथार्थ उत्तर नहीं मिल जाता तब तक वे दूसरा प्रश्न श्रीकृष्ण से नहीं पूछते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर लघुपदों एवं क्रमबद्ध सिद्धान्त पर देते शिक्षा के क्षेत्र में प्रश्नोत्तरी विधि का बहुत महत्व प्राचीन काल से इस विधि का प्रयोग होता है ¹⁵⁴संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि ज्ञान का आदान-प्रदान प्रश्न उत्तरीय विधि

¹⁵³ गीता 2/ 55

¹⁵⁴ उपनिषद् कालीन समाज एवं संस्कृति पृ. स. 250

उपनिषदों में जगह-जगह पर ज्ञान के बोध के लिये प्रश्नोत्तर विधि का अनुसरण करते हैं जैसे यम नचिकेता का संवाद¹⁵⁵ याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद¹⁵⁶

शिव-पार्वती का संवाद इसी विधि का अनुसरण करते हैं। शिव-संहिता, रुद्र-संहिता, और पुराणों में प्रश्नोत्तर विधि का प्रयोग बहुत दिखायी देता है। संस्कृत साहित्य का विवेचन मुख्य रूप से प्रश्नोत्तर विधि का अनुसार ही था। यूनानी दार्शनिक सुकरात महोदय सभी विधियों में प्रश्नोत्तर विधि का ही श्रेष्ठ विधि स्वीकार करते हैं। भगवान कृष्ण के द्वारा भगवद्गीता का उपदेश प्रश्नोत्तर विधि के अनुसार किया गया है।

इस श्लोक में भगवान अर्जुन को ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बतलाते हुये उसका फल बतलाते हैं उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर, समझ, उनको भली भांति दण्डवत प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म तत्त्व को भली भांति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे¹⁵⁷

जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोह को, नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन जिस ज्ञान के द्वारा तू सम्पूर्ण भूतों को निःशेषभाव से पहले अपने में और पीछे मुझे सच्चिदानन्द परमात्मा में देखेगा।¹⁵⁸ तत्त्व ज्ञानी प्रश्नोत्तर विधि के अनुसार ज्ञान का उपदेश देते हैं। प्रश्नोत्तर विधि प्राचीन समय के वैशिष्ट्य को सिद्ध करते हैं। अनेकों विधियों में एक की स्वतन्त्रता से ही प्रश्नोपनिषद् की रचना हुई। जिसमें कबन्धी, भार्गव, कौसल्या, गार्ग्य, सत्यकाम सुकेश आदि ऋषि, महर्षि पिप्लाद गुरु आदि अपने स्थान पर जाकर ज्ञान के विषयों के विविध प्रश्नों को उपस्थित करते हैं। गुरु सभी प्रश्नों का समाधान करते हैं। अतः इसी उपनिषद् की संज्ञा प्रश्नोपनिषद् होती है। यहाँ उपनिषदों में प्रश्नों की उत्पत्ति को मानने वाले समस्या समाधान के लिये छोटे-छोटे प्रश्न भी किया करते हैं।

¹⁵⁵ कठ० उप०, पृ० 70 से 141 हरि०गो०गी० प्रेस

¹⁵⁶ बृह. उप., पृ. दै. ब. फ. ब.

¹⁵⁷ गीता 4/34

¹⁵⁸ गीता 4/35

भगवद्गीता मूल रूप से आध्यात्मिक एवं धार्मिक ग्रन्थ है। भगवद्गीता में अपरा (भौतिक) और दूसरा परा (आध्यात्मिक) की चर्चा है। अपरा पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से भाषा, व्याकरण, आयुर्विज्ञान, सैनिक शिक्षा, कृषि, पशुपालन एवं अन्य व्यवसायों को स्थान दिया जाता था। शारीरिक क्रियाओं में योग और व्यायाम को स्थान दिया जाता था। परा (आध्यात्मिक) पाठ्यचर्या में मुख्य रूप से वेदों, धर्मशास्त्रों, उपनिषदों, ऋचाओं, नीतिशास्त्र के अध्ययन, इन्द्रिय निग्रह, धर्मानुकूल आचरण, ईश्वर भक्ति, संध्या वन्दन, यज्ञ आदि क्रियाओं को स्थान भगवद्गीता में दिया गया है। चूँकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति और आत्मानुभूति था इसलिए आध्यात्मिक क्रियाएँ सबके लिए अनिवार्य थी। मूलतः भगवद्गीता में नैतिक शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा, आत्मा तथा परमेश्वर आदि विषयों का भी समावेश है। इसमें दैनिक दिनचर्या, सात्विक भोजन, सात्विक कर्म, सात्विक वाणी तथा आचरण का भी समावेश है। ब्रह्मचर्य, अनुशासन, इन्द्रियों पर नियंत्रण एवं मानव स्वभाव जैसे बिन्दुओं की भी विषद चर्चा भगवद्गीता में की गयी है। कर्म की महत्ता, निष्काम कर्मयोग, भक्ति, प्रेम, सिद्धि तथा ब्रह्माण्ड के विषय में भी विचार प्रस्तुत किये गये हैं। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भगवद्गीता के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक, धार्मिक और नैतिक तत्त्वों का समावेश अधिक है। परन्तु साथ-साथ कुछ अन्य भौतिक ज्ञान का भी समावेश है।

3.5.3 शिक्षक – जिस प्रकार विद्यार्थी से श्रद्धा, विनय, समर्पण आदि की अपेक्षा की गयी है, उसी प्रकार गीता शिक्षक से भी कुछ अपेक्षाएँ रखती हैं। यदि शिक्षक में ज्ञान के प्रति श्रद्धा नहीं होगी तो वह सही शिक्षा नहीं दे सकेगा। दूसरी बात गीता आत्मीयता की बात करती है कि सामने वाले शिष्य पर शिक्षक के हृदय में आत्मीयता होनी चाहिए। बिना आत्मीयता के गीता के अनुसार शिक्षण नहीं हो सकता। आज हमारे शैक्षिक जगत में ज्ञान के प्रति श्रद्धा एवं शिष्यों के प्रति आत्मीयता कम होती जा रही है। इससे छात्र एवं शिक्षकों के बीच दूरियाँ बढ़ रही हैं। हमें इन बिन्दुओं पर गम्भीर होने की आवश्यकता है। शिक्षक छात्रों के लिए एक आदर्श व्यक्ति है इसलिए शिक्षक का यह दायित्व बनता है कि वह अपने शिष्यों में ऐसा आत्म विश्वास उत्पन्न करे कि वह जो लक्ष्य रखे उसे अपने पुरुषार्थ के बल पर प्राप्त कर सकेंगे गीता के अनुसार शिष्य में

आत्म- श्रद्धा निश्चित रूप से जगानी चाहिए, तभी वह विपरीत परिस्थिति में सफलता अर्जित कर सके। आज इस प्रकार की परिस्थिति निर्मित हुयी है कि छात्र अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। आज वह समस्या ग्रस्त दिखाई देता हैं। जब शिक्षक गीता के अनुसार विद्यार्थियों को शिक्षा देगा तो विद्यार्थी में किसी भी प्रकार की समस्या नहीं होगी। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि -सर्वधर्मा परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वां सर्वदेष्टुं मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥ अर्थात् अर्जुन सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं तुझको सभी पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम चिन्ता मत कर।¹⁵⁹ आज के शिक्षक को श्रीकृष्ण को अपना आदर्श मानना चाहिए। श्रीकृष्ण जैसा समर्थ शिक्षक होना चाहिए जो अपने शिष्य के प्रति कुछ भी कर सकने की वृत्ति जाग्रत हो सके। गीता के अनुसार एक कुशल शिक्षक छात्र को आशावादी बनाता है। निराशा को निकाल फेंकता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि- 'हे अर्जुन ! मेरा शिष्य कभी नष्ट नहीं होता'।¹⁶⁰ दूसरे शब्दों में- मेरा शिष्य कभी असफल नहीं हो सकता । इन बातों में कितना बड़ा विश्वास है छात्र के लिए, छात्र के जीवन के लिए। और यह बात छात्र के व्यक्तित्व का निर्माण करने में कितनी सहायक हो सकती है।

गीता के अनुसार शिक्षक में शिष्य के प्रति एक ममत्व होना चाहिए। उसे अपने शिष्य के लिए समर्पित रहना चाहिए और जो शिष्य के लिए कल्याणकारी है। वैसा उपदेश करना चाहिए। शिक्षक को छात्र से कोई भी बात छिपानी नहीं चाहिए। उसे अपने विश्वास में लेना चाहिए, उसे अपने प्रभावी व्यक्तित्व से आकर्षित करना चाहिए। शिक्षक को छात्र की भावनाओं का आदर करना चाहिए, उसे निरपेक्ष प्यार एवं दुलार देना चाहिए। उसमें निहित आत्म तत्व का आदर करना चाहिए, यह गीता का स्पष्ट कहना है। कभी भी छात्र के विचारों का अनादर नहीं करना चाहिए। उसके विचारों का स्वागत करते हुए उसे उचित निर्णय देना चाहिए। श्रीकृष्ण ने गीता का सम्पूर्ण ज्ञान देने के बाद कहते हैं कि इति ते ज्ञान मारख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया। विमृशैयदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे

¹⁵⁹ श्रीमद्भगवद्गीता 18/66

¹⁶⁰ श्रीमद्भगवद्गीता 6 /40

कह दिया। अब तू इस रहस्य युक्त ज्ञान को पूर्णतया भलीभाँति विचार कर, जैसा चाहता है वैसा ही करो। शिक्षक को छात्रों में एक समझ विकसित करनी चाहिए जिससे वह अपनी भूमिका समझसके कि तुम यदि एक आदर्श शिष्य बनोगे तो तुम्हें सफलता मिलेगी, तुम यदि एक आदर्श पुत्र बनोगे तो तुम पर पिता प्रसन्न होगा। यानी शिष्य में एक अपने कर्तव्य कर्मों के प्रति निष्ठा एवं समझदारी खड़ी करनी चाहिए।¹⁶¹ गीता के अनुसार शिक्षक को चिंतनशील एवं विचारवान तथा सदाचारी होना चाहिए तभी वह अपने शिष्यों का सही मार्गदर्शन कर सकता है।

भगवान कृष्ण एक आदर्श शिक्षक की भूमिका में है। शिक्षक को महापुरुष की संज्ञा दी जाती है। शिक्षक अपने व्यवहार, अपने ज्ञान, अपनी वाणी के, द्वारा जिस प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करता है। वहीं शिष्य के लिए अनुकरणीय होता है। इसका उल्लेख भगवद्गीता में किया गया है।

यद्यदाचरित्र श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।¹⁶²

शिक्षक के आचरण का छात्र ही नहीं सारा समाज अनुकरण करता है। श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ मित्रवत् व्यवहार करते हैं। भगवद्गीता में किसी प्रकार के दण्ड का प्रावधान नहीं किया गया है। शिक्षक को बालकेन्द्रित होना चाहिए। जैसे- भगवान श्रीकृष्ण अपने शिष्य अर्जुन की मनोदशा के अनुसार ही उपदेशित करके उन्हें सन्तुष्ट करते हैं और बार-बार यह कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम मुझे प्रिय हो और तुम मेरे मित्र भी हो। शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक की भी होती है। जो शिष्य के भटकाव को सही दिशा प्रदान करती है। शिष्य को उसके कर्तव्य का बोध कराता है। धर्म और अधर्म के मध्य भेद को बताता है। शिष्य का उत्साहवर्द्धन करता है। उसके संदेह और भ्रम को दूर करता है और शिष्य के विश्वास पर खरा उत्तरता है। उसे मुक्ति एवं मोक्ष का मार्ग दिखाता है। ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास दिलाता है और अन्ततः शिष्य के व्यवहार में

¹⁶¹ श्रीमद्भगवद्गीता 18/63

¹⁶² स्वामी प्रभुपाद श्रीमद्भगवद्गीता ए.सी.भक्तिवेदान्त (1980) पृ.स.155

वांछनीय परिवर्तन कर ले जाता है। भगवद्गीता के अनुसार शिक्षक में उपरोक्त गुण होने चाहिए और ये सभी गुण भगवान कृष्ण के दिव्य चरित्र में समाहित थे।

3.5.4 शिक्षार्थी और शिष्य सम्बन्ध

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन एक आदर्श शिष्य की भूमिका में है। और भगवान श्री कृष्ण जी सर्वश्रेष्ठ गुरु के रूप में है। उनके सम्पूर्ण चरित्र के अध्ययन के उपरान्त एक आदर्श शिष्य अथवा छात्र में गुण होने चाहिए - शिष्य को ज्ञान के प्रति जिज्ञासु और गुरु के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास होना चाहिए, शिष्य को संयमी और अनुशासित होना चाहिए। अपने गुरु के प्रति किसी भी प्रकार की शंका नहीं होनी चाहिए। अपनी क्षमतानुसार गुरु से तर्क-वितर्क एवं वाद-विवाद करता चाहिए। शिष्य के अन्दर तथ्यों को श्रवण, मनन करने और आत्मसात करने की योग्यता होनी चाहिए। गीता में श्री अर्जुन भगवान

श्रीकृष्ण से कहते हैं-

‘एतन्मे संशयं कृष्ण हेतुमर्हस्यशेषतः ।

त्वदन्यः संशयास्य छेताहयुयपघते ॥’ (गीता 6/39)

अर्थात् हे कृष्ण मेरे इस संशय को पूरी तरह से मिटाने में समर्थ और कोई नहीं है केवल आप ही मेरे संशय को दूर कर सकते हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि सही शिक्षक के चुनाव से ही शिक्षार्थी सही दिशा में जा सकता सकता हैं। जिस प्रकार शिष्य रूपी अर्जुन अपने पद से भ्रमित था तथा एक महान गुरु ने उसे नया रास्ता दिखाया वैसे ही सुयोग्य शिक्षक भी अपने शिष्य को सही रास्ता दिखा सकता है शिष्य को अनुशासित और गुरु के प्रति समर्पित का भाव होना चाहिए, उनके सुझावों पर अमल करना चाहिए। शिष्य में वह क्षमता होनी चाहिए कि वह अपनी वाक् पटुता के आधार पर गुरु से सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सके। शिष्य को गुरु के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। और गुरु को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानना चाहिए। गीता में सही शिष्य की पहचान के लिए

श्री कृष्ण ने कहा है-

इदम् ते नातपस्काय ना भगताय कदाचन ।

न चाशुश्रूषवे वाच्य न च मां योऽस्यसूयति ॥ (गीता 18/67)

तुझे यह गीता का रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में न तो परहित मनुष्य से कहना चाहिए, ना भक्ति रहित मनुष्य से और ना बिना सुनने की इच्छा रखने वाले से कहना चाहिए। तथा जो मनुष्य मुझ में दोष दृष्टि रखता है उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिए। इस प्रकार हर शिक्षार्थी हर ज्ञान प्राप्ति की योग्यता नहीं रखता है इसलिए शिक्षक तभी अपने ज्ञान का सदुपयोग करता है जब उसे सुयोग्य शिष्य मिलेगा

इस सम्बन्ध में वह उचित शिष्य के बारे में गीता के चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं-

तद्धिधि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यान्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ (गीता 4/34)

अर्थात् उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उन को भलीभांति दंडवत प्रणाम करने से उनकी सेवा व सत्कार करने से और कपट का त्याग करके सरलता पूर्वक प्रश्न पूछने से वे परमतत्त्व को भलीभांति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्व ज्ञान का उपदेश करेंगे । इस प्रकार कह सकते हैं कि शिष्य की गुरु के पास जाकर दंडवत प्रणाम करके कपट का त्याग करके सरलता पूर्वक प्रश्न करना चाहिए तभी गुरु आपको तत्त्व ज्ञान का उपदेश देंगे।

श्रीमद्भगवद्गीता में अनुशासन का बड़ा ही व्यापक महत्त्व है। अनुशासन बड़ा ही व्यापक शब्द है, जैसे वाणी में अनुशासन, आचरण में अनुशासन, विचार में अनुशासन, कर्म में अनुशासन, ज्ञान में अनुशासन, व्यवहार में अनुशासन एवं अभ्यास में अनुशासन। बिना अनुशासन के मानवीय मूल्यों की रक्षा नहीं हो सकती। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपने कर्तव्य का बोध करा करके उन्हें कर्तव्य में अनुशासन रखने की शिक्षा दी। कृष्ण और अर्जुन भगवान और भक्त की भूमिका में भी अनुशासन है। एक विद्यार्थी में चारित्रिक, नैतिक एवं वैचारिक अनुशासन का होना अत्यन्त आवश्यक है।

भगवद्गीता में छात्र को शरीर और आत्मा दोनों को समान महत्व देने का उपदेश दिया गया है। इसमें बताया गया है कि ईश्वर के दो अंश हैं- "सत्" और "असत्"। "सत्" अंश से आत्मा की उत्पत्ति होती है, जबकि "असत्" अंश से वह शरीर बनता है जो आत्मा को धारण करता है। इसी "असत्" अंश से भौतिक सृष्टि की रचना भी होती है, जो सभी प्राणियों के कर्मों का आधार है। इसलिए, बालक का शरीर और उसकी आत्मा दोनों ही दिव्य और पवित्र माने गए हैं।

एक सच्चा अध्यापक, जो ईश्वर में विश्वास करता है, अपने प्रत्येक छात्र में ईश्वर का अंश देखता है। उसके लिए छात्र केवल पढ़ाई के साधन नहीं, बल्कि उपासना के पात्र हैं। वह मानता है कि छात्रों का शरीर कर्मों से बना है, इसलिए उनकी शारीरिक, इंद्रिय संबंधी और मानसिक क्षमताएँ भिन्न हो सकती हैं। फिर भी, उनके भीतर स्थित आत्मा एक समान है। यह आत्मा सभी छात्रों को ईश्वर से जोड़ती है।

अध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने छात्रों के अन्दर छिपे हुए इस देवत्व (क्षमता) को पहचाने और उसे उसके सामने उजागर करने का प्रयास करें। प्रत्येक छात्र के अंदर अनेक गुण होते हैं (ईश्वर का एक छुपा हुआ अवतार) है। शिक्षा का कार्य इस छुपी हुई (दिव्यता) गुण सामने या प्रकाश में लाना है। हर बच्चे में कोई न कोई गुण अवश्य होता है (देवत्व का बीज मौजूद होता है), लेकिन वह प्रच्छन्न (छिपा हुआ) होता है, दिखाई नहीं देता। अध्यापक का लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से उस गुण को निखारना (दिव्यता) व प्रकट करना और उसे साकार रूप में सामने लाना है।

गीता के अनुसार प्रत्येक बालक अपनी प्रकृति (जन्मजात प्राकृतिक शक्तियों) के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है, अतः शिक्षक के लिये बालक की प्रकृति को समझना व जानना आवश्यक है। गीता में कहा गया है-

सदृशंचेष्टतेस्वस्याःप्रकृतेननिवानपि ।

प्रकृतिंयान्तिभूतानि, निग्रहःकिंकराषयति॥¹⁶³

¹⁶³ श्रीमद्भगवद्गीता 3/33

ज्ञानी व्यक्ति भी अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करता है। सभी प्राणी अपनी जन्मजात संस्कारों के अनुसार व्यवहार करते हैं। संयम अथवा इन्द्रिय-निग्रह भी प्रकृति की इस प्रबल शक्ति को रोक नहीं सकता।

भगवद्गीता में इस प्रकृति को "स्वधर्म" अथवा "सहज-कर्म" कहा गया है, तथा यह अपेक्षा की गई है कि बालक को शिक्षा उसके "स्वधर्म" अर्थात् उसकी जन्मजात शक्तियों के अनुसार आयोजित होनी चाहिये।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।

सर्वारम्भाहिदोषेण धूमेनाग्निरिवावृतः ॥¹⁶⁴

अर्थात् सहज कर्म के दोष युक्त होने पर भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि सभी आरम्भ (शिक्षा का आरम्भ) किसी न किसी दोष से व्याप्त होता ही है, जिस प्रकार आग के साथ धुँआ रहता है। शिक्षा के फलस्वरूप शनैः शनैः दोषों का निवारण किया जाता है, तथा निघूर्म अग्नि के समान ज्ञान रूपी तेज से शिक्षार्थी को तेजोमय बनाया जा सकता है। व्यक्ति अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा ही सिद्धि (सफलता) प्राप्त करता है। इस प्रकार गीता में बालक की सहजरुचि के आधार पर शिक्षा को आयोजित करने का आग्रह बार-बार किया गया।

उपनिषदों के समान ही गीता का भी यह पूढ़ मत है कि केवल सत्पात्र को ही ज्ञान प्रवाह किया जाना चाहिए। शिक्षा प्राप्ति प्रत्येक का अधिकार है, परन्तु शिक्षक का भी यह व्यवसायिक अधिकार है कि वह सत्पात्र को ही ज्ञान प्रदान करें, एवं जो ज्ञान प्राप्त करने के लिए उचित पात्र नहीं है, उसे शिष्य रूप में स्वीकार न करें। गीता में सत्पात्र के निम्नांकित लक्षण बताये गये हैं-

'शिष्यत्व ग्रहण करने के लिये छात्र में संयम तथा तप होना चाहिये; उसमें शिक्षक के लिये श्रद्धा होनी चाहिये; सुनने के लिये उसमें तत्परता होनी चाहिये। शिष्य ऐसा नहीं होना चाहिये, जो अध्यापक के दोषों को देखता रहे'।¹⁶⁵

¹⁶⁴ श्रीमद्भगवद्गीता 18/48

‘प्रत्येक व्यक्ति हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं रखता, परन्तु शिक्षा प्राप्त करना उसका अधिकार है गीता में कहा गया है कि उसे उसकी योग्यता और क्षमा के अनुसार शिक्षा देनी चाहिये। अज्ञानी की भर्त्सना उसे अपने कर्तव्य से विमुख करना शिक्षक के लिये उचित नहीं है’।¹⁶⁶

3.5.5 शिक्षक से सम्बन्धित अपेक्षाएँ:-

गीता शिक्षक से कुछ अपेक्षाएँ रखती है। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह अपने शिष्यों में आत्मविश्वास पैदा करे कि वे सफलता प्राप्त करते हैं। बालक अनेक प्रकार की चिन्ताओं से व्यथित रहता है। शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह उसे चिन्ताओं से मुक्त करके सफलता का विश्वास दिलाये। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं -

सर्वधर्मान्परिभ्रज्य मामकं शरणं ब्रज ।

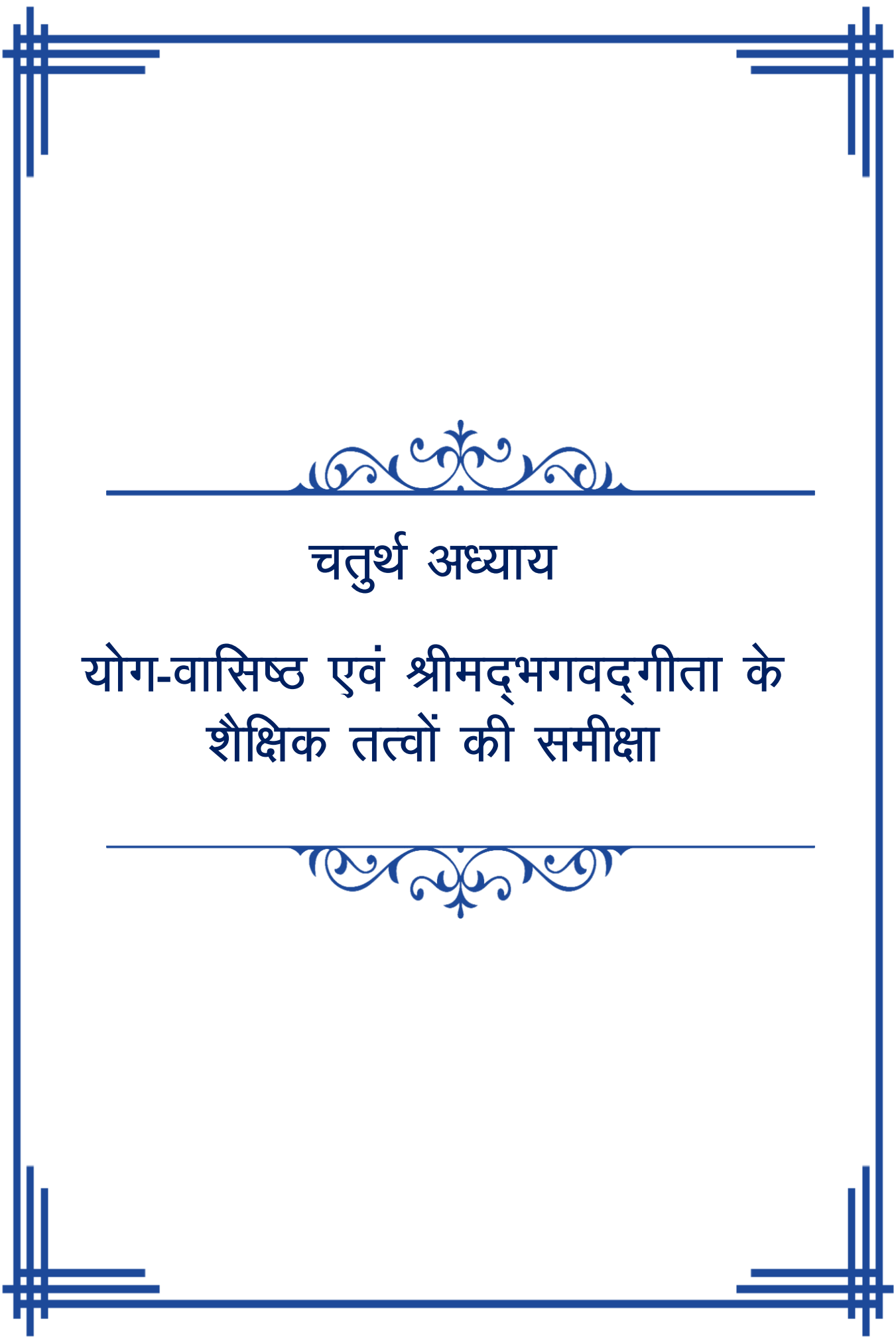
अहं त्वां सर्वपापेश्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अर्थात् अर्जुन सभी धर्मों (अन्य वृथा बातों) को छोड़कर मेरी शरण में आ। मैं तुझे सभी पापों से मुक्त करूंगा। चिन्ता मत कर।

शिक्षक विद्यार्थी में एक आशावाव उत्पन्न करता है। कृष्ण कहते हैं - "हे अर्जुन ! मेरा शिष्य कभी नष्ट नहीं होता।" (कौन्तेय, प्रतिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति) दूसरे शब्दों में "मेरा शिष्य कभी असफल होता ही नहीं है।" कितना बड़ा विश्वास है यह छात्र के लिये! और उसके व्यक्तित्व के निर्माण में यह विश्वास कितना आवश्यक है। अध्यापक के मन में अपने छात्र के प्रति अनन्त प्रेम होना चाहिए। अपने छात्र के हित की बात उसके मन में होनी चाहिए छात्र के लिए जो कल्याणकारी है उसे वही उपदेश देना चाहिए। तथा छात्रा से कोई भी ज्ञान छिपाना नहीं चाहिए जितना बने उसको पूरा ज्ञान देना चाहिए।

¹⁶⁵ गीता 18/67

¹⁶⁶ गीता 3/26



चतुर्थ अध्याय

योग-वासिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता के
शैक्षिक तत्त्वों की समीक्षा

चतुर्थ अध्यायः

योग-वासिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्त्वों की समीक्षा

चतुर्थ अध्याय "योग-वासिष्ठ एवं श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्त्वों की समीक्षा" शिक्षा के आध्यात्मिक और नैतिक आयामों को गहराई से समझने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस अध्याय में उन गहन शिक्षाओं और सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है, जो इन दोनों ग्रंथों में निहित हैं। योग-वासिष्ठ और गीता न केवल भारतीय ज्ञान परंपरा के आधारभूत स्तंभ हैं, बल्कि मानव जीवन के हर पहलू आध्यात्मिक, मानसिक, नैतिक, और सामाजिक को दिशा देने वाले महत्वपूर्ण मार्गदर्शक भी हैं।

इस अध्याय की संरचना इन दोनों ग्रंथों में शिक्षा के मूल उद्देश्यों और तत्त्वों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने के उद्देश्य से की गई है। इसमें आत्म-ज्ञान, गुरु-शिष्य परंपरा, कर्म योग, ध्यान, मानसिक स्थिरता, और शिक्षा की आधुनिक प्रासंगिकता जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इन ग्रंथों की शिक्षा केवल प्राचीन काल तक सीमित नहीं है, बल्कि वर्तमान समय में भी व्यक्तिगत और सामाजिक विकास, नैतिक मूल्यों के पुनर्स्थापन, और मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए अत्यंत उपयोगी है।

योग-वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान प्राप्ति और वैराग्य पर जोर दिया गया है, जबकि श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्म, समत्व भाव, और कर्तव्य पालन की शिक्षा दी गई है। दोनों ग्रंथों में मानसिक शांति और स्थिरता के लिए ध्यान और आत्म-नियंत्रण को महत्वपूर्ण माना गया है। गीता की यज्ञ भावना और योग-वासिष्ठ का समत्व भाव सामाजिक समरसता और नैतिक उत्थान के लिए प्रासंगिक हैं।

इस अध्याय की भूमिका यह सुनिश्चित करना है कि इन ग्रंथों में निहित शैक्षिक तत्त्वों को न केवल प्राचीन ज्ञान परंपरा के संदर्भ में समझा जाए, बल्कि उन्हें आधुनिक समय की चुनौतियों और आवश्यकताओं के समाधान के रूप में भी प्रस्तुत किया जाए। यह अध्याय भारतीय शैक्षिक दर्शन को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करते हुए यह

स्पष्ट करता है कि कैसे शिक्षा, आत्म-ज्ञान, और सामाजिक जिम्मेदारी को एकीकृत किया जा सकता है।

4.1 आत्म-ज्ञान का महत्व

आत्म-ज्ञान को भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य माना गया है। यह केवल बौद्धिक या सांसारिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराते हुए जीवन की गहराई को समझने और अनुभव करने की प्रेरणा देता है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता जैसे ग्रंथ आत्म-ज्ञान के महत्व को गहराई से प्रतिपादित करते हैं। इन ग्रंथों में आत्म-ज्ञान को केवल आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं, बल्कि मानव जीवन के हर पहलू सामाजिक, नैतिक, और व्यक्तिगत के उत्थान का माध्यम बताया गया है।

योग-वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान को मोक्ष का मार्ग और शिक्षा का अंतिम लक्ष्य कहा गया है। यह ग्रंथ सिखाता है कि आत्म-ज्ञान व्यक्ति को संसार के भ्रम और माया से मुक्त करता है, जिससे वह जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझ पाता है। वासिष्ठ के उपदेश बताते हैं कि आत्म-ज्ञान केवल मानसिक और आध्यात्मिक शांति का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को स्थायी संतोष और समता के भाव में स्थापित करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्म-ज्ञान को कर्तव्य पालन और निष्काम कर्म के माध्यम से प्राप्त किया जाने वाला लक्ष्य बताया गया है। गीता यह सिखाती है कि आत्मा और परमात्मा के बीच संबंध को समझना, जीवन की जटिलताओं से परे जाकर आत्मा की शाश्वतता का अनुभव करना ही आत्म-ज्ञान है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को आत्म-ज्ञान के माध्यम से जीवन के द्वंद्वों और मानसिक संघर्षों से मुक्त होने की प्रेरणा दी। गीता में आत्म ज्ञान के लिए ध्यान का अभ्यास बताया है जो इस प्रकार है ध्यान के लिए उपयुक्त स्थान का वर्णन किया गया है पवित्र स्थान में सबसे नीचे वस्त्र उसके ऊपर मृगचर्म और कुशासन बिछाकर और यह आसन न ऊपर हो न नीचे हो ऐसी आसन पर स्थित आसन जमाना चाहिए¹⁶⁷

¹⁶⁷ गीता 6/11

शरीर, सिर और ग्रीवा को एक सीध में रखते हुए शरीर न आगे झुका हो और ना पीछे झुका हुआ हो इस प्रकार निश्चल धारण करता हुआ स्थिर होकर चारों दिशाओं को न देखता हुआ योग साधना करें इसके लिए एकांत स्थान होना चाहिए का वर्णन किया गया है¹⁶⁸ मन और इंद्रिय सहित शरीर को वश में रखने वाला कामना रहित हो अपरिग्रही बनकर योगी अकेला ही एकांत स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरंतर परमात्मा में लगावे जिस प्रकार वायु रेगिस्तान में स्थित दीपक चलाएं मन नहीं होता वैसे ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की गई है¹⁶⁹

यह खंड आत्म-ज्ञान के महत्व को गहराई से समझने का प्रयास करता है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि आत्म-ज्ञान क्यों शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य है और यह व्यक्ति के मानसिक, नैतिक, और आध्यात्मिक विकास में किस प्रकार सहायक है। आधुनिक समय में, जब व्यक्ति बाहरी उपलब्धियों और भौतिक सुख-सुविधाओं की अंधी दौड़ में अपने अस्तित्व को भूलता जा रहा है, आत्म-ज्ञान का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। यह भूमिका आत्म-ज्ञान के विचार को योग-वासिष्ठ और गीता के दृष्टिकोण से समझने और उसे आज के संदर्भ में प्रस्तुत करने का आधार प्रदान करती है।

योग-वासिष्ठ:

योग-वासिष्ठ में शिक्षा का अंतिम उद्देश्य आत्म-ज्ञान को माना गया है, जो व्यक्ति को संसार के भ्रम और माया के बंधन से मुक्त कर मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। यह आत्म-ज्ञान केवल बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अनुभव करने और उससे एकात्मता स्थापित करने की साधना है। श्री वाल्मीकि ने भारद्वाज के प्रश्नों के उत्तर में आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए विभिन्न चरणों का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा कि आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए साधक को पहले निषिद्ध कर्मों और विषय-वासना से मुक्त होना चाहिए। इसके लिए शम (मन की शांति), दम (इंद्रिय-नियंत्रण), और श्रद्धा जैसे गुणों को आत्मसात करना आवश्यक है।

¹⁶⁸ गीता 6 /14

¹⁶⁹ गीता 6 /10

वाल्मीकि ने आत्म-ज्ञान की प्रक्रिया को विस्तार से समझाते हुए कहा है कि साधक को कोमल आसन पर बैठकर, चित्त और इंद्रियों को वश में करते हुए "ॐ" का उच्चारण करना चाहिए। यह अभ्यास मन और आत्मा को पवित्र करता है और साधक को समस्त चराचर में आत्मा की व्यापकता का अनुभव करने की ओर प्रेरित करता है। साधक को यह भी सिखाया गया है कि वह अपने भीतर की दिव्यता को पहचानकर, समस्त बाहरी विभाजनों से परे जाकर, आत्मा और ब्रह्म के बीच एकात्मकता का अनुभव करे।

4.1.1 समत्व भाव की महानता:

योग-वासिष्ठ में समत्व भाव को जीवन का एक प्रमुख स्तंभ बताया गया है। समत्व का अर्थ है सुख-दुख, लाभ-हानि, और सफलता-असफलता जैसी परिस्थितियों में समानता का भाव बनाए रखना। यह व्यक्ति को मानसिक और भावनात्मक स्तर पर संतुलन में रखता है। योग-वासिष्ठ में कहा गया है:

"चित्तज्योत्स्ना यावदेवाऽन्तरहंकारघनावृता।

विकासयति नो तावत् परमार्थकुमुद्वतीम्॥"¹⁷⁰

अर्थात्, जब तक चित्त अहंकार रूपी बादल से आच्छादित रहता है, तब तक परमार्थ रूपी कुमुद विकसित नहीं हो सकता। समत्व भाव से युक्त व्यक्ति को वास्तविक आनंद की प्राप्ति होती है, जो न तो किसी भौतिक संपत्ति से और न ही भोग-विलास से प्राप्त किया जा सकता है।

समत्व भाव की विशेषता यह है कि यह व्यक्ति को भीतर से संतोष प्रदान करता है और उसे बाहरी परिस्थितियों से अप्रभावित बनाता है। समत्व के अभ्यास से व्यक्ति अपने जीवन में मानसिक स्थिरता, शांति, और आत्म-विश्वास को बढ़ा सकता है।

¹⁷⁰ योग-वासिष्ठ स्थिति प्रकरण, 33/28

4.1.2 सर्वस्व त्याग की भावना - योग-वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्याग की भावना पर बल दिया गया है। हालांकि, यह त्याग केवल बाहरी वस्तुओं का नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के भीतर के मोह, अहंकार, और इच्छाओं का त्याग है। ग्रंथ में कहा गया है कि मन सभी इच्छाओं और मोह का केंद्र है, और जब तक मन इन बंधनों से मुक्त नहीं होता, आत्मा का साक्षात्कार संभव नहीं है।

"सर्वैषणाविमुक्तेन स्वात्मनाऽऽत्मनि तिष्ठता ।

कुरु कर्माणि कार्याणि नूनं देहस्य संस्थितिः॥"¹⁷¹

अर्थात्, जब तक व्यक्ति सभी प्रकार की इच्छाओं और मोह से मुक्त होकर आत्मा में स्थित नहीं होता, तब तक आत्म-ज्ञान प्राप्ति संभव नहीं है। योग-वासिष्ठ में राजा जनक का उदाहरण दिया गया है, जो धन-वैभव में रहते हुए भी भीतर से त्यागी थे। यह त्याग बाहरी वस्तुओं का नहीं, बल्कि आंतरिक आसक्तियों का है।

श्रीमद्भगवद्गीता:

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्म-ज्ञान को जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य बताया गया है। गीता के अनुसार, आत्म-ज्ञान कर्तव्यों के निष्काम पालन और भगवान के प्रति भक्ति के माध्यम से प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा कि आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को समत्व भाव अपनाना चाहिए और अपने कर्तव्यों का पालन करते समय सफलता और विफलता में समान भाव रखना चाहिए।

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"¹⁷²

अर्थात्, हे अर्जुन, आसक्ति को त्यागकर, सफलता और विफलता में समान भाव रखते हुए, योग में स्थित होकर कर्म करो। यही समत्व भाव योग कहलाता है। गीता में आत्मा के अमर और शाश्वत स्वरूप को भी विस्तार से बताया गया है:

¹⁷¹ योगवासिष्ठ स्थिति प्रकरण, 15/45

¹⁷² गीता 2/48)

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥"¹⁷³

अर्थात्, आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न पानी भिगो सकता है, और न वायु इसे सुखा सकती है। यह आत्मा अजर-अमर, अनादि, और शाश्वत है। आत्मा का यह अमर स्वरूप आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है।

गीता में यह भी बताया गया है कि आत्म-ज्ञान का मार्ग केवल ज्ञान या भक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह निष्काम कर्म, समत्व, और आत्म-नियंत्रण का समन्वय है।

"प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥"¹⁷⁴

अर्थात्, जब मनुष्य अपने मन की सभी इच्छाओं को त्याग देता है और आत्मा में संतोष का अनुभव करती है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति वह है जिसके अन्दर स्थिरता और संतुलन हो। व्यक्ति जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित न हो, न ही जीत से बहुत खुश हो और न ही हार से निराश न हो। सभी स्थितियों में समभाव बनाए रखने में सक्षम होता है।

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों ही आत्म-ज्ञान को जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य मानते हैं। यह आत्म-ज्ञान व्यक्ति को मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर उच्चतम स्थिति में ले जाता है। योग-वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए शम, दम, और समत्व भाव पर जोर दिया गया है, जबकि गीता में इसे निष्काम कर्म और भक्ति के साथ जोड़ा गया है। इन शिक्षाओं की प्रासंगिकता आज के जीवन में भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, जहां मानसिक शांति, संतुलन, और आत्म-ज्ञान जीवन को सार्थक बनाते हैं।

¹⁷³ गीता 2/23

¹⁷⁴ गीता 2/55

4.2 गुरु-शिष्य परंपरा

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा प्रणाली और ज्ञान परंपरा का आधारभूत तत्व है। यह न केवल शिक्षा के आदान-प्रदान का एक साधन है, बल्कि यह शिक्षार्थी और शिक्षक के बीच एक गहन संबंध को भी परिभाषित करती है। यह परंपरा शिक्षार्थी के भीतर ज्ञान और चरित्र के समग्र विकास को सुनिश्चित करती है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में गुरु-शिष्य परंपरा का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, जो प्राचीन भारतीय शिक्षण प्रणाली की गहराई और प्रभावशीलता को दर्शाता है।

योग-वासिष्ठ में गुरु वासिष्ठ और भगवान राम के संवाद के माध्यम से यह परंपरा साकार होती है। गुरु वासिष्ठ न केवल भगवान राम के शंकाओं का समाधान करते हैं, बल्कि उन्हें आत्म-ज्ञान की ओर प्रेरित करते हुए जीवन के गूढ़ रहस्यों को समझने में सहायता करते हैं। यह संवाद यह दिखाता है कि गुरु का कार्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं है, बल्कि शिष्य को जीवन के हर पहलू में सही मार्गदर्शन करना और उसे आत्म-निर्भर बनाना है। वासिष्ठ समझाते हैं कि संसार एक भ्रम है और आत्मा ही वास्तविकता है।

"चित्तमेवहिसंसारश्चित्तमेवहिबन्धनम्।

चित्तमेवहिमुक्तिश्चित्तमेवहिसाधनम्॥"

चित्त (मन) ही संसार है, चित्त ही बंधन है। चित्त ही मुक्ति है, और चित्त ही साधन है। यह श्लोक शिष्य को यह समझाता है कि मन के नियंत्रण और शुद्धि से मुक्ति संभव है।

भगवानरामनेगुरुवासिष्ठसेकहा:

"त्वमेवमेगुरुःश्रेष्ठःत्वमेवमेपरंपदम्।

त्वमेवसर्वमव्यक्तंत्वामर्चयामियोगिनाम्॥"

आप ही मेरे परमगुरु और मेरी मुक्ति का मार्ग हैं। आपकी वाणी ही मेरे लिए सर्वोच्च सत्य है। श्रीमद्भगवद्गीता में गुरु-शिष्य परंपरा का सर्वोत्तम उदाहरण भगवान कृष्ण

और अर्जुन के संवाद में मिलता है। भगवान कृष्ण न केवल अर्जुन को उनके कर्तव्यों का बोध कराते हैं, बल्कि जीवन की जटिल परिस्थितियों में उनका मार्गदर्शन भी करते हैं। यह परंपरा गुरु की भूमिका को केवल शिक्षण तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे शिष्य के जीवन में एक मार्गदर्शक, संरक्षक, और प्रेरणास्त्रोत के रूप में परिभाषित करती है।

यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।

स यत्प्रमाणंकुरुतेलोकस्तदनुवर्तते॥

अतः शिक्षा देने से पूर्व शिक्षक को चाहिये कि वह ठीक-ठाक आचरण करे। उसका चरित्र ऐसा आदर्श होना चाहिये कि छात्र का मन उससे प्रभावित हुए बिना न रह जाय। वही शिक्षक आदर्श शिक्षक कहलाता है जो स्वयं शास्त्रीय सिद्धान्तों का पालन करें, क्योंकि शिक्षक अबोध बालक का आदर्श होता है। अतः अपने शिष्यों के प्रति शिक्षक का महान उत्तरदायित्व होता है। अतः शिक्षक को नैतिक तथा आध्यात्मिक संहिता सम्बन्धी आदर्श ग्रन्थों से सुपरिचित होना चाहिये। शिक्षक को अनासक्त रहकर अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए तथा राष्ट्र तथा मानवीय समाज के उत्थान में अपना पूर्ण योगदान देना चाहिये।

यह खंड गुरु-शिष्य परंपरा की भारतीय शैक्षिक दृष्टिकोण में केंद्रीय भूमिका को रेखांकित करता है। यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल पाठ्यक्रमों और विषयों का अध्ययन नहीं है, बल्कि यह शिष्य के भीतर चरित्र निर्माण, नैतिकता, और आत्म-ज्ञान का बीजारोपण करने की प्रक्रिया है। आधुनिक युग में, जब शिक्षक और छात्र के बीच का संबंध अधिकतर औपचारिक और तकनीकी हो गया है, गुरु-शिष्य परंपरा का यह आदर्श स्वरूप न केवल शिक्षण प्रक्रिया को सजीव बना सकता है, बल्कि इसे अधिक प्रभावी और प्रेरणादायक भी बना सकता है।

इस भाग का उद्देश्य गुरु-शिष्य परंपरा को योग-वासिष्ठ और गीता के दृष्टिकोण से समझना और उसे वर्तमान समय की शिक्षा प्रणाली में पुनः स्थापित करने

के महत्व को रेखांकित करना है। यह परंपरा न केवल प्राचीन भारतीय शिक्षा की विशेषता है, बल्कि यह आज भी शिक्षा और समाज को नई दिशा देने में सक्षम है।

योग-वासिष्ठ - योग-वासिष्ठ में गुरु-शिष्य परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण गुरु वासिष्ठ और भगवान राम के संवादों में देखने को मिलता है। गुरु वासिष्ठ, भगवान राम को आत्म-ज्ञान प्राप्त करने और जीवन की जटिलताओं से उबरने के लिए दिशा प्रदान करते हैं। गुरु वासिष्ठ ने राम को न केवल संसार के असारता का बोध कराया, बल्कि आत्मा की प्रकृति, मनुष्य जीवन के उद्देश्य, और माया से मुक्ति का मार्ग भी दिखाया। गुरु वासिष्ठ अपने उपदेशों में तर्क और अनुभव दोनों का सहारा लेते हैं, ताकि शिष्य की जिज्ञासा शांत हो सके और वह ज्ञान के गूढ़ रहस्यों को आत्मसात कर सके। उनका यह दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि गुरु को शिष्य की मानसिक स्थिति और समझ के अनुसार शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

"न श्रुतिर्नोऽपि विज्ञानं न च दानं न च क्रियाः।

यथा सम्यगुपदेशात् तेऽवबोधो विनश्यति॥" (योग-वासिष्ठ)

अर्थात्, शिष्य की अज्ञानता और भ्रम को केवल सही समय पर दिए गए सम्यक उपदेश के द्वारा ही दूर किया जा सकता है, न कि केवल शास्त्र सुनने, दान करने, या अन्य कर्मकांडों से। गुरु वासिष्ठ, शिष्य राम को सिखाते हैं कि ज्ञान प्राप्ति के लिए मन का स्थिर और शांत होना आवश्यक है। गुरु का कर्तव्य केवल उपदेश देना नहीं है, बल्कि शिष्य को आत्म-ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर करना और उसके मन में आत्मा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना भी है।

श्रीमद्भगवद्गीता - श्रीमद्भगवद्गीता में गुरु-शिष्य परंपरा का आदर्श उदाहरण भगवान कृष्ण और अर्जुन के संवाद में देखने को मिलता है। महाभारत के युद्ध क्षेत्र में, जब अर्जुन अपने कर्तव्यों को लेकर भ्रमित हो जाते हैं और मानसिक संघर्ष में पड़ जाते हैं, तब भगवान कृष्ण उन्हें ज्ञान, भक्ति, और निष्काम कर्म का उपदेश देकर सही दिशा में मार्गदर्शन करते हैं।

गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥"¹⁷⁵

अर्थात्, ज्ञान को प्राप्त करने के लिए विनम्रता, प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति, और सेवा की भावना से गुरु के पास जाना चाहिए। तत्त्वज्ञानी गुरु, शिष्य को यथार्थ ज्ञान प्रदान करते हैं। गुरु-शिष्य संबंध में गुरु का आदर्श आचरण विशेष महत्व रखता है। गीता में कहा गया है कि शिक्षक का कर्तव्य है कि वह स्वयं नैतिक, आध्यात्मिक, और व्यावहारिक रूप से परिपूर्ण हो, ताकि वह शिष्य के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके।

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥"¹⁷⁶

अर्थात्, श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है, अन्य लोग उसका अनुसरण करते हैं। शिक्षक का आचरण छात्रों के लिए आदर्श बनता है। गीता में गुरु-शिष्य संबंध का एक और महत्वपूर्ण पहलू श्रद्धा और समर्पण है। शिष्य को गुरु के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव रखना चाहिए, ताकि वह उनके उपदेशों को स्वीकार कर सके और जीवन में सही दिशा प्राप्त कर सके। अर्जुन ने भगवान कृष्ण के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए स्वयं को उनका शिष्य घोषित किया

"शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।"¹⁷⁷

अर्थात्, मैं आपका शिष्य हूँ। मुझे शिक्षा प्रदान करें और मेरा मार्गदर्शन करें। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता, दोनों में गुरु-शिष्य परंपरा को शिक्षा का आधार बताया गया है। गुरु केवल ज्ञान का स्रोत नहीं, बल्कि शिष्य के जीवन को सही दिशा देने वाला मार्गदर्शक होता है। गुरु का ज्ञान, अनुभव, और आचरण शिष्य को प्रेरणा प्रदान करते हैं, जबकि शिष्य का समर्पण और जिज्ञासा इस संबंध को मजबूत बनाते हैं।

¹⁷⁵ गीता 4/34

¹⁷⁶ गीता 3/21

¹⁷⁷ गीता 2/7

यह परंपरा न केवल प्राचीन काल में प्रासंगिक थी, बल्कि आज भी शिक्षा और समाज के लिए प्रेरणादायक है।

4.3 कर्म योग की शिक्षा

कर्म योग, भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जो जीवन में कर्तव्य पालन, निष्कामता, और समता के भाव को केंद्र में रखता है। यह सिद्धांत शिक्षा और जीवन दर्शन के एक ऐसे मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें व्यक्ति न केवल अपने कर्तव्यों का पालन करता है, बल्कि मन, बुद्धि, और आत्मा के समन्वय से आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता, दोनों ही ग्रंथों में कर्म योग की अवधारणा को गहराई से समझाया गया है, जो न केवल प्राचीन समय में बल्कि आधुनिक जीवन के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है।

योग-वासिष्ठ में कर्म और वैराग्य के संतुलन पर जोर दिया गया है। इसमें बताया गया है कि आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए वैराग्य आवश्यक है, लेकिन सांसारिक कर्तव्यों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। गुरु वासिष्ठ के उपदेशों में कर्म और अकर्म को समान माना गया है, लेकिन समत्व भाव से किया गया कर्म श्रेष्ठ माना गया है। यह दृष्टिकोण यह सिखाता है कि व्यक्ति को अपने कर्म करते समय आसक्ति का त्याग करना चाहिए और केवल कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर कार्य करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म योग को जीवन का केंद्रीय धर्म बताया गया है। गीता सिखाती है कि व्यक्ति को अपने कर्म का अधिकार है, लेकिन कर्म के फल पर अधिकार नहीं। निष्काम कर्म का यह सिद्धांत व्यक्ति को मानसिक शांति, स्थिरता, और आत्म-ज्ञान की ओर ले जाता है। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म योग का मर्म समझाते हुए कहा कि सफलता और विफलता के प्रति समान भाव रखते हुए कर्म करना ही सच्चा योग है।

यह खंड कर्म योग की शिक्षा को योग-वासिष्ठ और गीता के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि कर्म केवल सांसारिक जीवन के

लिए नहीं है, बल्कि यह आत्मा की प्रगति और समाज के कल्याण का भी माध्यम है। आधुनिक युग में, जब लोग कर्म के परिणामों पर अधिक केंद्रित हो गए हैं और कर्तव्य भावना कम होती जा रही है, कर्म योग की यह शिक्षा न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए, बल्कि नैतिकता और सामाजिक समरसता के लिए भी आवश्यक है।

कर्म योग की शिक्षा व्यक्ति को यह सिखाती है कि वह सफलता और असफलता, लाभ और हानि, सुख और दुख के द्वंद्वों से ऊपर उठकर, अपने कर्तव्यों का पालन करे। यह शिक्षा न केवल जीवन के हर क्षेत्र में सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है, बल्कि व्यक्ति को मानसिक शांति और स्थिरता भी प्रदान करती है। इस भूमिका का उद्देश्य कर्म योग की अवधारणा को समग्र रूप से समझाना और इसे आधुनिक जीवन में लागू करने की आवश्यकता को रेखांकित करना है। यह शिक्षा व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर स्थायी विकास और संतुलन का मार्ग प्रदान करती है।

योग-वासिष्ठ - योग-वासिष्ठ में कर्म और वैराग्य का संतुलन साधने पर विशेष जोर दिया गया है। हालांकि यह ग्रंथ आत्म-ज्ञान और वैराग्य को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानता है, फिर भी संसारिक कर्तव्यों को अनदेखा नहीं किया गया है। योग-वासिष्ठ में ज्ञानी व्यक्ति के लिए कर्म और अकर्म दोनों को समान माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसके लिए कर्म का बंधन समाप्त हो जाता है। लेकिन, समत्व भाव के साथ कर्म करना श्रेष्ठ माना गया है।

गुरु वासिष्ठ ने भगवान राम को कर्म के महत्व को समझाते हुए कहा कि संसार के कर्म बंधनों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति को अपने मन को नियंत्रण में रखना चाहिए। उन्होंने कहा:

"सर्वैषणाविमुक्तेन स्वात्मनाऽऽत्मनि तिष्ठता।

कुरु कर्माणि कार्याणि नूनं देहस्य संस्थितिः॥"¹⁷⁸

अर्थात्, शरीर के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, लेकिन यह भाव रखना चाहिए कि कर्म फल की आसक्ति न हो। योग-वासिष्ठ में कर्मयोग का यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि कर्म से वैराग्य और आत्म-ज्ञान को प्राप्त

¹⁷⁸ स्थिति प्रकरण, 15/45

करना ही सच्चा उद्देश्य है। ज्ञानी व्यक्ति के लिए यह कहा गया है कि कर्म उसे बंधन में नहीं डालता, क्योंकि वह कर्म को समता के भाव से करता है।

"ज्ञानेन कर्मत्यागो न आवश्यकः, अपितु समत्वभाव आवश्यकः।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति कर्म करते हुए भी वैराग्य और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सकता है, यदि वह कर्मफल की अपेक्षा किए बिना कर्तव्य के रूप में कार्य करे।

श्रीमद्भगवद्गीता - गीता में कर्मयोग को जीवन का मूल धर्म बताया गया है। इसमें यह शिक्षा दी गई है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, लेकिन कर्म के फल की आसक्ति को त्याग देना चाहिए। निष्काम कर्म की यह अवधारणा गीता के कर्मयोग का मूल है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का अर्थ समझाते हुए कहा:

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"¹⁷⁹

अर्थात्, तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में नहीं। इसलिए कर्म को निष्काम होकर करो और अकर्म में आसक्ति मत हो। गीता में यह भी बताया गया है कि कर्म में सफलता और विफलता के प्रति समभाव रखते हुए कार्य करना ही सच्चा योग है।

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"¹⁸⁰

इस श्लोक में समत्व भाव को योग का आधार बताया गया है। यह कहा गया है कि सफलता और विफलता में समान रहते हुए कर्म करना ही सच्चा योग है।

गीता में कर्मयोग का एक और महत्वपूर्ण पहलू है, जिसमें कहा गया है कि कर्म को समाज और मानवता के हित में करना चाहिए। इसे यज्ञ रूपी कर्म कहा गया है। भगवान कृष्ण ने कहा:

¹⁷⁹ गीता 2/47

¹⁸⁰ गीता 2/ 48

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥"¹⁸¹

अर्थात्, केवल यज्ञ (समाज के कल्याण) के लिए किए गए कर्म ही बंधन से मुक्त करते हैं। इसलिए, हे अर्जुन, आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य का पालन करो।

गीता में कर्म योग के तीन मुख्य तत्व:

1. **निष्कामता:**कर्म करते समय फल की अपेक्षा न रखना।
2. **समत्व:**सफलता और असफलता में समान भाव रखना।
3. **यज्ञ भावना:**समाज और मानवता के हित में कर्म करना।

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों में कर्मयोग को जीवन का महत्वपूर्ण अंग बताया गया है। हालांकि योग-वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान और वैराग्य पर अधिक जोर है, लेकिन संसारिक कर्तव्यों को भी अनिवार्य माना गया है। वहीं, गीता में निष्काम कर्म की अवधारणा को केंद्र में रखा गया है, जो न केवल व्यक्ति के आत्म-विकास के लिए बल्कि समाज के कल्याण के लिए भी आवश्यक है। इन शिक्षाओं की आधुनिक प्रासंगिकता यह है कि वे व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मानसिक शांति, आत्म-संतोष, और समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध कराती हैं।

4.4 ध्यान और मानसिक स्थिरता

ध्यान और मानसिक स्थिरता भारतीय ज्ञान परंपरा के केंद्र में स्थित हैं। ये न केवल आत्म-ज्ञान प्राप्ति का साधन हैं, बल्कि जीवन की सभी जटिलताओं, तनावों, और मानसिक अस्थिरता का समाधान भी प्रदान करते हैं। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यान और मानसिक स्थिरता को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इन ग्रंथों में ध्यान को मन और इंद्रियों के संयम का माध्यम और मानसिक स्थिरता को आत्मा के साथ एकात्मकता प्राप्त करने की स्थिति के रूप में वर्णित किया गया है।

¹⁸¹ गीता 3/9

योग-वासिष्ठ में ध्यान को आत्म-ज्ञान प्राप्ति और मानसिक शांति का प्रमुख साधन बताया गया है। गुरु वासिष्ठ के उपदेशों में यह स्पष्ट किया गया है कि ध्यान के बिना आत्मा की वास्तविकता को समझना संभव नहीं है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने मन की चंचलता को नियंत्रित करता है और अपने भीतर शांति और स्थिरता का अनुभव करता है। योग-वासिष्ठ सिखाता है कि जब व्यक्ति अपने मन और इंद्रियों को नियंत्रित कर लेता है, तब वह आत्म-ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है। यह शिक्षा आधुनिक समय में, जहां लोग तनाव और मानसिक विकारों से जूझ रहे हैं, अत्यंत प्रासंगिक है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यान को योग का अभिन्न अंग बताया गया है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि ध्यान के माध्यम से मन को एकाग्र और स्थिर करना संभव है। गीता में यह कहा गया है कि मन की अस्थिरता को दूर करने के लिए अभ्यास और वैराग्य आवश्यक हैं। ध्यान केवल मन को शांत करने का साधन नहीं है, बल्कि यह आत्मा के साथ एकात्मता स्थापित करने का माध्यम भी है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा-

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥"¹⁸²

ध्यान और मानसिक स्थिरता के माध्यम से व्यक्ति जीवन के द्वंद्वों से सुख-दुख, हानि-लाभ, और सफलता-असफलता से ऊपर उठकर समता का भाव प्राप्त कर सकता है।

यह खंड ध्यान और मानसिक स्थिरता की शिक्षा को योग-वासिष्ठ और गीता के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि ध्यान और मानसिक स्थिरता न केवल आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं, बल्कि वे जीवन के हर क्षेत्र में मानसिक शांति, स्थिरता, और संतुलन बनाए रखने में भी सहायक हैं।

आधुनिक युग, जहां तनाव, चिंता, और मानसिक अस्थिरता आम समस्याएं बन चुकी हैं, ध्यान और मानसिक स्थिरता की यह शिक्षा अत्यधिक प्रासंगिक है। यह न केवल व्यक्ति को मानसिक शांति और आंतरिक स्थिरता प्रदान करती है, बल्कि उसे आत्म-ज्ञान, नैतिकता, और सामाजिक जिम्मेदारी की ओर भी प्रेरित करती है। इस भूमिका का उद्देश्य ध्यान और मानसिक स्थिरता की प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में समझाना और इसे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में लागू करने के महत्व को रेखांकित करना है।

योग-वासिष्ठ - योग-वासिष्ठ में ध्यान को आत्म-ज्ञान प्राप्त करने और मानसिक स्थिरता स्थापित करने का प्रमुख साधन बताया गया है। गुरु वासिष्ठ ने श्रीराम को समझाया कि ध्यान के बिना मन को वश में करना और आत्मा के स्वरूप को अनुभव करना संभव नहीं है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति मन की चंचलता को समाप्त करता है और आत्मा की शुद्धता का अनुभव करता है।

ग्रंथ में ध्यान की प्रक्रिया को विस्तार से समझाया गया है। साधक को शांत वातावरण में कोमल आसन पर बैठकर अपनी इंद्रियों और चित्त को नियंत्रित करना चाहिए। ओम का उच्चारण करते हुए मन को एकाग्र कर, समस्त विचारों और विक्षेपों से मुक्त होना चाहिए। इसके माध्यम से मन पवित्र और स्थिर होता है, और साधक अपने भीतर आत्मा की दिव्यता का अनुभव करता है। वासिष्ठ ने कहा:

"चित्तं हि प्रज्ञया योगे ध्यानं ब्रह्मणि पूरयेत्।

अन्तःशुद्धिर्मनो नष्टं ध्यानमेतत्समाप्तिमेत्॥"

अर्थात्, जब मन ध्यान में स्थिर होकर आत्मा की ओर उन्मुख होता है, तो भीतर की अशुद्धता समाप्त हो जाती है और आत्मा का साक्षात्कार संभव होता है।

ध्यान को मानसिक शांति, इंद्रियों के संयम और आत्म-ज्ञान प्राप्ति का माध्यम बताया गया है। ध्यान से व्यक्ति अपने भीतर के विकारों जैसे क्रोध, लोभ, और मोह को नियंत्रित कर समत्व भाव को विकसित करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता - गीता में ध्यान और मानसिक स्थिरता को योग का अभिन्न अंग माना गया है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को ध्यान का महत्व समझाते हुए इसे आत्मा के साथ एकत्व स्थापित करने का साधन बताया। ध्यान की प्रक्रिया में मन और इंद्रियों का नियंत्रण आवश्यक है, जिससे व्यक्ति जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी संतुलन बनाए रख सकता है।

भगवान कृष्ण ने कहा:

"शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥"¹⁸³

अर्थात्, ध्यान के लिए साधक को स्वच्छ और शांत स्थान पर बैठना चाहिए। शरीर, मन, और आसन स्थिर होना चाहिए। यह स्थिरता ध्यान की सफलता के लिए अनिवार्य है।

ध्यान के लिए मन की एकाग्रता और इंद्रियों का संयम महत्वपूर्ण हैं। गीता में ध्यान की प्रक्रिया को इस प्रकार वर्णित किया गया है:

"युञ्जन्नेवं सदा आत्मानं योगी नियमसेवितः।

शान्ति-निर्वाण-परमां मत्संस्थामधिगच्छति॥"¹⁸⁴

अर्थात्, जो योगी नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करता है, वह मन की शांति प्राप्त करता है और अंततः परमात्मा से एकत्व स्थापित करता है।

गीता में भगवान कृष्ण ने ध्यान की सफलता के लिए इंद्रिय-निग्रह और नियमित अभ्यास पर जोर दिया है। उन्होंने कहा:

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥"¹⁸⁵

¹⁸³ गीता 6/11

¹⁸⁴ गीता 6 /15

¹⁸⁵ गीता 6 /35

अर्थात्, हे अर्जुन, मन को नियंत्रित करना कठिन है, लेकिन इसे अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से वश में किया जा सकता है।

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति सुख-दुख, राग-द्वेष और सफलता-असफलता जैसे द्वंद्वों से मुक्त होकर मानसिक स्थिरता प्राप्त करता है। यह मानसिक स्थिरता व्यक्ति को जीवन में संतुलित और संतोषपूर्ण बनाती है।

ध्यान और मानसिक स्थिरता के मुख्य तत्व:

1. **मन और इंद्रियों का नियंत्रण** - ध्यान के माध्यम से मन और इंद्रियों की चंचलता को समाप्त कर स्थिरता प्राप्त होती है।
2. **संतुलन और शांति** - ध्यान से व्यक्ति जीवन के द्वंद्वों से मुक्त होकर मानसिक संतुलन और शांति का अनुभव करता है।
3. **आत्मा से एकत्व** - ध्यान व्यक्ति को आत्मा और ब्रह्म से एकात्मकता का अनुभव करने में सहायता करता है।
4. **नियमित अभ्यास** - ध्यान की सफलता के लिए नियमितता और वैराग्य आवश्यक हैं।

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों में ध्यान और मानसिक स्थिरता को शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। ये ग्रंथ बताते हैं कि ध्यान न केवल आत्म-ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है, बल्कि मानसिक शांति और स्थिरता प्राप्त करने का भी साधन है। ध्यान की प्रक्रिया व्यक्ति को जीवन के तनाव, द्वंद्व, और विकारों से मुक्त कर उसे आध्यात्मिक और मानसिक संतुलन प्रदान करती है। आज के युग में भी ध्यान और मानसिक स्थिरता की यह शिक्षा अत्यधिक प्रासंगिक है।

4.5 शिक्षा की आधुनिक प्रासंगिकता

शिक्षा की आधुनिक प्रासंगिकता का विश्लेषण करते हुए यह खंड योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित शैक्षिक तत्त्वों को समकालीन संदर्भ में प्रस्तुत करता है।

आज के युग में, जब शिक्षा प्रणाली केवल बौद्धिक विकास और रोजगार पर केंद्रित हो गई है, इन ग्रंथों की शिक्षाएं एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। योग-वासिष्ठ आत्म-ज्ञान, ध्यान, और वैराग्य को शिक्षा का आधार मानता है, जबकि गीता कर्तव्य पालन, निष्काम कर्म, और नैतिकता पर बल देती है। ये शिक्षाएं मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक मूल्यों के पुनर्स्थापन, और सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए अत्यधिक प्रासंगिक हैं।

आधुनिक शिक्षा में योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाओं को शामिल कर न केवल व्यक्ति के मानसिक और नैतिक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी और समावेशी विकास को भी प्रोत्साहन दिया जा सकता है। यह खंड शिक्षा को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखने और इसे वर्तमान समय की चुनौतियों के समाधान के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

योग-वासिष्ठ - योग-वासिष्ठ में दी गई शिक्षा आज के युग में मानसिक शांति, ध्यान, और आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। वर्तमान समय में, जब व्यक्ति मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा, और अस्थिरता से जूझ रहा है, योग-वासिष्ठ की शिक्षा उसे मानसिक स्थिरता और आत्म-शांति प्राप्त करने का मार्ग दिखाती है।

योग-वासिष्ठ में ध्यान, वैराग्य, और आत्म-ज्ञान पर जोर दिया गया है, जो आधुनिक जीवन की चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक है। यह शिक्षा व्यक्ति को अपने भीतर झांकने और स्वयं को समझने की प्रेरणा देती है। यह न केवल मानसिक शांति प्रदान करती है, बल्कि आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचानने में भी सहायक है। वर्तमान समय में, जब भौतिक सुख-सुविधाओं के बावजूद मानसिक अशांति और असंतोष बढ़ रहा है, योग-वासिष्ठ की शिक्षा व्यक्ति को जीवन में संतोष और स्थिरता प्रदान कर सकती है।

इसके अलावा, योग-वासिष्ठ में समत्व भाव और मोह के त्याग का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह आज के सामाजिक और आर्थिक असमानता वाले परिवेश में व्यक्तिगत और सामूहिक संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता - गीता की शिक्षा आज के समाज में नैतिकता, कर्तव्य पालन, और मानसिक स्थिरता के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है। गीता में बताए गए आदर्श, जैसे निष्काम कर्म, समत्व भाव, और आत्म-नियंत्रण, आधुनिक समाज के नैतिक पतन और सामाजिक विघटन को रोकने में सहायक हो सकते हैं।

1. नैतिकता और कर्तव्य पालन

गीता में बताया गया है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, लेकिन फल की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। यह निष्काम कर्म का सिद्धांत आज के युग में, जहां हर कार्य परिणाम-आधारित हो गया है, नैतिकता और जिम्मेदारी की भावना को पुनर्स्थापित कर सकता है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"¹⁸⁶

अर्थात्, तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, फल की चिंता करना तुम्हारा काम नहीं।

2. मानसिक स्थिरता और समत्व भाव

गीता में सफलता और असफलता, सुख और दुख, हानि और लाभ के प्रति समानता रखने की शिक्षा दी गई है। यह समत्व भाव आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायक है।

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"¹⁸⁷

अर्थात् हे धनञ्जय ! तुम योग में पूरी तरह से स्थित होकर (अपने चित्त को सम अवस्था में रखकर) फल की इच्छा को त्यागकर कार्य की सिद्धि (सफलता) व असिद्धि (असफलता) दोनों ही अवस्थाओं में अपने आप को समभाव (एक समान भाव) में रखना ही योग अर्थात् समत्वं योग है ।

¹⁸⁶ गीता 2/47

¹⁸⁷ गीता 2/48

3. आत्म-नियंत्रण और ध्यान

गीता में इंद्रियों और मन के नियंत्रण पर जोर दिया गया है। वर्तमान समय में, जब व्यक्ति बाहरी आकर्षण और विक्षेपों से घिरा हुआ है, आत्म-नियंत्रण की यह शिक्षा उसे स्थिरता प्रदान कर सकती है।

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥"¹⁸⁸

अर्थात्, मन को नियंत्रित करना कठिन है, लेकिन अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है।

4. सामाजिक और नैतिक सुधार

गीता में यज्ञ भावना का जो उल्लेख किया गया है, वह आज के समाज में सह-अस्तित्व और सामूहिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने में सहायक हो सकता है।

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥"¹⁸⁹

अर्थात्, केवल यज्ञ (समाज के कल्याण) के लिए किए गए कर्म ही व्यक्ति को बंधन से मुक्त करते हैं।

4.5.1 आधुनिक परिप्रेक्ष्य में योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता

1. मानसिक स्वास्थ्य

आज के समय में मानसिक तनाव, चिंता, और अवसाद जैसी समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं। प्रतिस्पर्धा, अत्यधिक काम का दबाव, और भौतिकता की दौड़ ने व्यक्ति को मानसिक रूप से अस्थिर और अशांत बना दिया है। ऐसे में योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षा मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

¹⁸⁸ गीता 6/35

¹⁸⁹ गीता 3/9

योग-वासिष्ठ ध्यान और आत्म-नियंत्रण पर बल देता है। यह सिखाता है कि व्यक्ति को अपने मन और इंद्रियों को नियंत्रित करके ध्यान के माध्यम से मानसिक स्थिरता प्राप्त करनी चाहिए। गुरु वासिष्ठ ने कहा कि जब मन स्थिर होता है और चित्त शुद्ध होता है, तब व्यक्ति आत्मा की शांति का अनुभव करता है। ध्यान के माध्यम से मन की चंचलता को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति अपने भीतर की अशांति को समाप्त कर सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता मानसिक स्वास्थ्य के लिए समत्व भाव (सुख-दुख, सफलता-असफलता में समानता) को आवश्यक मानती है। गीता का निष्काम कर्म का सिद्धांत सिखाता है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते समय फल की चिंता से मुक्त रहना चाहिए। यह सिद्धांत मानसिक तनाव को कम करता है और व्यक्ति को आंतरिक शांति प्रदान करता है। गीता का यह श्लोक मानसिक स्थिरता का आदर्श प्रस्तुत करता है:

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥"¹⁹⁰

अर्थात्, मन को नियंत्रित करना कठिन है, लेकिन अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से इसे वश में किया जा सकता है।

2. नैतिक शिक्षा

आधुनिक समाज में नैतिकता का ह्रास हो रहा है। भ्रष्टाचार, स्वार्थ, और सामाजिक विघटन ने मूल्यों को क्षीण कर दिया है। ऐसे में योग-वासिष्ठ और गीता नैतिकता और मूल्यों के पुनर्स्थापन का मार्गदर्शन करती हैं।

योग-वासिष्ठ सिखाता है कि नैतिकता का आधार आत्म-ज्ञान और वैराग्य है। जब व्यक्ति अपने भीतर के अहंकार, मोह, और इच्छाओं से मुक्त होता है, तब वह नैतिकता के पथ पर अग्रसर होता है। यह ग्रंथ यह भी सिखाता है कि केवल बाहरी नियमों का पालन

¹⁹⁰गीता 6/35

करना पर्याप्त नहीं है, बल्कि व्यक्ति को अपने भीतर की शुद्धता को बनाए रखना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि नैतिकता का आधार कर्तव्य पालन और निष्काम कर्म है। गीता में यज्ञ भावना (समाज और मानवता के हित में कर्म) को नैतिकता का मूल बताया गया है। इसके अनुसार, व्यक्ति को अपने कर्म केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज के कल्याण के लिए करने चाहिए।

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥"¹⁹¹

3. शिक्षा का उद्देश्य

आधुनिक शिक्षा प्रणाली अक्सर बौद्धिक विकास और रोजगार पर केंद्रित होती है, जबकि योग-वासिष्ठ और गीता शिक्षा को आत्म-ज्ञान, चरित्र निर्माण, और सामाजिक जिम्मेदारी का माध्यम मानते हैं।

योग-वासिष्ठ के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं है, बल्कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करना और जीवन के अंतिम सत्य को समझना है। यह शिक्षा व्यक्ति को वैराग्य और समत्व भाव के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा को केवल सांसारिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रखा गया है। गीता सिखाती है कि शिक्षा का उद्देश्य समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आत्मानुशासन, और नैतिकता को बढ़ावा देना है। गीता का यह दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा में मूल्यों और नैतिकता को शामिल करने की आवश्यकता को उजागर करता है।

4. जीवन के द्वंद्वों का समाधान

आधुनिक जीवन में लोग सुख-दुख, लाभ-हानि, और सफलता-असफलता जैसी परिस्थितियों के द्वंद्वों में फंसे रहते हैं। ये द्वंद्व मानसिक अशांति और असंतोष का कारण

¹⁹¹गीता 3/9

बनते हैं। योग-वासिष्ठ और गीता इन द्वंद्वों के प्रति समभाव विकसित करने की शिक्षा देते हैं।

योग-वासिष्ठ सिखाता है कि समत्व भाव (समानता का भाव) व्यक्ति को जीवन के द्वंद्वों से मुक्त करता है। यह भाव व्यक्ति को मानसिक स्थिरता प्रदान करता है और उसे परिस्थितियों से अप्रभावित बनाता है।

"चित्तं हि प्रज्ञया योगे ध्यानं ब्रह्मणि पूरयेत्।

अन्तःशुद्धिर्मनो नष्टं ध्यानमेतत्समाप्तिमेत्॥"

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि सफलता और विफलता, सुख और दुख, और लाभ और हानि में समानता का भाव रखना ही सच्चा योग है। गीता के अनुसार, जब व्यक्ति इन द्वंद्वों से ऊपर उठ जाता है, तब उसे मानसिक शांति प्राप्त होती है।

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"¹⁹²

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं आधुनिक समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं। ये ग्रंथ मानसिक शांति, नैतिकता, और जीवन के द्वंद्वों के समाधान के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इनकी शिक्षाएं यह सिखाती हैं कि शिक्षा केवल बाहरी ज्ञान अर्जित करने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह आत्म-ज्ञान, नैतिकता, और सामाजिक जिम्मेदारी का साधन भी है। आज के युग में, जब मानसिक तनाव, नैतिक पतन, और सामाजिक विघटन तेजी से बढ़ रहे हैं, ये शिक्षाएं व्यक्ति और समाज दोनों को संतुलित और स्थिर बनाए रखने में सहायक हो सकती हैं। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा आज के समय में अत्यंत प्रासंगिक है। ये ग्रंथ मानसिक शांति, नैतिकता, और सामाजिक संतुलन के माध्यम से जीवन को सार्थक बनाने का मार्ग प्रदान करते हैं। आधुनिक युग की चुनौतियों, जैसे मानसिक तनाव, नैतिक पतन, और सामाजिक विघटन का समाधान इन ग्रंथों में निहित शिक्षाओं के माध्यम से प्राप्त

किया जा सकता है। यह शिक्षा न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामूहिक कल्याण के लिए भी उपयोगी है।

निष्कर्ष

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे अद्भुत स्तंभ हैं, जो मानव जीवन के हर आयाम को गहराई से समझाते हैं। ये ग्रंथ केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन नहीं प्रदान करते, बल्कि शिक्षा, नैतिकता, और सामाजिक उत्तरदायित्व का एक व्यापक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करते हैं। इनकी शिक्षाएं बताती हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं है, बल्कि यह आत्म-ज्ञान, चरित्र निर्माण, और सामाजिक समरसता का भी माध्यम है।

योग-वासिष्ठ में ध्यान, वैराग्य, और आत्मा की शुद्धता पर बल दिया गया है। यह व्यक्ति को अपने भीतर झांकने, आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचानने, और संसार के द्वंद्वों से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। इसके द्वारा जीवन की जटिलताओं और मानसिक संघर्षों का समाधान मिलता है। यह आधुनिक युग में, जहां मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा, और भौतिकता का बोलबाला है, व्यक्ति को मानसिक स्थिरता और आंतरिक शांति प्रदान करने का मार्ग दिखाता है। इसके अतिरिक्त, योग-वासिष्ठ में समत्व भाव और मोह के त्याग का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह वर्तमान समय में सामाजिक असमानता, भेदभाव, और असंतोष को समाप्त कर एक संतुलित समाज की स्थापना में सहायक हो सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता निष्काम कर्म, समत्व भाव, और आत्म-नियंत्रण जैसे सिद्धांतों के माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों को नैतिकता और कर्तव्यनिष्ठा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। गीता में यह बताया गया है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, फल की आसक्ति को त्यागकर निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए। इस शिक्षा की प्रासंगिकता आज के दौर में विशेष रूप से दिखाई देती है, जब लोग केवल परिणामों के प्रति आसक्त होकर अपने मूल्यों और कर्तव्यों को भूलते जा रहे हैं। गीता का यज्ञ भावना का सिद्धांत यह सिखाता है कि कर्म केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि समाज और मानवता के कल्याण के लिए होना चाहिए।

इन ग्रंथों में मानसिक शांति और स्थिरता के लिए ध्यान और आत्म-नियंत्रण पर जो बल दिया गया है, वह आधुनिक जीवन में अत्यधिक प्रासंगिक है। आज, जब लोग बाहरी आकर्षणों और तनावपूर्ण परिस्थितियों से घिरे हुए हैं, इन ग्रंथों की शिक्षा उन्हें आंतरिक शांति और स्थिरता प्राप्त करने का मार्ग प्रदान करती है। गीता में मन और इंद्रियों को नियंत्रित करने की प्रक्रिया और योग-वासिष्ठ में आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए ध्यान की विधि, दोनों ही व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए उपयोगी हैं।

इसके अतिरिक्त, ये ग्रंथ नैतिकता के पुनर्स्थापन और सामाजिक समरसता की स्थापना में भी सहायक हैं। गीता और योग-वासिष्ठ दोनों यह सिखाते हैं कि शिक्षा केवल बाहरी ज्ञान अर्जित करने का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को आत्मा की गहराई में जाकर जीवन के उद्देश्य को समझने और उसे साकार करने का मार्ग दिखाती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा न केवल प्राचीन काल में प्रासंगिक थी, बल्कि आज के युग में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये शिक्षाएं व्यक्तिगत और सामाजिक विकास, नैतिक मूल्यों के पुनरुत्थान, और आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। इनकी प्रासंगिकता आज के युग में और भी अधिक हो जाती है, जब व्यक्ति बाहरी दुनिया के तनाव और अंतर्द्वंद्वों से संघर्ष कर रहा है। ये ग्रंथ शिक्षा को एक समग्रदृष्टिकोण प्रदान करते हैं, जो जीवन के हर पहलू को संतुलित और सार्थक बनाने में सहायक है।

पंचम अध्याय
उपसंहार एवं सुझाव

पंचम अध्याय:

उपसंहार एवं सुझाव

"योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्वों के समीक्षात्मक अध्ययन" का निष्कर्षात्मक भाग है, जो पूरे शोध अध्ययन का सार प्रस्तुत करता है। यह अध्याय शोध के निष्कर्षों को एक व्यवस्थित ढांचे में प्रस्तुत करते हुए इन शैक्षिक तत्वों की उपयोगिता, प्रासंगिकता और आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उनके समावेश की संभावनाओं को रेखांकित किया गया है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यह दर्शाना है कि कैसे योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक सिद्धांत न केवल प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के स्तंभ रहे हैं, बल्कि आज भी शिक्षा, नैतिकता, और सामाजिक विकास के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं। इन ग्रंथों में निहित आत्म-ज्ञान, ज्ञान की विधियाँ, ध्यान, निष्काम कर्म, गुरु-शिष्य परंपरा, और समत्व भाव जैसे तत्व आधुनिक शिक्षा प्रणाली को एक नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। इस अध्याय में शिक्षा के शाश्वत और समग्र स्वरूप पर जोर देते हुए यह बताया गया है कि योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं कैसे मानसिक शांति, नैतिकता, और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती हैं। यह न केवल छात्रों और शिक्षकों के व्यक्तिगत विकास के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि एक संतुलित और नैतिक समाज की स्थापना के लिए भी आवश्यक है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की सीमाओं, जैसे मूल्य शिक्षा की कमी, मानसिक तनाव, और रोजगार-केंद्रित दृष्टिकोण को संबोधित करते हुए, इस अध्याय में सुझाव दिए गए हैं कि इन शैक्षिक तत्वों को वर्तमान शिक्षा में कैसे समावेशित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह अध्याय भविष्य के अनुसंधान की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है, जिससे योग-वासिष्ठ और गीता के शैक्षिक सिद्धांतों को और गहराई से समझा और लागू किया जा सके। इस प्रकार, पंचम अध्याय पूरे शोध का एक समग्र और निष्कर्षात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो न केवल भारतीय शिक्षा परंपरा की गहराई और प्रासंगिकता को रेखांकित करता है, बल्कि इसे वर्तमान और भविष्य की शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने की आवश्यकता को भी स्पष्ट करता है।

यह अध्याय शिक्षा को एक उद्देश्यपूर्ण, समग्र और शाश्वत दृष्टिकोण प्रदान करने का मार्गदर्शक है।

5.1 शोध सारांश

यह शोध योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शैक्षिक तत्वों का गहन विश्लेषण करते हुए उनके दार्शनिक और व्यावहारिक आयामों को उजागर करता है। अध्ययन का उद्देश्य इन ग्रंथों की शिक्षाओं की प्रासंगिकता को आधुनिक शिक्षा प्रणाली और समाज के संदर्भ में स्थापित करना है। शोध के चारों अध्यायों के निष्कर्षों के आधार पर यह स्पष्ट होता है, कि भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित शिक्षा के सिद्धांत व शिक्षण विधियाँ न केवल प्राचीन समय में, बल्कि आज के युग में समाज के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं।

प्रथम अध्याय में योग-वासिष्ठ और गीता के शैक्षिक दृष्टिकोण की ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई। यह अध्याय आत्म-ज्ञान, नैतिकता, और आध्यात्मिकता को शिक्षा के केंद्रीय उद्देश्य के रूप में स्थापित करता है। भारतीय शिक्षा पद्धति में इन ग्रंथों की प्रासंगिकता को दर्शाते हुए आधुनिक शिक्षा प्रणाली में मूल्यों और नैतिकता के पुनर्स्थापन की आवश्यकता को रेखांकित किया गया।

द्वितीय अध्याय में योग-वासिष्ठ के शैक्षिक तत्वों का विश्लेषण किया गया, जिसमें आत्म-ज्ञान को मोक्ष का मार्ग और शिक्षा का परम उद्देश्य बताया गया। गुरु-शिष्य परंपरा, मानसिक स्थिरता, और ध्यान जैसे तत्वों पर बल देते हुए यह अध्याय में कहा गया है कि योग-वासिष्ठ की शिक्षाएं व्यक्ति को मानसिक और आत्मिक रूप से संतुलित बनाने का मार्ग प्रदान करती हैं। यह ग्रंथ शिक्षण में कथा और दृष्टान्तों के माध्यम से जटिल विचारों को सरल और प्रभावी तरीके से प्रस्तुत करने की विधि पर जोर देती है।

तृतीय अध्याय में श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक सिद्धांतों का गहन विवेचन किया गया। गीता आत्म-ज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ, गुरु-शिष्य संवाद, निष्काम कर्म, और

भक्ति के माध्यम से व्यक्ति और समाज के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। गीता में नैतिकता, कर्तव्य पालन, और ध्यान को शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। निष्काम कर्म का सिद्धांत, समत्व भाव, और यज्ञ भावना, व्यक्ति को जीवन के द्वंद्वों से ऊपर उठने और समाज के प्रति जिम्मेदारी निभाने के लिए प्रेरित करती हैं।

चतुर्थ अध्याय में दोनों ग्रंथों में वर्णित शैक्षिक तत्वों की आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता पर चर्चा की गई। आत्म-ज्ञान, गुरु-शिष्य परंपरा, कर्म योग, और ध्यान जैसे सिद्धांत आज के समय में मानसिक स्वास्थ्य, नैतिकता, और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में सहायक हैं। योग-वासिष्ठ और गीता यह सिखाती हैं कि शिक्षा केवल बौद्धिक विकास का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, और आत्मिक विकास का मार्ग है।

इन अध्यायों के निष्कर्षों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं आधुनिक शिक्षा प्रणाली के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। ये ग्रंथ मानसिक शांति, नैतिकता, और सामाजिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने के लिए प्रेरणादायक स्रोत के रूप में हैं। इनकी शिक्षाएं व्यक्तित्व के संतुलित विकास, जीवन के द्वंद्वों से मुक्ति पाने, और समाज में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं। यह शोध आधुनिक शिक्षा प्रणाली और भारतीय ज्ञान परंपरा के बीच एक सेतु का कार्य करता है, जो शिक्षा को एक व्यापक और गहन दृष्टिकोण प्रदान करता है। इन अध्यायों के माध्यम से निम्न बिन्दुओं की विवेचना की गयी है -

1. आत्म-ज्ञान-

शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य आत्म-ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति है, जो व्यक्ति को जीवन के गूढ़ अर्थ को समझने और अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करने की प्रेरणा देता है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता दोनों में आत्म-ज्ञान को शिक्षा का केंद्रीय तत्व माना गया है, जो आत्म-ज्ञान की महत्ता को उजागर करता है। अर्थात् श्रद्धावान

(आस्थावान) व्यक्ति जो अपने इंद्रियों को संयमित रखता है और ज्ञान प्राप्ति के प्रति तत्पर रहता है, वह आत्म-ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद, वह शीघ्र ही परम शांति को प्राप्त कर लेता है। आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रद्धा, संयम, और समर्पण को आवश्यक मानता है। साथ ही, यह दर्शाता है कि आत्म-ज्ञान से मानसिक शांति और संतुलन की प्राप्ति होती है, जो आज के समय में अत्यंत प्रासंगिक है। आत्म-ज्ञान केवल बौद्धिक ज्ञान तक ही सीमित नहीं है, यह व्यक्ति को मानसिक शांति, नैतिकता, और आंतरिक स्थिरता प्रदान करता है। आत्म-ज्ञान व्यक्ति को मोह और अज्ञान से मुक्त कर उसके जीवन में संतोष, समता, और संतुलन का भाव लाता है। आज के समय में, जब लोग बाहरी उपलब्धियों और भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में अपने आंतरिक संतुलन को खो रहे हैं, उसको सही रखने के लिए आत्म-ज्ञान की यह शिक्षा और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

2. गुरु-शिष्य परंपरा-

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा प्रणाली का आदर्श है, जो केवल शैक्षिक ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि यह एक गहन संबंध को दर्शाता है। योग-वासिष्ठ में गुरु वासिष्ठ और भगवान राम का संवाद और श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कृष्ण और अर्जुन का संवाद इस परंपरा की गहराई को प्रकट करते हैं। गुरु-शिष्य संबंध में गुरु का उद्देश्य केवल शिक्षा प्रदान करना नहीं, बल्कि शिष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना है। यह परंपरा शिष्य को नैतिकता, आत्म-अनुशासन, और समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध कराती है। श्रीमद्भगवद्गीता में गुरु-शिष्य परंपरा के महत्व को बताते हैं भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि ज्ञान को प्राप्त करने के लिए विनम्रता, जिज्ञासा, और सेवा का मार्ग अपनाना चाहिए। जो तत्व (सत्य) को जानते हैं, वे ऐसे गुरु तुम्हें ज्ञान प्रदान करेंगे। यह श्लोक गुरु-शिष्य परंपरा के महत्व और गुरु के प्रति श्रद्धा, विनम्रता और सेवा भाव को रेखांकित करता है। गुरु के माध्यम से ही शिष्य को आत्मा, धर्म, और जीवन के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। आज के औपचारिक शिक्षण तंत्र में, जहां शिक्षक और छात्र के बीच संबंध यांत्रिक हो गए हैं,

गुरु-शिष्य परंपरा का आदर्श रूप शिक्षा को प्रभावी और प्रेरणादायक बनाने में सहायक हो सकता है।

3. कर्मयोग-

कर्म योग श्रीमद्भगवद्गीता और योग-वासिष्ठ दोनों में एक केंद्रीय सिद्धांत है, जो कर्तव्य पालन, निष्कामता, और सामाजिक जिम्मेदारी पर जोर देता है। गीता में निष्काम कर्म का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अपने कार्य का फल प्राप्त करने की आसक्ति के बिना अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। यह शिक्षा न केवल मानसिक शांति और स्थिरता प्रदान करती है, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध भी कराती है। अर्थात् तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फलों में नहीं। इसलिए तुम कर्मों के फल के कारण मत बनो और न ही कर्म न करने में आसक्त हो। यह निष्काम कर्मयोग का मूल सिद्धांत प्रस्तुत करता है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यह सिखाते हैं कि हमें अपने कर्तव्य का पालन पूरी निष्ठा से करना चाहिए, लेकिन फल की इच्छा या आसक्ति से मुक्त रहना चाहिए। कर्म योग के माध्यम से आत्मिक शांति और समाज के प्रति जिम्मेदारी का निर्वहन संभव होता है।

योग-वासिष्ठ में कर्म को वैराग्य और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम बताया गया है। आज के युग में, जब लोग परिणाम-आधारित मानसिकता में फंसे हुए हैं, कर्म को फल की इच्छा से मुक्त होकर किया जाना चाहिए। जब व्यक्ति फल की आसक्ति छोड़ देता है, तो वह संसार के बंधन से मुक्त हो सकता है। अर्थात् जब व्यक्ति कर्म करते हुए भी उसके फल की आकांक्षा नहीं रखता, तो वह कर्म करते हुए भी शांति और मुक्ति का अनुभव करता है। कर्म योग की यह शिक्षा उन्हें कर्तव्य भावना और नैतिकता के पथ पर चलने की प्रेरणा देती है।

4. ध्यान और मानसिक स्थिरता -

ध्यान और मानसिक स्थिरता शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य हैं। योग-वासिष्ठ और गीता दोनों में ध्यान को आत्म-ज्ञान प्राप्त करने और मन को स्थिर रखने का साधन बताया गया है। ध्यान व्यक्ति को अपने चंचल मन और इंद्रियों को

नियंत्रित करने में मदद करता है और उसे मानसिक शांति और स्थिरता प्रदान करता है। गीता में ध्यान को अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से सशक्त बनाया गया है, जबकि योग-वासिष्ठ ध्यान के माध्यम से आत्मा और ब्रह्म के एकत्व का अनुभव कराती है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि सच्चे ज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते, और चांडाल (नीच माने जाने वाले व्यक्ति) में समान दृष्टि रखते हैं। यह श्लोक बताता है कि शिक्षा और ज्ञान का उद्देश्य केवल बौद्धिक क्षमता को बढ़ाना नहीं है, बल्कि विनम्रता, समानता, और मानवता का विकास करना भी है। योग-वासिष्ठ में ध्यान के विषय में कहा गया है कि अर्थात् कर्म का उद्देश्य चित्त (मन) की शुद्धि है, न कि बाहरी वस्तुओं की प्राप्ति। आत्म-ज्ञान और सत्य की सिद्धि केवल विचार और विवेक से होती है, कर्म से नहीं। आज के तनावपूर्ण और प्रतिस्पर्धात्मक युग में, ध्यान और मानसिक स्थिरता की यह शिक्षा अत्यंत प्रासंगिक है, जो व्यक्ति को तनावमुक्त और शांत जीवन जीने में मदद कर सकती है।

5. आधुनिक शिक्षा प्रणाली की चुनौतियां -

आधुनिक शिक्षा प्रणाली मुख्यतः बौद्धिक विकास और रोजगार पर केंद्रित है, लेकिन इसमें नैतिकता, आत्म-अनुशासन, और सामाजिक जिम्मेदारी की उपेक्षा की गई है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं इन चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करती हैं। ये ग्रंथ शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि आत्म-विकास और समाज कल्याण का माध्यम मानते हैं। आज की शिक्षा प्रणाली में इन शिक्षाओं को शामिल करने से मूल्य आधारित शिक्षा को पुनर्स्थापित किया जा सकता है, जो मानसिक स्वास्थ्य, नैतिकता, और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में सहायक होगी। इन ग्रंथों की शिक्षाएं एक समग्र शिक्षा दृष्टिकोण प्रदान करती हैं, जो व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए आवश्यक है।

5.2 शैक्षिक तत्वों की उपादेयता

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्वों की उपादेयता निम्नलिखित रूप से देखी जा सकती है:

1. मानसिक स्वास्थ्य और स्थिरता -

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यान और आत्म-ज्ञान को मानसिक शांति और स्थिरता का महत्वपूर्ण साधन बताया गया है। ध्यान के माध्यम से मन की चंचलता को समाप्त किया जा सकता है, जिससे व्यक्ति मानसिक तनाव और चिंता से मुक्त हो सकता है। बाहरी विषयों में आसक्ति छोड़कर आत्मा में स्थित व्यक्ति स्थायी सुख प्राप्त करता है। आत्म-ज्ञान, व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने में सहायता करता है, जिससे उसे मानसिक स्थिरता और आंतरिक संतोष प्राप्त होता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में यह तत्व छात्रों और शिक्षकों दोनों के लिए उपयोगी है, क्योंकि यह न केवल उनकी मानसिक क्षमताओं को बढ़ाता है, बल्कि तनाव और प्रतिस्पर्धा से निपटने में भी सहायक है। जो सुख और दुख में समभाव रखता है और धीरज नहीं छोड़ता, वही अमृतत्व (मोक्ष) के योग्य बनता है।

2. नैतिक शिक्षा -

श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्म और यज्ञ भावना जैसे नैतिक सिद्धांतों पर बल दिया गया है। ये सिद्धांत छात्रों को अपने कार्यों में समर्पण और ईमानदारी के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। निष्काम कर्म का अर्थ है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन फल की चिंता किए बिना करना चाहिए, जिससे मानसिक शांति और नैतिकता का विकास होता है। कहा गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि यज्ञरूपी है। जो व्यक्ति यज्ञ भावना से जीवन जीता है, वही परम आनंद प्राप्त करता है। यज्ञ भावना, सामूहिक भलाई और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करती है। आज के समाज में, जहां नैतिकता का ह्रास हो रहा है, ये सिद्धांत व्यक्तियों और समुदायों को नैतिक और जिम्मेदार बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

3. शिक्षा का समग्र दृष्टिकोण -

योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि इसे नैतिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक विकास के साधन के रूप में प्रस्तुत करती हैं। ये ग्रंथ आत्म-ज्ञान, ध्यान, और नैतिकता के माध्यम से एक संतुलित और समग्र शिक्षा प्रणाली की वकालत करते हैं। इस दृष्टिकोण से शिक्षा केवल सूचना के संचरण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह छात्रों के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को विकसित करने में सहायक होती है। मनुष्य को स्वयं अपने मन को ऊपर उठाना चाहिए और उसे नीचे गिरने नहीं देना चाहिए। स्वयं ही अपने मित्र और शत्रु बनने की क्षमता रखता है। शिक्षा में आत्म-निर्भरता, आत्म-प्रेरणा, और आत्म-नियंत्रण के महत्व को रेखांकित करता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली, जो अक्सर केवल रोजगार केंद्रित होती है, के लिए यह दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण पूरक हो सकता है।

4. गुरु-शिष्य परंपरा

गुरु-शिष्य परंपरा, शिक्षा में एक जीवंत और प्रेरक संबंध स्थापित करने के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। योग-वासिष्ठ में गुरु वासिष्ठ और भगवान राम का संवाद और गीता में भगवान कृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद इस परंपरा का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं। यह परंपरा सिखाती है कि शिक्षक और छात्र के बीच आपसी विश्वास, सम्मान और समर्पण का होना आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली, जहां शिक्षक और छात्र के बीच का संबंध औपचारिक और यांत्रिक हो गया है, इस परंपरा को अपनाकर अधिक प्रभावी और प्रेरणादायक बन सकती है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता में यह परंपरा स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है। यहाँ कुछ प्रमुख संदर्भ दिए गए हैं गुरु ही ज्ञान का परम स्रोत और शांति का आधार हैं। जो गुरु के प्रति निष्ठावान है, उसे किसी भी संशय का भय नहीं। आप ही मेरे परम गुरु और मेरी मुक्ति का मार्ग हैं। आपकी वाणी ही मेरे लिए सर्वोच्च सत्य है। संसार की सारी क्रियाएँ मन से उत्पन्न होती हैं। मन की शुद्धता से ही शिष्य सत्य और शांति को प्राप्त कर सकता है। योग-वासिष्ठ और गीता की गुरु-शिष्य परंपरा यह सिखाती है कि शिक्षा केवल सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि यह एक गहन संबंध है। यह परंपरा आधुनिक शिक्षा प्रणाली में एक नई दिशा दे सकती है, जिससे शिक्षा प्रेरणादायक और प्रभावी बन सकती है।

5. समत्व भाव और वैराग्य -

योग-वासिष्ठ और गीता में समत्व भाव और वैराग्य को जीवन के संतुलन और स्थिरता के लिए आवश्यक बताया गया है। समत्व भाव, सफलता और असफलता, लाभ और हानि, सुख और दुख जैसी परिस्थितियों में समानता बनाए रखने की शिक्षा देता है। विद्या और विनय से सम्पन्न ज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल (श्वपाक) में भी समानता का भाव रखते हैं। यह श्लोक सिखाता है कि सच्चा ज्ञानी वही है जो सभी जीवों को समान दृष्टि से देखता है, चाहे उनका सामाजिक या भौतिक रूप कैसा भी हो। वैराग्य, व्यक्ति को भौतिक सुखों और मोह से मुक्त कर, आत्मा के उच्चतम स्वरूप को पहचानने में सहायता करता है। छात्रों के लिए यह तत्व जीवन की चुनौतियों का सामना करने, मानसिक संतुलन बनाए रखने, और तनावपूर्ण परिस्थितियों से निपटने में सहायक हो सकता है। आधुनिक शिक्षा में, यह तत्व छात्रों को आत्म-विश्वास और आंतरिक स्थिरता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

6. सामाजिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारी -

गीता की यज्ञ भावना और योग-वासिष्ठ का समत्व भाव सामाजिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारी को बढ़ावा देते हैं। यह शिक्षा छात्रों को सामुदायिक सेवा, पर्यावरण संरक्षण, और समाज कल्याण के कार्यों में संलग्न होने के लिए प्रेरित करती है। यह न केवल एक बेहतर समाज के निर्माण में सहायक है, बल्कि छात्रों को जिम्मेदार नागरिक भी बनाती है।

7. ध्यान और योग का अनुप्रयोग

ध्यान और योग के शैक्षिक तत्व छात्रों की एकाग्रता, रचनात्मकता, और समस्या समाधान कौशल को बढ़ाने में सहायक हैं। यह छात्रों को तनावमुक्त वातावरण में सीखने और बेहतर प्रदर्शन करने में सक्षम बनाता है। ध्यान और योग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी अत्यंत लाभकारी हैं। योगी, अपने मन को स्थिर करके आत्मा में ध्यान लगाए, और इस प्रकार परम शांति को प्राप्त करें। छात्रों को ध्यान के माध्यम से मन की एकाग्रता बढ़ाने और आंतरिक शांति प्राप्त करने का महत्व सिखाता

है। निरंतर अभ्यास के द्वारा मन शुद्ध और स्थिर होता है। यह छात्रों को ध्यान और योग को नियमित अभ्यास के रूप में अपनाने की प्रेरणा देता है ध्यान और योग, छात्रों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उनके शैक्षिक प्रदर्शन को भी सुधारते हैं। गीता और योग-वासिष्ठ के उपदेश आधुनिक शिक्षा प्रणाली में ध्यान और योग को शामिल करने की प्रेरणा देते हैं, जो एक समग्र और संतुलित व्यक्तित्व निर्माण में सहायक हो सकता है।

9. नेतृत्व और नैतिकता के गुणों का विकास

गीता के निष्काम कर्म और योग-वासिष्ठ के वैराग्य सिद्धांत छात्रों में नेतृत्व और नैतिकता के गुणों का विकास करते हैं। यह उन्हें न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में, बल्कि सामाजिक और पेशेवर जीवन में भी प्रभावी नेतृत्वकर्ता बनने में मदद करता है। वैराग्य से मन शुद्ध और शांत होता है, और विवेकशीलता से आत्मा में स्थिरता आती है। वैराग्य और विवेक नेतृत्वकर्ता को सही निर्णय लेने और नैतिक मूल्यों के प्रति समर्पित रहने की प्रेरणा देता है। गीता का निष्काम कर्म और योग-वासिष्ठ का वैराग्य छात्रों और व्यक्तियों में एक प्रभावी नेतृत्वकर्ता बनने के लिए आवश्यक गुण, जैसे निःस्वार्थता, धैर्य, विवेकशीलता, और नैतिकता विकसित करने में सहायक हैं। ये सिद्धांत आधुनिक जीवन और पेशेवर वातावरण में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

10. शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य

योग-वासिष्ठ और गीता भारतीय शिक्षा परंपरा के समृद्ध तत्वों को प्रस्तुत करते हैं। यह छात्रों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने और भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने में सहायक हैं। यह शिक्षा को पश्चिमी दृष्टिकोण से हटाकर एक समग्र भारतीय दृष्टिकोण प्रदान करती है। यह सारा विश्व ब्रह्म का ही स्वरूप है। ज्ञान द्वारा ही इस सत्य को समझा जा सकता है। यह श्लोक छात्रों को जीवन और शिक्षा को एक समग्र दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देता है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंनिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥¹⁹³

¹⁹³गीता 4.38

इस संसार में ज्ञान से पवित्र कुछ भी नहीं है। योग में सिद्ध व्यक्ति समय आने पर आत्मा में इसका अनुभव करता है। यह श्लोक शिक्षा के महत्व को रेखांकित करता है, जो छात्रों को पवित्रता और आत्मा की उच्च स्थिति तक पहुँचने में सहायक है। योग-वासिष्ठ और गीता भारतीय शिक्षा परंपरा को समग्रता से समझने और अपनाने की प्रेरणा देते हैं। ये ग्रंथ छात्रों को न केवल सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हैं, बल्कि शिक्षा को नैतिकता, आत्म-ज्ञान, और सामाजिक जिम्मेदारी से भी जोड़ते हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भी एक नई दिशा प्रदान कर सकता है।

11. मानसिक विकारों का समाधान

ध्यान और योग के अभ्यास के माध्यम से छात्रों और शिक्षकों के बीच बढ़ रहे मानसिक विकारों, जैसे अवसाद और चिंता, को कम किया जा सकता है। यह तत्व मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए एक प्रभावी उपकरण है। श्रीमद्भगवद्गीता और योग-वासिष्ठ में मानसिक शांति, आत्म-नियंत्रण, और आंतरिक संतुलन के लिए किया गया है। ये ग्रंथ दर्शाते हैं कि ध्यान और योग मन को स्थिर और शुद्ध करने में सहायक हैं, जो मानसिक विकारों, जैसे कि अवसाद और चिंता, को कम करने में प्रभावी हो सकते हैं। जिस योगी का मन शांत है, जिसकी प्रवृत्तियाँ नियंत्रित हैं, उसे परम सुख प्राप्त होता है। ध्यान के माध्यम से मानसिक शांति और सुख की प्राप्ति होती है, जो अवसाद और चिंता को कम करता है। गीता और योग-वासिष्ठ दोनों ग्रंथ मानसिक स्वास्थ्य के लिए ध्यान और योग को एक प्रभावी उपाय के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ये न केवल मन को शांत और स्थिर करते हैं, बल्कि अवसाद, चिंता, और अन्य मानसिक विकारों को भी नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। इनका उपयोग छात्रों और शिक्षकों के लिए एक स्वस्थ और सकारात्मक वातावरण तैयार करने में किया जा सकता है।

13. भविष्य की शिक्षा का आधार

योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं भविष्य की शिक्षा प्रणाली के लिए एक मजबूत आधार प्रदान कर सकती हैं। यह शिक्षा प्रणाली को केवल आज के संदर्भ में नहीं, बल्कि दीर्घकालिक दृष्टिकोण से समृद्ध और उपयोगी बनाती हैं।

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक तत्व शिक्षा को समग्र, मूल्य-आधारित, और उद्देश्यपूर्ण बनाने में सहायक हैं। यह मानसिक, नैतिक, और सामाजिक विकास के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। इन तत्वों का आधुनिक शिक्षा में समावेश न केवल व्यक्तिगत, बल्कि सामूहिक उत्थान में भी सहायक होगा।

5.3 वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सुझाव

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इन शैक्षिक तत्वों को शामिल कर इसे अधिक प्रभावी और समग्र बनाया जा सकता है:

1. ध्यान और योग को पाठ्यक्रम में शामिल करना -

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में ध्यान और योग को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। ये न केवल छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं, बल्कि उनकी एकाग्रता और आत्म-नियंत्रण को भी बढ़ाते हैं। योग-वासिष्ठ और गीता में ध्यान को मानसिक स्थिरता और आत्म-ज्ञान प्राप्ति का साधन बताया गया है। आज, जब छात्रों को अत्यधिक प्रतिस्पर्धा और तनाव का सामना करना पड़ता है, योग और ध्यान उन्हें मानसिक संतुलन और आंतरिक शांति प्रदान कर सकते हैं। ये अभ्यास न केवल उनके व्यक्तिगत विकास में सहायक होंगे, बल्कि उन्हें जीवन के तनावपूर्ण क्षणों का सामना करने के लिए भी तैयार करेंगे।

2. नैतिक शिक्षा पर बल-

की शिक्षा प्रणाली की प्रमुख चिंताओं में से एक है। श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्म, यज्ञ भावना, और समत्व भाव जैसे नैतिक सिद्धांतों पर बल दिया गया है, जो छात्रों को जिम्मेदारी और ईमानदारी का पाठ पढ़ाते हैं। शिक्षा प्रणाली में नैतिक शिक्षा को प्राथमिकता देकर छात्रों में सहानुभूति, परोपकार, और समाज के प्रति जिम्मेदारी का विकास किया जा सकता है। यह केवल उनके व्यक्तिगत जीवन को संतुलित बनाएगा, बल्कि समाज को भी नैतिकता और मूल्यों के पुनर्निर्माण में मदद करेगा।

3. गुरु-शिष्य संबंध को पुनर्जीवित करना -

आधुनिक शिक्षा में शिक्षक और छात्र के बीच का संबंध औपचारिकता और तकनीकी माध्यमों तक सीमित हो गया है। योग-वासिष्ठ और गीता में गुरु-शिष्य परंपरा को प्रेरक और मार्गदर्शक संबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसे पुनर्जीवित करने के लिए शिक्षकों को छात्रों के साथ एक भरोसेमंद और सहयोगात्मक संबंध स्थापित करना चाहिए। यह संबंध छात्रों को न केवल शिक्षण प्रक्रिया में अधिक रुचि लेने के लिए प्रेरित करेगा, बल्कि उनके व्यक्तित्व के समग्र विकास में भी सहायक होगा।

4. आत्म-ज्ञान को शिक्षा का उद्देश्य बनाना -

वर्तमान शिक्षा प्रणाली अक्सर शिक्षा को केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन मानती है। योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं आत्म-ज्ञान को शिक्षा का परम उद्देश्य मानती हैं। शिक्षा को इस दृष्टिकोण से लागू किया जाना चाहिए कि यह छात्रों को अपने जीवन के उद्देश्य को समझने और आत्मा की गहराई में झांकने का अवसर प्रदान करे। शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास तक सीमित न रखकर, इसे आत्मिक और नैतिक विकास का साधन बनाया जाना चाहिए। यह छात्रों को एक संतुलित और सार्थक जीवन जीने के लिए प्रेरित करेगा।

5. समत्व भाव का विकास -

गीता में समत्व भाव को मानसिक स्थिरता और शांति का आधार बताया गया है। छात्रों को यह सिखाना आवश्यक है कि जीवन में सुख-दुख, सफलता-असफलता, और लाभ-हानि जैसी परिस्थितियों का सामना समान भाव से किया जाए। इस दृष्टिकोण से शिक्षा छात्रों को मानसिक रूप से सशक्त और संतुलित बनाएगी। समत्व भाव का अभ्यास उन्हें न केवल जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करेगा, बल्कि उनके भीतर आत्मविश्वास और आत्मनियंत्रण का विकास भी करेगा। यह गुण उन्हें जीवन के हर पहलू में सफलता और संतोष प्राप्त करने में सहायक होगा।

6. सामाजिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारी

यज्ञ भावना के आधार पर, शिक्षा प्रणाली में छात्रों को समाज और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। यह छात्रों को सामुदायिक सेवा, पर्यावरण संरक्षण, और सामाजिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करेगा।

7. सांस्कृतिक मूल्यों को पाठ्यक्रम में शामिल करना

भारतीय ज्ञान परंपरा के सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना चाहिए। यह छात्रों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने के साथ-साथ वैश्व नागरिक बनने के लिए तैयार करेगा।

8. मूल्य आधारित मूल्यांकन प्रणाली

परीक्षा आधारित मूल्यांकन प्रणाली में सुधार कर मूल्य आधारित मूल्यांकन प्रणाली अपनाई जानी चाहिए। इसमें छात्रों की नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी, और आत्म-विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह शिक्षा प्रणाली को अधिक समग्र और संतुलित बनाएगा।

9. सृजनात्मकता और नवाचार को प्रोत्साहन

शिक्षा प्रणाली में सृजनात्मकता और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए लचीले पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों को अपनाया जाना चाहिए। छात्रों को स्वतंत्र रूप से सोचने और अपने विचारों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

10. कर्मयोग आधारित शिक्षण पद्धतियां

गीता के निष्काम कर्म सिद्धांत को शिक्षण प्रक्रिया में शामिल करना चाहिए। शिक्षक और छात्र दोनों को अपने कार्यों में पूर्णता प्राप्त करने और परिणामों के बारे में चिंतित हुए बिना अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

11. मानसिक स्वास्थ्य सहायता सेवाओं का प्रावधान

शिक्षा प्रणाली में मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को शामिल किया जाना चाहिए। छात्रों और शिक्षकों को नियमित रूप से काउंसलिंग और समर्थन प्रदान करना उनकी उत्पादकता और भावनात्मक भलाई को बढ़ा सकता है।

12. वैश्विक और स्थानीय दृष्टिकोण का समन्वय

शिक्षा प्रणाली को वैश्विक दृष्टिकोण के साथ स्थानीय परंपराओं और मूल्यों को जोड़ने पर ध्यान देना चाहिए। यह छात्रों को न केवल वैश्विक मुद्दों के प्रति जागरूक बनाएगा, बल्कि उनकी स्थानीय सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूत करेगा।

13. शैक्षिक तत्वों का बहुआयामी अनुप्रयोग

शिक्षा प्रणाली को बहुआयामी बनाकर छात्रों को न केवल विषयगत ज्ञान, बल्कि व्यावहारिक जीवन कौशल, नेतृत्व क्षमता, और समाज सेवा के प्रति प्रेरित करना चाहिए।

14. ध्यान और आत्म-चिंतन सत्रों का आयोजन

शैक्षणिक संस्थानों में नियमित ध्यान और आत्म-चिंतन सत्रों का आयोजन किया जाना चाहिए। इससे छात्रों को तनाव मुक्त रहने और अपनी ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में उपयोग करने में सहायता मिलेगी।

15. अंतर-विषयक दृष्टिकोण को अपनाना

शिक्षा प्रणाली में विभिन्न विषयों के बीच संबंध स्थापित करने और समग्र दृष्टिकोण विकसित करने के लिए अंतर-विषयक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। इससे छात्रों को ज्ञान का व्यापक परिप्रेक्ष्य मिलेगा।

इन सभी सुझावों को अपनाकर आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रभावी, समग्र, और संतुलित बनाया जा सकता है। यह छात्रों के बौद्धिक, नैतिक, और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करते हुए समाज के समग्र उत्थान में सहायक होगी।

5.4 भविष्य के अनुसंधान के लिए सुझाव

1. शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन अन्य भारतीय ग्रंथों जैसे उपनिषद, बौद्ध ग्रंथों और जैन आगम के साथ किया जा सकता है। इनकी तुलना पश्चिमी शैक्षिक दर्शन जैसे प्लेटो, कांट, और रूसो के विचारों से भी की जा सकती है। यह अध्ययन यह समझने में सहायक होगा कि पूर्व और पश्चिम के शैक्षिक दृष्टिकोण में क्या समानता और अंतर है, और कैसे दोनों को समन्वित कर एक समग्र शिक्षा प्रणाली विकसित की जा सकती है।

2. शैक्षिक तत्वों का आधुनिक अनुप्रयोग

ध्यान, योग, और निष्काम कर्म जैसे शैक्षिक तत्व आधुनिक शिक्षा प्रणाली में छात्रों के नैतिक, मानसिक, और शारीरिक विकास के लिए कैसे उपयोगी हो सकते हैं, इस पर शोध किया जाना चाहिए। यह अनुसंधान यह बताएगा कि कैसे भारतीय ज्ञान परंपरा को समकालीन पाठ्यक्रम में शामिल कर शिक्षा को अधिक प्रभावी और व्यावहारिक बनाया जा सकता है।

3. मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

ध्यान और योग के दीर्घकालिक लाभों पर विशेष रूप से मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में शोध करना आवश्यक है। तनाव, अवसाद, और ध्यानभंग जैसी समस्याओं से जूझ रहे छात्रों और शिक्षकों के लिए ये तत्व अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। अनुसंधान यह भी दिखा सकता है कि नियमित योग और ध्यान के अभ्यास से आत्म-नियंत्रण, एकाग्रता, और मानसिक स्थिरता में कैसे सुधार हो सकता है।

4. नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम विकास

आज के युग में नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाना आवश्यक है। निष्काम कर्म, यज्ञ भावना, और समत्व भाव जैसे सिद्धांतों को शिक्षण का हिस्सा बनाने

के प्रभावी तरीकों पर शोध किया जाना चाहिए। यह अध्ययन यह समझने में मदद करेगा कि कैसे नैतिकता के इन मूल्यों को शिक्षा में शामिल कर छात्रों में जिम्मेदारी, ईमानदारी, और सह-अस्तित्व की भावना विकसित की जा सकती है।

5. गुरु-शिष्य परंपरा का पुनरावलोकन

गुरु-शिष्य परंपरा, जो भारतीय शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग रही है, आज के संदर्भ में पुनर्जीवित की जा सकती है। शिक्षक और छात्रों के बीच औपचारिक संबंधों को अधिक प्रेरक और मार्गदर्शक बनाने के लिए अनुसंधान किया जाना चाहिए। यह अध्ययन यह दिखा सकता है कि कैसे शिक्षक एक गुरु के रूप में छात्रों के व्यक्तित्व विकास और नैतिक शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

6. आत्म-ज्ञान आधारित शिक्षा

शिक्षा को केवल रोजगार के साधन तक सीमित रखने के बजाय, इसे आत्म-ज्ञान और जीवन के उद्देश्यको समझने का माध्यम बनाने की दिशा में शोध किया जाना चाहिए। यह अध्ययन यह स्पष्ट करेगा कि कैसे आत्म-ज्ञान को शिक्षा का केंद्रीय उद्देश्य बनाकर छात्रों के नैतिक, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

7. समत्व भाव और मानसिक स्थिरता

जीवन के सुख-दुख, सफलता-असफलता, और लाभ-हानि में समानता का भाव रखने की शिक्षा, जिसे समत्व भाव कहा जाता है, आधुनिक जीवन में मानसिक स्थिरता और संतोष बनाए रखने के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस विषय पर अनुसंधान यह दर्शा सकता है कि कैसे इस सिद्धांत को शिक्षा प्रणाली में शामिल कर छात्रों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया जा सकता है।

8. शैक्षिक नेतृत्व में नैतिकता का समावेश

शैक्षिक संस्थानों के प्रबंधन और नेतृत्व में नैतिकता और आत्म-नियंत्रण को कैसे शामिल किया जा सकता है, इस पर शोध करना आवश्यक है। यह अध्ययन यह दिखाएगा कि

नेतृत्व की नैतिकता कैसे संस्थानों की कार्यक्षमता, सामूहिकता, और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा दे सकती है।

9. वैश्विक शैक्षिक दृष्टिकोण

भारतीय शैक्षिक सिद्धांतों का वैश्विक शिक्षा प्रणाली में समावेश करने के लिए अनुसंधान किया जा सकता है। यह शोध यह बताएगा कि भारतीय शैक्षिक तत्वों जैसे योग, ध्यान, और नैतिकता को अन्य देशों की शिक्षा प्रणाली में कैसे शामिल किया जा सकता है, और कैसे ये तत्व वैश्विक शिक्षा के लिए एक नई दिशा प्रदान कर सकते हैं।

10. शिक्षा और समाज के बीच संबंध

शिक्षा और समाज के बीच संबंध को मजबूत बनाने के लिए योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाओं का उपयोग किया जा सकता है। यह अध्ययन यह दर्शाएगा कि कैसे शिक्षा सामाजिक सुधार, सामूहिक जिम्मेदारी, और नैतिक उत्थान में योगदान कर सकती है।

11. कार्यस्थल पर शैक्षिक तत्वों का उपयोग

निष्काम कर्म और ध्यान जैसे शैक्षिक सिद्धांतों का कार्यस्थल पर तनाव प्रबंधन, नैतिकता, और उत्पादकता बढ़ाने में कैसे उपयोग किया जा सकता है, इस पर अनुसंधान किया जाना चाहिए। यह अध्ययन यह दिखाएगा कि भारतीय ज्ञान परंपरा पेशेवर जीवन को बेहतर बनाने में किस प्रकार सहायक हो सकती है।

12. शैक्षिक प्रौद्योगिकी और भारतीय शैक्षिक तत्व

आधुनिक तकनीकी उपकरणों और डिजिटल शिक्षा में भारतीय शैक्षिक तत्वों को कैसे शामिल किया जा सकता है, इस पर शोध किया जाना चाहिए। यह अध्ययन यह बताएगा कि कैसे प्रौद्योगिकी और भारतीय परंपरागत शिक्षा के समन्वय से छात्रों के लिए एक समृद्ध शिक्षण अनुभव बनाया जा सकता है।

13. व्यावसायिक और आध्यात्मिक शिक्षा का समन्वय

रोजगार आधारित व्यावसायिक शिक्षा और आध्यात्मिक सिद्धांतों (जैसे आत्म-ज्ञान, नैतिकता) के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए शोध किया जा सकता है। यह

अध्ययन यह दिखाएगा कि कैसे ये दोनों दृष्टिकोण शिक्षा को संतुलित और समग्र बना सकते हैं, जो छात्रों को न केवल रोजगार के लिए बल्कि जीवन के लिए भी तैयार करेंगे।

5.5 निष्कर्ष

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शैक्षिक शिक्षाएं न केवल प्राचीन भारत में प्रासंगिक थीं, बल्कि आज भी शिक्षा और समाज के विकास के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

5.5.1 आत्म-ज्ञान, निष्काम कर्म, गुरु-शिष्य परंपरा, और ध्यान की प्रासंगिकता

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शैक्षिक शिक्षाओं में आत्म-ज्ञान, निष्काम कर्म, गुरु-शिष्य परंपरा, और ध्यान जैसे तत्व केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। आत्म-ज्ञान व्यक्ति को मानसिक शांति और आंतरिक स्थिरता प्रदान करता है, जो आज के तनावपूर्ण जीवन में अत्यंत आवश्यक है। निष्काम कर्म व्यक्ति को जिम्मेदार नागरिक बनने की प्रेरणा देता है, जिससे समाज में नैतिकता और समरसता स्थापित होती है। गुरु-शिष्य परंपरा शिक्षकों और छात्रों के बीच संबंधों को सुदृढ़ करती है और शिक्षा को केवल औपचारिक प्रक्रिया से बाहर निकालकर प्रेरणा और मार्गदर्शन का माध्यम बनाती है। ध्यान, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अद्वितीय साधन है, जो आधुनिक जीवन में एकाग्रता और स्थिरता बनाए रखने में सहायक है। इन तत्वों की प्रासंगिकता न केवल व्यक्तिगत विकास में है, बल्कि समाज के समग्र उत्थान में भी है।

5.5.2 आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भारतीय तत्वों का समावेश

आधुनिक शिक्षा प्रणाली, जो मुख्य रूप से बौद्धिक विकास और रोजगार केंद्रित है, में योग-वासिष्ठ और गीता के शैक्षिक तत्वों का समावेश इसे अधिक समग्र और प्रभावी बना सकता है। शिक्षा में नैतिकता, ध्यान, और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे तत्वों को शामिल करने से छात्रों का सर्वांगीण विकास हो सकता है। आज, जब शिक्षा प्रणाली मूल्यों और नैतिकता के क्षरण का सामना कर रही है, इन प्राचीन शिक्षाओं का समावेश छात्रों को जिम्मेदार, संतुलित, और संवेदनशील नागरिक बनने में सहायता करेगा।

5.5.3 शिक्षा का उद्देश्य: नैतिकता, आत्म-ज्ञान, और सामाजिक जिम्मेदारी

शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं होना चाहिए। यह आत्म-ज्ञान, नैतिकता, और सामाजिक जिम्मेदारी का समन्वय होना चाहिए। आत्म-ज्ञान छात्रों को आत्म-निर्भर और मानसिक रूप से स्थिर बनाता है, नैतिकता उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सही और गलत के बीच भेद करने की क्षमता प्रदान करती है, और सामाजिक जिम्मेदारी उन्हें समाज के कल्याण में सक्रिय भागीदार बनाती है। यह उद्देश्य शिक्षा को केवल एक व्यक्तिगत लाभ का साधन नहीं, बल्कि समाज के विकास का एक महत्वपूर्ण कारक बनाता है।

5.5.4 भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक शिक्षा के बीच संतुलन

भविष्य के अनुसंधानों और शिक्षा प्रणाली में योग-वासिष्ठ और गीता के शैक्षिक तत्वों को शामिल करने से भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक शिक्षा के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है। भारतीय परंपरागत शिक्षा प्रणाली, जो आत्म-ज्ञान और नैतिकता पर केंद्रित है, और आधुनिक शिक्षा प्रणाली, जो तकनीकी दक्षता और रोजगार पर ध्यान देती है, का समन्वय छात्रों को एक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण प्रदान कर सकता है। यह संतुलन छात्रों को न केवल भौतिक सफलता के लिए तैयार करेगा, बल्कि उन्हें जीवन की गहराई और उद्देश्य को समझने में भी सहायता करेगा।

5.5.5. शिक्षा का शाश्वत और समग्र स्वरूप

यह शोध अध्ययन शिक्षा के शाश्वत और समग्र स्वरूप को समझाने का प्रयास करता है। योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं यह दिखाती हैं कि शिक्षा केवल एक काल विशेष की आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर आयाम में स्थायी मार्गदर्शन प्रदान करती है। इन शिक्षाओं को आज के संदर्भ में लागू करने से शिक्षा प्रणाली को न केवल अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है, बल्कि इसे एक ऐसा साधन भी बनाया जा सकता है, जो व्यक्तिगत, सामाजिक, और वैश्विक स्तर पर सकारात्मक परिवर्तन ला सके।

5.5.6 नैतिकता का पुनर्स्थापन और सामाजिक समरसता

योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं नैतिकता के पुनर्स्थापन और सामाजिक समरसता की स्थापना में विशेष भूमिका निभा सकती हैं। आज के समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, जिससे भ्रष्टाचार, असमानता, और व्यक्तिगत स्वार्थ का बोलबाला है। गीता में निष्काम कर्म और यज्ञ भावना पर बल देकर सामाजिक जिम्मेदारी को प्राथमिकता दी गई है। ये शिक्षाएं छात्रों और शिक्षकों को समाज के कल्याण के प्रति जागरूक बनाती हैं और समाज में सामूहिक चेतना को विकसित करती हैं। योग-वासिष्ठ का समत्व भाव छात्रों को सुख-दुख और सफलता-असफलता के द्वंद्वों से ऊपर उठने में मदद करता है, जिससे वे मानसिक और नैतिक संतुलन बनाए रख सकें।

5.5.7 शिक्षा और आध्यात्मिकता का समन्वय

योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं शिक्षा और आध्यात्मिकता के बीच एक अद्वितीय संतुलन प्रस्तुत करती हैं। शिक्षा को केवल भौतिक सफलता तक सीमित न रखकर इसे आत्मा के विकास और जीवन की उच्चतर चेतना को प्राप्त करने का माध्यम माना गया है। आध्यात्मिक शिक्षा छात्रों को आत्मनिरीक्षण, आंतरिक शांति, और आत्म-जागरूकता की दिशा में प्रेरित करती है। यह उन्हें न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए तैयार करती है, बल्कि समाज के प्रति उनके कर्तव्यों को भी स्पष्ट करती है।

5.5.8 शिक्षा में वैराग्य और समत्व का महत्व

योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं यह सिखाती हैं कि वैराग्य और समत्व भाव छात्रों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने और मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं। वैराग्य उन्हें बाहरी आकर्षणों और मोह के बंधनों से मुक्त करता है, जबकि समत्व भाव उन्हें हर परिस्थिति में स्थिर और सुदृढ़ बनाए रखता है। ये सिद्धांत छात्रों को आत्म-निर्भर और मानसिक रूप से सशक्त बनाते हैं, जो आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में अत्यंत आवश्यक है।

5.5.9 शिक्षा में संवाद और तर्कशीलता का महत्व

गीता और योग-वासिष्ठ दोनों में संवाद और तर्कशीलता को शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग माना गया है। गुरु और शिष्य के बीच संवाद शिक्षार्थी को न केवल ज्ञानार्जन का अवसर प्रदान करता है, बल्कि उसे विचारशील और तर्कशील भी बनाता है। गीता में कृष्ण और अर्जुन का संवाद और योग-वासिष्ठ में वासिष्ठ और राम का संवाद यह दर्शाते हैं कि शिक्षा केवल जानकारी का हस्तांतरण नहीं, बल्कि ज्ञान के गहन चिंतन और आत्मसात की प्रक्रिया है। आज के युग में, जब शिक्षा प्रणाली रटने और परीक्षा केंद्रित हो गई है, इस प्रकार की संवाद आधारित शिक्षा छात्रों के बौद्धिक और भावनात्मक विकास में सहायक हो सकती है।

5.5.10 शिक्षा में ध्यान और योग का स्थान

ध्यान और योग, जो योग-वासिष्ठ और गीता में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, छात्रों और शिक्षकों के लिए मानसिक स्थिरता, आत्म-नियंत्रण, और एकाग्रता का साधन बन सकते हैं। आधुनिक जीवन की भागदौड़ में ध्यान और योग तनाव, चिंता, और मानसिक विकारों का समाधान प्रदान करते हैं। इसे पाठ्यक्रम में शामिल कर छात्रों को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक किया जा सकता है। मन जब-जब चंचल हो और भटकने लगे, तब-तब उसे आत्मा में ही स्थिर करने का प्रयास करना चाहिए। ध्यान के अभ्यास से मन की चंचलता और अशांति को नियंत्रित किया जा सकता है, जो अवसाद और चिंता जैसी स्थितियों को कम करने में सहायक है। इस लिए ध्यान का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए जिससे मानसिक विकारों से बचा जा सके और शिष्य भी स्वस्थ और मस्त रहे

5.5.11 शिक्षा का उद्देश्य: मानवता और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी

गीता और योग-वासिष्ठ सिखाते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि मानवता और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी का भी समावेश होना चाहिए। यज्ञ भावना और निष्काम कर्म का सिद्धांत छात्रों को पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक सेवा, और सामुदायिक विकास की दिशा में प्रेरित कर सकता है।

5.5.12 भारतीय शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक पुनरुत्थान

योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति के पुनरुत्थान का मार्ग प्रदान करती हैं। इन शिक्षाओं को आधुनिक शिक्षा में समावेशित कर सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं, और नैतिकता को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। यह छात्रों को अपने सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व करना सिखाता है और उन्हें वैश्विक समाज में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए सशक्त बनाता है।

इस प्रकार, यह शोध अध्ययन शिक्षा के शाश्वत और समग्र स्वरूप को समझाने और उसे आज के संदर्भ में लागू करने का मार्गदर्शन करता है। योग-वासिष्ठ और श्रीमद्भगवद्गीता जैसे भारतीय ज्ञान परंपरा के महान ग्रंथ शिक्षा की परिभाषा को नए आयाम प्रदान करते हैं। इन ग्रंथों की शिक्षाएं यह सिखाती हैं कि शिक्षा केवल बौद्धिक विकास या रोजगार प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह आत्म-विकास, नैतिकता, और समाज के प्रति जिम्मेदारी का साधन भी है। योग-वासिष्ठ आत्म-ज्ञान, वैराग्य, और मानसिक शांति पर जोर देता है, जो जीवन के हर पहलू में संतुलन और स्थिरता लाने का मार्ग प्रस्तुत करता है। यह शिक्षा व्यक्ति को आंतरिक शांति प्राप्त करने और जीवन के उद्देश्य को समझने की दिशा में प्रेरित करती है। वहीं, श्रीमद्भगवद्गीता निष्काम कर्म, समत्व भाव, और यज्ञ भावना जैसे सिद्धांतों के माध्यम से नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा, और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देती है। यह व्यक्ति को मानसिक संतुलन बनाए रखने, जीवन के द्वंद्वों से ऊपर उठने, और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाने की प्रेरणा देती है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली, जो अक्सर परीक्षा और रोजगार केंद्रित होती है, इन शाश्वत शिक्षाओं से बहुत कुछ सीख सकती है। आत्म-ज्ञान, ध्यान, और नैतिकता पर आधारित एक शिक्षा प्रणाली न केवल छात्रों के बौद्धिक विकास को सुनिश्चित करेगी, बल्कि उन्हें मानसिक और भावनात्मक रूप से भी मजबूत बनाएगी। शिक्षा को केवल एक औपचारिक प्रक्रिया के रूप में देखने के बजाय इसे जीवन की समग्रता को समझने और जीने का साधन माना जाना चाहिए। इसके लिए गुरु-शिष्य परंपरा के प्रेरणादायक मॉडल, जिसमें शिक्षक और छात्र के बीच घनिष्ठ और प्रेरक संबंध स्थापित होता है, को

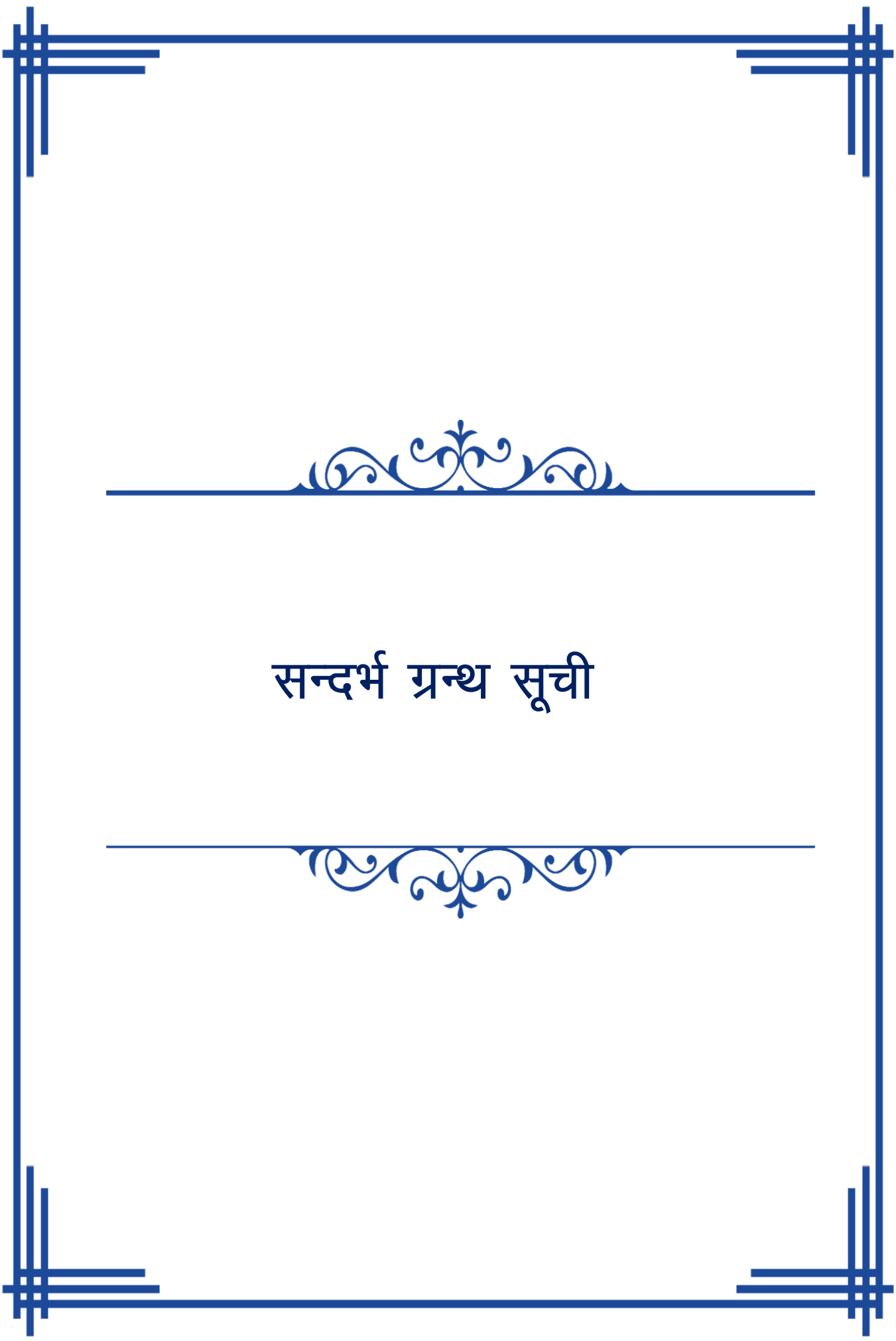
पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, ध्यान, योग, और आत्म-नियंत्रण जैसे तत्व छात्रों को मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक तंदुरुस्ती प्रदान कर सकते हैं। ये तत्व उन्हें जीवन के तनाव और चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करेंगे। साथ ही, निष्काम कर्म और यज्ञ भावना का समावेश छात्रों को समाज और पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझने और निभाने की प्रेरणा देगा। इस प्रकार, शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित नहीं रहेगी, बल्कि यह सामूहिक और सामाजिक विकास की ओर भी अग्रसर होगी। कहा गया है कि इस संसार में ज्ञान से पवित्र कुछ भी नहीं है। योग में सिद्ध हुआ व्यक्ति समय के साथ इसे आत्मा में अनुभव करता है। यह श्लोक शिक्षा के उच्चतम उद्देश्य को स्पष्ट करता है: आत्म-ज्ञान की प्राप्ति, जो मनुष्य को शुद्ध, पवित्र और पूर्ण बनाती है। और ज्ञान से पवित्र कुछ नहीं है इन शिक्षाओं का आधुनिक शिक्षा में समावेश भारतीय ज्ञान परंपरा और वैश्विक दृष्टिकोण के बीच एक सेतु का कार्य करेगा। यह छात्रों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने और उन्हें वैश्विक नागरिक के रूप में विकसित करने में सहायक होगा। शिक्षा के अन्दर इन गुणों का विकास होना चाहिए गीता में भगवान ने कहा है -

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम्।

आचार्योपासनंशौचस्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥"

(गीता 13.7-13.8)

विनम्रता, दिखावा न करना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, पवित्रता, आत्म-संयम, और स्थिरता—ये सभी शिक्षा के गुण हैं। इसमें शिक्षा के नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष पर जोर दिया गया है। सच्ची शिक्षा का लक्ष्य इन गुणों का विकास करना है। योग-वासिष्ठ और गीता की शिक्षाएं शिक्षा को एक समग्र और शाश्वत स्वरूप प्रदान करती हैं, जो व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन को संतुलित, अर्थपूर्ण, और प्रेरक बनाने में सहायक है। यह निष्कर्ष स्पष्ट करता है कि इन शैक्षिक तत्वों को अपनाकर हम एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण कर सकते हैं, जो न केवल वर्तमान पीढ़ी को सशक्त बनाएगी, बल्कि आने वाले युगों के लिए भी उपयोगी और प्रासंगिक सिद्ध होगी ऐसी शिक्षा बन्धनों से मुक्त कराती है।



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भग्रन्थ

- सिंह, आर..योगवासिष्ठ कथा.कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,
- आत्रेय बी.एल.(2003).योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत.श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान मथुरा- 281001
- आर.आर..(1972).शिक्षा के दार्शनिक आधार.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- ओड, लक्ष्मी.(1973).शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि.राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
- आचार्य,वेदमूर्ति तपोनिष्ठ प.श्रीराम शर्मा.सम्पूर्ण योग वासिष्ठ कथासार.श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट श्रीरामपुरम - शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) 249411
- आर्य डॉ. सोमवीर.योग दर्शन.चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान,नई दिल्ली
- एस. तेजोमयानंद.(2016).योगवासिष्ठ सार संग्रह : तृतीय संस्करण सेन्ट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट मुंबई
- कृष्णमूर्ति, जे.(2003).भारतीय शिक्षा प्रणाली और गीता के सिद्धांत, नवल प्रकाशन।
- कुमार,कृष्ण.(2017).प्राचीनभारतकीशिक्षापद्धति, श्रीसरस्वतीसदन, दिल्ली
- कपूर, बी.योगवासिष्ठ.(2019).नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
- गोरखपुरप्रेस, योगाडक् गीता
- गीता प्रेस, श्रीमद्भगवद्गीता(श्लोकार्थ सहित)गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर
- गोयन्दका,श्री जयदयाल जी "श्रीमद्भगवद्गीता तत्व विवेचनी टीका", गोविन्द भवन, कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर
- गीता तात्पर्य, हिन्दी अनुवाद सहित मुम्बई
- गीतार्थ विवरण, सम्पादक श्री मग्नलाल शास्त्री, गीता तत्व दीपिका
- गुप्ता, डॉ० एस०पी०.(2000).भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- गाँधी महात्मा, अनाशक्ति योग

- चौबे, सरजू प्रसाद.(1965).भारत में शिक्षा का विकास, सेण्ट्रल बुक डिपो इलाहाबादडॉ. सोमवीर आर्य, डॉधर्मवीर यादव, योगियाका जीवन परिचय, राघव पब्लिकेशन
- कुमार, डॉ. कामाख्या,मानव चेतना एवं योग विज्ञान
- दावल, सुबोध.(1970). भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियाँ उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
- देवराज, डॉ० नन्दकिशोर.(1980)।'भारतीय दर्शन' उ०प्र०हिन्दी संस्थान, लखनऊ
- दशोरा, एन.(2019).योगवासिष्ठ महारामायण पूणधीर प्रकाशन, हरिद्वार
- दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय
- तोमर,लज्जाराम.(2015).भारतीय शिक्षा के मूलतत्त्व, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली
- पतंजलि योग प्रदीपिका, गीता प्रेस गोरखपुर
- पाठक, राममूर्ति.(995).भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, हरिप्रसाद एण्ड सन्स, इलाहाबाद
- पाण्डेय, राम सकल.(1980)."शिक्षा-दर्शन" विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
- पाण्डेय, संगमलाल.(1995).भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण,सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- पाठक, पी०डी०.(1995).भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- पाण्डेय, रामशकल शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री पृष्ठभूमि, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- पाण्डेय , डॉ रामशकर, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक।
- पाण्डेय , डॉ रामशकर, मूल्य शिक्षा।
- पाठक, आर० पी०.(2013).प्राचीन भारत में शिक्षा नई दिल्ली, कनिष्का प्रकाशन
- पाठक रमेश प्रसाद, गीता का शिक्षा दर्शन, प्रो. ज्ञान भारती पब्लिकेशन शक्ति नगर दिल्ली
- पाण्डेय, रामशकल.(1999).विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

- भारत के महान योगी, विश्वनाथ मुखर्जी
- महतो महेन्द्र कुमार.(1990).गीता प्रवेशिका" सस्ता साहित्य मण्डल एन-77 कनाट सर्कस, नई दिल्ली
- महाराज, श्री राम सुखदास जी.(1950).श्रीमद्भगवद्गीता-सार्थक- संजीवनी टीका, गोविन्द भवन, कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर
- महाप्रभुलाल गोस्वामी. महाकवि श्रीमद्वाल्मीकिप्रणीत :योग वाशिष्ठ , तारा बुक एजेंसी कामच्छा, वाराणसी
- महर्षि वेदव्यास 'श्रीमद्भागवद् पुराण' गीता प्रेस गोरखपुर
- मुकर्जी, आर० के०.(1960).प्राचीन भारतीय शिक्षा, कोलकता ओरिएण्टल बुक
- मलावीय एस.(2001).योगवासिष्ठ प्रथम भाग भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ
- मिश्र डॉ० उमेश महामहोपाध्याय.(1989).'भारतीय दर्शन' उ०प्र० हिन्दी संस्थान महात्मा गाँधी मार्ग लखनऊ,
- मिश्र, डॉ. भास्कर.(2008).शिक्षा, नाग पब्लिशर्स दिल्ली
- यादव, आर..(2009).शिक्षा में योग-वासिष्ठ और गीता के तत्वों का योगदान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ।
- योग के आधारभूत तत्व, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
- रामसुखदास.(2018).गीताज्ञानप्रवेशिका, गोरखपुर : गीताप्रेस
- रामसुखदास.(2017).गीतादर्पण, गोरखपुर : गीताप्रेस
- रामसुखदास.(2013).गीता प्रबोधनीगीताप्रेस
- रामसुखदास, स्वामी.(2057).श्रीमद्भगवद्गीता, साधक संजीवनी गीता: प्रेस गोरखपुर
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली.(1979).रचनात्मक जीवन, सरस्वती विहार, नई दिल्ली
- रावत,प्यारे लाल.(1985).भारतीय शिक्षा का इतिहास,आगरा रामप्रसाद एण्ड सन्स
- राधाकृष्णन, एस.(1942).एजुकेशन पालिटिक्स एण्ड वार, पूना
- राधाकृष्णन, एस.(1949).भारत और विश्व, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
- रावत, डॉ.अनुज, योग एवं योगी, सत्यम पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली

- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली.(1999).हमारी संस्कृति, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
- लाल, रमन बिहारी.(1995).शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि पब्लिकेशनस 'गंगोली' शिवाजी रोड, मेरठ- 250002,
- तिलक लोकमान्य, 'गीता रहस्य'
- तिलक,बी..(2014).श्रीमद्भगवद्गीता गीता भोपाल, शारदा प्रकाशन
- वाजपेयी, के.(2007).श्रीमद्भगवद्गीता: कर्मयोग का शैक्षिक महत्व, गीता प्रकाशन
- वेदालंकार, जे..(2005).भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास, भाग- 4, न्यू भारतीय बुक को., दिल्ली
- विवेकानंद, स्वामी.(2006).भगवद्गीता शिक्षा और नैतिकता, रामकृष्ण मिशन ।
- विवेकानंद स्वामी , ध्यान योग, स्वामी रामकृष्ण मठ, कलकत्ता
- विद्यालंकारअवनीन्द्र कुमार.(1965).राष्ट्रपति राधाकृष्णन ।
- शर्मा प.श्रीराम,शर्मा भगवती देवी.(2015).उपनिषद् (सरल हिंदी भावार्थ सहित) ज्ञानखण्ड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा-281003, बृहदारण्यक उपनिषद्।
- शास्त्री, एस.पी.(2019).योगवाशिष्ठ :महारामायण,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , गोरखपुर ।
- शंकराचार्य, आदि.(1942).भगवद्गीता पर शंकराचार्य की टीका, रामकृष्ण मठ ।
- शास्त्री,श्रीकृष्णपन्थ.(2016).योगवासिष्ठमहारामायणम्बाराणसीचैखम्बासुरभारतीप्रकाशन।
- शर्मा सत्यनारायण, श्रीमद्भगवद्गीता, के शिक्षा एवं मनोवैज्ञानिक आधार।
- शर्मा, रामनाथ समकालीन भारतीय शिक्षा दार्शनिक, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड ।
- संक्षिप्त योग वाशिष्ठ.(2068).गीताप्रेस गोरखपुर, संवत ।
- सक्सेना,एन आर, स्वरूप- उद्दीपन भारतीय समाज शिक्षावेदांत, पब्लिकेशन लखनऊ ।

- सरस्वती,स्वामी निरंजनानंद, बच्चों के लिए योग शिक्षा भाग एक और दो, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार ।
- सरस्वती,स्वामी शिवानंद, संत चरित्र ।
- सिंह, ओ.पी. शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- सिंह प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन,नई दिल्ली ।
- स्वामी,प्रभुपाद श्रीमद् ए०सी०भक्तिवेदान्त.(1980).गीतोपनिषद् भगवद्गीता यथारूप भक्ति बुक ट्रस्ट, हरे राम धाम जुहू, मुंबई 400049।
- हर्षानन्द.(1995).एस सम्पूर्ण गीतासार , नागपुर : रामकृष्ण, मठ।
- श्री अरविन्द - "एसे आन गीता" आर्या पब्लिसिंग हाउस, कोलकाता।
- आचार्य श्रीराम शर्मा.(1986).ध्यान धारणा से दिव्य क्षमताओं का आकर्षण, अखण्ड ज्योति, अंक 4 अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा ।
- त्रिपाठी, पी.(2014).भारतीय शिक्षा दर्शन और योग-वासिष्ठ, प्रभात प्रकाशन।
- सरस्वती विज्ञानानन्द.(2003).योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट, ऋषिकेश।
- निरजनानन्द.(1994).योग दर्शनश्री पंचदशनाम , परमहंस अलदेवघर , बिहार ।
- विज्ञानानन्दसरस्वती.(2003).योग विज्ञानयोग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति,ऋषिकेश ।
- निरजनानन्द,देवधर.(1994).योगदर्शनश्री पंचदशनाम, परमहंस अलखवाडा, बिहार।
- पाण्डेय,राजकुमारी.(2008).भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम राधा पब्लिकेशन, दिल्ली ।
- व्यास महर्षि, भगवद्गीता गीता प्रेस गोरखपुर 2003।
- योगेन्द्र.(1999).वेदों में योग विद्या यौगिक शोध संस्थान, हरिद्वार ।
- मिथ,चन्द्रजगदीश.(2010).भारतीय दर्शन चौखम्भा गुरु भारती प्रकाशन , वाराणसी योगा गीता प्रेस गोरखपुर ।
- पाण्डेय, राजकुमारी.(2008).भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम राधा पब्लिकेशन्स , नई दिल्ली ।

शब्द कोष

1. आपटे, वामन शिवराम. संस्कृत-हिन्दी कोश. मोतीलाल बनारसीदास, 1965.
2. द्विवेदी, कपिलदेव. संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2004.
3. भार्गव, रामचन्द्र शुक्ल. बृहत् संस्कृत-हिन्दी कोश. चौखम्भा विद्याभवन, 2009.
4. तिवारी, भोलानाथ. हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी कोश. किताब महल, 2002.
5. अधिकारी, काशीनाथ. संक्षिप्त संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश. सस्ता साहित्य मण्डल, 2000.

शोध पत्र:

- शर्मा, वासुदेव (2017). गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता और उसकी वर्तमान में उपयोगिता, भारतीय शिक्षा जर्नल, 12(4), 234-2501
- गोस्वामी, आलोक (2016). प्राचीन भारतीय शिक्षा के नैतिक और सामाजिक मूल्य, इतिहास शोध पत्रिका, 18(3), 178-1891
- मिश्रा, सुनीता (2018). गुरुकुल प्रणाली में छात्र-गुरु संबंध का महत्व, शिक्षा समीक्षा, 25(1), 90-1041
- अग्रवाल, प्रीति (2019). शिक्षा में शारीरिक अनुशासन और गुरुकुल पद्धति का योगदान, शिक्षा और समाज, 11(2), 132-1481
- चौधरी, रेखा (2020). वैदिक शिक्षा प्रणाली और उसका समाज में योगदान, अंतरराष्ट्रीय शिक्षण शोध जर्नल, 15(4), 212-2301
- सिंह, अंजलि (2021). प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के तत्व और उनकी वर्तमान में प्रासंगिकता, सामाजिक अध्ययन जर्नल, 18(3), 300-3201
- गुप्ता, अरविंद (2018). गुरुकुल शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के बीच तुलना, उच्च शिक्षा शोध पत्रिका, 9(2), 180-1951
- वर्मा, प्रमोद (2019). शैक्षिक संस्कारों का भारतीय समाज में योगदान, भारतीय समाज विज्ञान पत्रिका, 14(6), 280-2901
- पी. एस. त्यागी (2021) गीता के गुण कर्म सिद्धांत और शैक्षिक निहितार्थ एवं वैश्विक परिपेक्ष में समसामयिकता प्रासंगिकता DEI- FOERAA, Vol 1 pp 67-71

Book English

- 1) Altekar, A.S., Education in ancient India, Nand Kishore Brothers Varanasi 1951
- 2) Anderws, C.F., Mahatma Gandhi's Ideas, Allan and Unwin, Landon, 1929
- 3) Andrews, Sir John, Evolution of Educational Theory, Macmillan, London, 1915
- 4) A system of National Education Calcutta, Arya Publishing House 1949
- 5) Bhattacharya Sidheswara - Philosophy of shrimad Bhagavat Geeta Vishavabharti Shanti Niketan
- 6) Brown, D.M., Indian political thought from Manu to Gandhi, The white umbrella, Jaico 1964
- 7) Bhave, Vinoba, Teesari Shakti, Sarvodaya Sangh Prakashan. Varanasi, First Edition 20th Oct. 1960
- 8) Bhagavad Geeta, Hindu teaching on the separatino of spiritual & non spiritual. A paper published by S.N. Apte. Mumbai 2004
- 9) Maitra, K. The Philosophy of the Bhagavad Gita: A Contemporary Introduction. Bloomsbury Academic. 2018

Dictionary

1. Merriam-Webster's Collegiate Dictionary. 11th ed., Merriam-Webster, 2003.
2. Oxford English Dictionary. 2nd ed., Clarendon Press, 1989.
3. Shorter Oxford English Dictionary. 6th ed., edited by Lesley Brown, Oxford University Press, 2007.
4. Collins English Dictionary. 13th ed., HarperCollins Publishers, 2018.
5. American Heritage Dictionary of the English Language. 5th ed., Houghton Mifflin Harcourt Publishing Company, 2011.



परिशिष्ट

दार्शनिक त्रैमासिक

वर्ष-68

अंक-1

जनवरी-मार्च, 2022



अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्

श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा की अवधारणा का विवेचनात्मक अध्ययन

महादेवी चतुर्वेदी * एवं डॉ. प्रभाकर पाण्डेय **

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्म पर्व का एक अंग है जिसमें श्रीकृष्ण शिक्षक और अर्जुन शिष्य के रूप में है। श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञान, कर्म और भक्ति की शिक्षा देते हैं। शिक्षा दर्शन की दृष्टि में श्रीमद्भगवद्गीता एक अमूल्य निधि है क्योंकि इसमें सभी प्रचलित दार्शनिक और सिद्धान्तों का समाहार मिलता है। भारतीय शिक्षा का सार गीता में ही देखने को मिलता है। भारतीय दर्शनों में दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग। शिक्षा की दृष्टि से प्रवृत्ति मार्ग का महत्त्व अधिक है, निवृत्ति मार्ग संभवतः संन्यासाश्रम के लिए उपयुक्त है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रवृत्ति मार्ग की विशेष रूप से पुनर्स्थापना की गई है। अतएव शिक्षा देने के लिए रणभूमि का चयन किया गया, जहाँ प्रवृत्ति की प्रधानता है। गीता के अनुसार शिक्षा वह है जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित ब्रह्म अथवा परमात्मा की अनुभूति करवाने में सहायक होती है। आत्मा की अनुभूति शिक्षा द्वारा ही की जा सकती है जिनके ज्ञानचक्षु खुल गये हो वो ही इस अंतरात्मा के दर्शन कर सकता है। गीता के 700 बिना ज्ञान के परमात्मा का दर्शन नहीं किया जा सकता है। गीता के 700

* पी-एच. डी. शोधार्थी, वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

** विभागाध्यक्ष वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

श्लोकों में सर्वप्रथम प्रथम से छः तक कर्मयोग, सात से बाहर भक्ति योग, तेरह से अठारह तक ज्ञान योग का समन्वय दिया गया है। और आत्मज्ञान, विश्लेषणात्मक अध्ययन का समावेश है। जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया ही शिक्षा है जिसमें मन, शरीर और आत्मा शामिल है।

लोकमान्य तिलक कहते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्म ग्रंथों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है वह ग्रंथ वैदिक धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में वेद के समान आज करीब ढाई हजार वर्ष से सर्वमान्य तथा प्रमाण स्वरूप हो रहा है। इसका कारण है भी उक्त ग्रंथ का महत्त्व ही है। निष्काम कर्मयोग की उद्भावना तथा प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्ग व कर्म, भक्ति, ज्ञान मार्ग से अद्भूत समन्वय द्वारा गीता दर्शन ने तत्कालिक विचारधारा में उत्पन्न विकृतियों का निराकरण ही नहीं किया बल्कि मानव की वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति का पथ-प्रदर्शन भी किया। शिक्षा व्यक्ति के समाज व राष्ट्र के समस्या को दूर करती है, पर आज शिक्षा व्यक्ति के जीवन की समस्या बनती जा रही है। शिक्षा राष्ट्र की संस्कृति और जीवन शैली को सुदृढ़ बनाने का काम करती है शिक्षा के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं जिससे व्यक्ति जीवन में कठिन से कठिन समस्या का निवारण सरलता से कर सकता है। गीता में जीवन के समस्त शिक्षा के पक्षों का वर्णन है—तर्कविद्या, जीवन प्रबंधन, नैतिक शिक्षा, पुरुषार्थ, यज्ञ, तप, दान एवं धर्म स्थापना इत्यादि। मनुष्य के कर्तव्य, आचरण एवं व्यक्तित्व के विकास के सूत्र विद्यमान है।

शिक्षा का अर्थ—शिक्षा शब्द की 'शिक्ष' धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ—सीखना, अनुकरण करना आदि है। सभी जीव स्वभाव से कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं यही शिक्षा है।

शिक्षा शब्द वेदांगभूत शिक्षा से न होकर अभ्यासार्थक 'शिक्ष' धातु से निष्पन्न शब्द है अर्थात् अधिगम्य और अभ्यस्त का अभ्यास करना ही शिक्षा है।

गीता के अनुसार शिक्षा व्यक्ति का स्वधर्म, स्वभाव, गुण और कर्म का करणीय और अकरणीय का विवेक करना ही शिक्षा है। गीता के अनुसार हम कह सकते हैं कि वास्तविक शिक्षा वह है जो हमें इस योग्य बनाती है कि हम सब प्राणी की आत्मा में ईश्वर को ही देखना युद्ध के समय जब अर्जुन भ्रमित था जब श्री कृष्ण जी ने अपने ब्रह्मा रूप दिखाया था जिसमें सबका वास था, अर्जुन के यह अनुभव कराया कि किसी की आत्मा नहीं मरती क्योंकि उसका वास ब्रह्मा में है।

शिक्षा व्यक्ति के अन्दर ज्ञान, आचरण तकनीकी दक्षता विद्या आदि को प्राप्त करने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। शिक्षा व्यक्ति के अन्दर अन्तर्निहित क्षमता व शक्ति तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रक्रिया है। जिससे व्यक्ति समाज व राष्ट्र को विकसित करे, शिक्षा समाज में आधारभूत नियमों व व्यवस्थाओं, समाज के प्रतिमानों व मूल्यों को सिखाती है। जिससे व्यक्ति का समग्र विकास हो। शिक्षा सतत चलने वाली प्रक्रिया है, जन्म से लेकर मृत्यु उपरांत तक चलनेवाली प्रक्रिया है। बच्चा सबसे पहले शिक्षा अपनी माँ से लेता है, फिर वह परिवार, समाज स्कूल आदि संस्थानों और अपने धर्मग्रंथों से शिक्षा ग्रहण करता रहता है। जिसके परिणामस्वरूप वह व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति के मानव विकास के लिए परम आवश्यक है तभी वह अपना समग्र विकास कर पाता है।

शिक्षा की परिभाषा— महाभारत में 'शिक्षा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आदिपर्व में प्राप्त होता है। शिक्षा जन्मजात पाशविक प्रवृत्तियों का शोधन, परिमार्जन तथा मार्गान्तरीकरण होता है। इसलिए शिक्षा के पर्यायवाची शब्द में विद्या शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया गया है।¹ (म. भा. आदि 01/67 पृ. 6)

शिक्षेर्जिज्ञानसायाम² (1/3/21 पा. वार्तिक के अनुसार) शिक्षा शब्द का अर्थ जिज्ञासा अर्थात् जिज्ञासा होने पर शिक्षा धातु से आत्मने पद होता है।

शिक्षा शिक्षयन्तेनयेती वर्णाद्युच्चरणलक्षणं³ (शंकर भाष्य तैत्तिरियोपनिषद 1/2)

अर्थात् जिससे वर्णादी का उच्चारण सिखा जाये उसे शिक्षा कहते हैं अथवा जो सीखे जाएँ वे आदि की शिक्षा को ही शिक्षा कहा गया है।

शिक्षेदमं दानं दयामिति⁴ (वृहदारण्यकोपनिषद 5/2/3)

शिक्षा तात्कालिक दम, दान तथा दया जैसे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक की तरह है।

शिक्षा व्यक्ति दो रूपों में सीखता है। 1. व्यापक 2. संकुचित

व्यापक शिक्षा—समाज में चलने वाली सामाजिक प्रक्रियाओं से जिसमें व्यक्ति के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि व्यवहार में परिवर्तन किया गया है।

संकुचित शिक्षा—जो व्यक्ति निश्चित समय विशेष में सीखता है। जो संस्थानों में जैसे—विद्यालय, महाविद्यालय में सुनियोजित ढंग से सिखाया

जाता है, जो व्यक्ति को पाठ्यक्रम पढ़ाकर परीक्षा ली जाती है। शिक्षा बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है गीता में कहा गया है कि "ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं।

भारतीय संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति के चार लक्ष्य बताये गये हैं—धर्म, अर्थ काम, और मोक्ष। इन्हें पुरुषार्थ चतुश्य के नाम से जाना जाता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है मोक्ष, जो कि प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य है। ये उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीमद्भगवतगीता में शिक्षा का उद्देश्य कहा गया है कि आध्यात्म विद्या सभी विद्याओं में श्रेष्ठ मानी जाती है। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान कृष्ण ने बताया है कि 10/38 ज्ञानवानों में तत्त्वज्ञान में ही हूँ। इसका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन में आंतरिक श्रद्धा और सीखने के लिए एक भावुक प्रेम का आह्वान करना है।

अन्य विद्वानों के मत में शिक्षा—

गाँधी जी के अनुसार—शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से हो।

जान डेवी के अनुसार—शिक्षा व्यक्ति के सभी भीतरी शक्तियों का विकास है, जिसमें वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके।

पेस्टालोजी के अनुसार—शिक्षा मानव की सम्पूर्ण शक्तियों का प्राकृतिक प्रगतिशील और सामंजस्यपूर्ण विकास है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66)—"शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। शिक्षा राष्ट्रीय सम्पन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है।

शिक्षा के उद्देश्य—शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर अच्छे, विचारों का निर्माण करना है। मनुष्य के जीवन का मार्ग प्रशस्त करना है। गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य गीता के अनुसार शिक्षा यह है जो प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित परमात्मा की अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध हो। आत्मानुभूति शिक्षा द्वारा ही संभव है। जिस व्यक्ति के ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं, वे ही इस अन्तरात्मा को पहचान सकते हैं, अज्ञानी मोह के बंधन में पड़ा प्राणी अन्तरात्मा का दर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकता

“उत्क्रमन्त स्थितज्ञापि, मुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥”

इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है ।

स्थित प्रज्ञ—स्थित प्रज्ञ बुद्धिवाला आज के समय में विद्यार्थी की बुद्धि स्थिर नहीं है, बोलता कुछ है करता कुछ है। उसके विचारों में स्थिरता का अभाव देखने को मिलता है आज विद्यार्थी अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्र नहीं हो पाता है उसके मन और मस्तिष्क में अनेक प्रकार के द्वंद्व उत्पन्न होते हैं। इस विचारों को स्थिर करने के लिए श्री कृष्ण ने दूसरे अध्याय में बताया है कि स्थित प्रज्ञ का अर्थ है, जिसकी बुद्धि कंपन ना हो स्थित, कैसे रहता है, कैसे आचरण करता है। स्थिर प्रज्ञ व्यक्ति के मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके आत्मा द्वारा आत्मा को ही संतुष्ट करता है।⁵ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/55)

व्यक्ति में दुख की प्राप्ति होने पर भी उसका मन विचलित नहीं होता है और सुख की प्राप्ति होने पर प्रसन्न नहीं होता, स्थिर प्रज्ञ व्यक्ति आसक्ति, भय और क्रोध से मुक्त होता है।⁶ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/56)

जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगों को समेट कर रखता है। उसी प्रकार मनुष्य को अपने सभी इंद्रियों को विषयों से हटाकर अपनी ओर समेट कर रखना चाहिए। ऐसे ही स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति की इंद्रिय सब प्रकार से विषयों से हटाकर स्वयं में वशीभूत हो जाती है, यही स्थित बुद्धि वह है।⁷ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/58-68)

निष्काम कर्म करने की भावना जाग्रत करना—गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि “यज्ञार्थं कर्मणो यत्र लोकोय कर्म बन्धन”⁸ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/26) यज्ञ के अतिरिक्त कार्यों में लगी बुद्धिकर्म बंधन में फंस जाती है। व्यक्ति के अंदर निष्काम भाव नहीं आ पाता है। गीता विद्यार्थी के अंदर निष्काम वर्ति को विकसित करने की बात करती है। निष्काम कर्म योग का पालन करने से व्यक्ति फल के निमित्त कार्य नहीं करता है बल्कि कर्तव्य को करते हुए फल को ईश्वरार्पण करना चाहिए, जिससे व्यक्ति के अंदर हताशा निराशा आदि न आती है। इसलिए श्रीकृष्ण ने कहा है कि “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”⁹ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/47) कर्म करने में तेरा अधिकार है। फल में नहीं इसलिए कर्म के फल का हेतु मत हो

और कर्म करने में भी आसक्त न हो विद्यार्थी को ईमानदारी से कर्म करते रहना चाहिए फल के पीछे नहीं भागना चाहिए।

आत्मा की अनुभूति करना—गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया कि देह विनाशशील है, परिवर्तनशील है। लेकिन आत्मा अजर, अमर अविनाशी है न हन्यते हन्यमाने शरीरे¹⁰ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/20) शरीर के मर जाने पर भी आत्मा नहीं मरती है। जो आत्मा को मरा हुआ और शरीर को मरा हुआ समझते हैं, वे दोनों अज्ञानी हैं। क्योंकि आत्मा न तो मरती है और न किसी को मारती है।¹¹ (श्रीमद्भगवद्गीता 2/19)

अन्य उद्देश्य

(1) गीता ज्ञान के द्वारा भेद-अभेद को जानना

(2) मनुष्य को अज्ञानता से मुक्ति

(3) कर्म-ज्ञान, सत्य ज्ञान की प्राप्ति

शिक्षण विधि—श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार विद्यार्थी की योग्यता, क्षमता और उसकी रुचि के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। गीता का मुख्य विषय ज्ञान, कर्म एवं भक्ति है, इस तीनों को एक रूप प्रदान कर योग का नाम दिया है। इस योग के लिए जिन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया गया है जो इस प्रकार है—

कर्म योग—क्रिया विधि, अभ्यास विधि, स्वानुभव विधि

ज्ञान योग—तर्कपूर्ण विधि, संवाद विधि, स्वाध्याय विधि, आगमन—निगमन

विधि

भक्ति योग—श्रवण विधि, संगीत विधि, स्मरण विधि।

(1) तर्क

(2) प्रश्नोत्तर विधि

(3) प्रत्यक्ष विधि

(4) श्रवण, मनन, निदिध्यासन विधि

(5) करके सीखना

(6) प्रदर्शन विधि

(7) उपमान विधि

(8) संवाद विधि

शिक्षण विधि—उपनिषदों के समान गीता में भी शिक्षण के दो विषय बताये हैं। एक परा विद्या और दूसरा अपरा विद्या।

अपरा विद्या के अन्तर्गत—अपरा विद्या के अन्तर्गत भौतिक जगत का ज्ञान आता है, जिसे शरीर, इंद्रिय और मन की सहायता से प्राप्त किया जाता है। इसमें सभी प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन तथा मन बुद्धि से प्राप्त अनुभवात्मक ज्ञान आता है। 1. भौतिक सृष्टि का अध्ययन, 2. भौतिक उत्पादन की शिक्षा आजीविका के लिए शिक्षा (किसी एक उद्योग की शिक्षा)

परा विद्या अध्यात्म विद्या, अक्षर तत्त्व आत्म ज्ञान आता है, यह ज्ञान, नित्य, पूर्ण तथा सनातन है। इसमें जीव, जगत का अध्ययन और स्वास्थ्य तथा सुखी अध्ययन अपरा विद्या को सब कुछ मान लेने से शिक्षा की परिणति नहीं हो जाती परा विद्या तक पहुँचने का मार्ग है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार शिक्षण विषय निम्नलिखित हैं—

- (1) वेदों का ज्ञान एवं आत्मानुभूति
- (2) प्राचीन भारतीय संस्कृति का ज्ञान
- (3) मातृभाषा
- (4) धर्म की शिक्षा
- (5) योग एवं शारीरिक शिक्षा
- (6) शस्त्र ज्ञान

श्रीमद्भगवद्गीता संस्कार शिक्षा पर बल देती है। आदि हम स्वयं नम्रता, अनुशासन, परोपकार, करुणा आदि हम अपनाएँगे तो हम विद्यार्थी को हम कुछ न कुछ सीखा पाएँगे श्रीमद्भगवद्गीता विद्यार्थी को शिक्षित करके तथा ज्ञानी बनाने के लिए तीन प्रकार की शुद्धि बताई है।

- (1) शरीर संबंधी तप
- (2) वाणी संबंधी तप
- (3) मन संबंधी तप

गीता में योग शिक्षा

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के युज्ज शब्द से हुई है। जिसका अर्थ होता है संयुक्त या जुड़ाव। जुड़ाव का यह संप्रत्यय व्यक्ति की सर्वोच्च शक्ति से जुड़ाव को प्रदर्शित करती है। जहाँ तक योग की बात है प्राचीन काल से ही योग भारतीयों ऋषि-मुनियों के साथ पारंपरिक रूप से जुड़ा हुआ है।

मानव जाति के प्राचीनतम साहित्य वेदों में भी योग का उल्लेख मिलता है। वर्तमान आधुनिक समय में अनेक प्रकार के सुविधा के साधन उपलब्ध होने के बावजूद भी मनुष्य में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक तनाव और विकार उन्हें अस्वस्थ बना रहे हैं। तनाव का असर सबसे अधिक विद्यालय जाने वाले बच्चों में देखने को मिलता है। मानसिक तनाव छात्रों में असंतोष उत्पन्न करता है तथा बच्चों को ऐसे अनेक फैसलों की तरफ ले जाते हैं, जिससे वे आत्मघाती कदम तक उठाने को विवश हो जाते हैं। आधुनिक समय में तनाव संबंधी समस्याओं को देखते हुए विद्यालयी पाठ्यक्रमों में भी योग की शिक्षा को सम्मिलित किया जा सकता है ताकि बच्चों को तनाव मुक्त बनाया जा सके। बच्चों के तनाव का प्रतिकूल प्रभाव न सिर्फ उनके अकादमिक उपलब्धि पर पड़ता है, बल्कि इससे उनका व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन भी प्रभावित होता है। अतः विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं अन्य शिक्षण संस्थानों में योग की शिक्षा बेहतर शैक्षिक माहौल बनाने तथा विद्यालय वातावरण को तनावमुक्त रखने में काफी सहायक हो सकती हैं। इस शोध आलेख में विद्यालयों में योग शिक्षा का महत्त्व था विद्यालय तथा विद्यालय वातावरण को स्वस्थ बनाने में योग शिक्षा की भूमिका को प्रमुख रूप से रेखांकित किया जाएगा।

शिक्षण प्रतिफल—शिक्षण प्रतिफल में विद्यार्थी ने जो सीखा है वह उसके व्यवहार में परिवर्तन देखने को निम्न प्रकार से मिलता है—

- (1) विद्यार्थी का मन स्थिर हो जाता है।
- (2) व्यक्ति के गुणों का ज्ञान का विकास।
- (3) आंतरिक चेतना का विकास हो जाता है।
- (4) तर्क और बौद्धिक योग्यता का विकास हो जाता है।
- (5) जीवन में स्वधर्म की महत्त्व की स्थापना।

निष्कर्ष

योग के विविध ग्रंथों में अनेकों योग प्रणालियाँ दी गयी हैं। सभी प्रणालियाँ सफल एवं उत्कृष्ट व्यक्तित्व के निर्माण की शिक्षा देती हैं। योग की शिक्षा सदाचार एवं उच्चतर जीवन मूल्यों से अपना संबंध रखती हैं। जीवन मूल्यों में आयी गिरावट ही मानवीय व्यक्तित्व के पतन का कारण है। जब जीवन में राग-द्वेष, लोभ, स्वार्थ, विषाद, आलस्य, प्रमाद आदि विकास समाविष्ट हो जाते हैं तो व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है और

व्यक्ति का जीवन पतन-पराभव के गर्त में फँस जाता है। यौगिक शिक्षाओं को अपनाने से व्यक्ति का व्यक्तित्व इनसे उबरता है और उच्च स्तरीय होने लग जाता है।

यौगिक शिक्षा सदा विधेयात्मक दिशा में कार्य करती है। योग की शिक्षाएँ क्रमशः अज्ञान का हरण करती चलती हैं। अज्ञान के नाश के साथ अहंकार, राग-द्वेष और भय जैसे विकार स्वतः ही नष्ट होते चले जाते हैं। योगाभ्यास जीवनी शक्ति का संवर्धन और मनोबल का विकास करता है। इस प्रकार योग के प्रभाव में जहाँ शरीर हृष्ट-पुष्ट और प्राणशक्ति से परिपूर्ण होता है, वहीं अंतःकरण विकार रहित हो जाता है। परिणामतः योग के प्रभाव में मनुष्य का व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आत्मिक स्तरों पर अत्यंत सबल व सुविकसित बन जाता है।

सन्दर्भ-सूची

1. मिश्र, डॉ. जगदीशचन्द्र, भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुर भारती, वाराणसी: 2013.
2. रामसुखदास स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. मिश्र, प्रो. भास्कर, शिक्षक और समाज नाग पब्लिशर्स, दिल्ली : 2022
4. काटदरे इन्दुमति, भारतीय शिक्षा : संकल्पना एवं स्वरूप, पुनरुत्थान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट, अहमदाबाद
5. ओड़ डॉ. लक्ष्मीलाल के., शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर : 2011





Impact Factor : 7.510

ISSN : 2395 - 5104

शब्दार्णव **Shabdarnav**

International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research

Year-10

Vol.-19, Part-V

January-June, 2024

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief

DR. RAMKESHWAR TIWARI

Executive Editors

DR. KUMAR MRITUNJAY RAKESH

MR. RAGHWENDRA PANDEY

Published by

SAMNVAY FOUNDATION

Mujaffarpur, Bihar

योगवाशिष्ठ में कर्मयोग की अवधारणा: एक विवेचनात्मक अध्ययन

महादेवी चतुर्वेदी* व डॉ. प्रभाकर पाण्डेय**

प्रस्तावना- भारतीय ज्ञान परम्परा के ग्रंथों जैसे- वेद, पुराण, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण, आदि में विशेष रूप से योग का वर्णन मिलता है। इसी परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'योगवाशिष्ठ' है। जो कि अद्वैत वेदांत से संबंधित है। योगवाशिष्ठ में छः प्रकरण और 32000 श्लोक हैं। जिसमें महर्षि वशिष्ठजी ने श्री राम को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश दिया है। आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि के क्रम में इस ग्रन्थ में कर्मयोग का वर्णन भी देखने को मिलता है, जो श्री राम को आसक्ति रहित होकर कर्म करने के लिए प्रेरणा के रूप में प्राप्त होता है।

मनुष्य जीवन के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा में चार मार्ग राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग बताया गया है। साधना के इन चारों मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति को कर्ममार्ग का आश्रय लेना पड़ता है। इस मार्ग का आश्रय लिये बिना व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए किसी भी कार्य को करने के लिए अनासक्त भाव को स्थापित कर उसे पूर्ण करने के लिए कर्मयोग की आधार भूमिका होना आवश्यक है।

कर्मयोग का अर्थ - शब्दशास्त्रीय दृष्टि से कर्मयोग शब्द संस्कृत के दो शब्द से बना है - कर्म और योग से मिलकर। इन दोनों शब्दों के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ को स्पष्ट करके कर्मयोग के अर्थ को समझा जा सकता है। कर्म शब्द संस्कृत व्याकरण की 'कृ' (करना) धातु से निर्मित है। अर्थात्- जो भी कुछ किया जाये या जाता है, वह कर्म है। 'कृ' धातु के अन्त में मन प्रत्यय लगने पर कर्म शब्द निष्पन्न होता है। अर्थात् करना या किया जाना ये ही कर्म है। कर्म शब्द को परिभाषा की दृष्टि से समझे तो इसका अर्थ 'कर्मफल' भी होता है। दर्शन की दृष्टि से कर्म को समझें, तो इसका अर्थ कभी-कभी उस फल से लिया जाता है, जो पूर्व जन्मों से जुड़ा अर्थात् पिछले जन्मों में किये गये कर्म से है। वरन् कर्मयोग में कर्म शब्द से तात्पर्य है- केवल मात्र कार्य। यानि वह क्रिया जो फल से युक्त हो तो कर्म हो जायेगी और जिसमें कर्म को निष्कामता के साथ किया जाये तो वह कर्मयोग होगा। योग शब्द संस्कृत के 'युज' धातु में घञ्प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है- जोड़ना, संयोग और संयम करना आदिकर्म और योग के इन व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि कर्म योग वृत्ति रहित कुशल कर्म है। समस्त कर्मों और उनके फल को भगवान में समर्पित करके एवं ईश्वर में विश्वास रखकर आसक्ति को त्याग कर समभाव के साथ कर्म करना कर्मयोग है।

कर्म की परिभाषा -

स्वामी विवेकानंद के अनुसार - स्वार्थ से ऊपर उठाकर कुछ शास्त्र सम्मत एवं कुछ नैतिक दृष्टि से शुभ कर्मों को करना ही कर्म मार्ग है।

शंकराचार्य के अनुसार - कर्मयोग ज्ञान प्राप्ति का साधन मात्र है वह परमार्थ की प्राप्ति का अलग से स्वतन्त्र मार्ग नहीं है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म और योग की अवधारणा - भारतीय ज्ञान परम्परा के आधारभूत ग्रंथों जैसे कि वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि में कर्म और योग से सम्बंधित सूत्र मिलते हैं। इन ग्रंथों में कर्म और योग से संबंधी तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म योग की अवधारणा को स्पष्ट किया जा सकता है।

वैदिक ज्ञान के निर्वचन का शास्त्र मीमांसा वेद के कर्म परक व्याख्या को स्थापित करता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि क्रियाशील बनों प्रभु महिमा का प्रचार करो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ तथा विश्व को आर्य बनाओ ऐसा निर्देश हमें मिला है, अब प्रश्न अतः है कि कर्म की साधना कैसे करे तो यजुर्वेद में कहा गया है- त्याग पूर्वक स्वयं का पालन करना तथा किसी के धन की इच्छा न रखते हुये जीवन व्यतीत करने का निर्देश दिया गया है, वेद से आगे बढ़े तो उपनिषदों में भी निष्काम कर्म के प्रति ईशोपनिषद् का दूसरा मंत्र यह संदेश देता है कि कर्ता बनने का अभिमान त्याग कर निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए अहंकार रहित होकर स्वयं को ब्रह्म के प्रति समर्पित कर देना चाहिए। प्रस्तुत मन्त्र में यह बताने की चेष्टा की गयी है कि निष्काम कर्म करता हुआ मनुष्य कर्मबन्धन के जाल में नहीं फँसता वह संसार में शुभ कर्मों को करता हुआ सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भी मनुष्य किसी भी समय एक क्षण भी बिना कर्म

*शोधार्थी, वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची रायसेन (म.प्र.)

**विभागाध्यक्ष, वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची रायसेन (म.प्र.)

किये नहीं रह सकता है। सभी मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों के वशीभूत होने से कर्म करने के लिए विवश है। इस प्रकार सभी मनुष्य जन्म-मृत्यु की यात्रा के अन्तर्गत प्रकृति के गुणों द्वारा वशीभूत होकर कर्म में रत रहते हैं।²

शरीर की क्रिया शक्ति और मस्तिष्क की प्रखरता को नष्ट करने में आलस्य – प्रमाद से बढ़कर और कोई शत्रु नहीं है। इस लिए कर्मयोग करने की साधना में सर्वप्रथम और सबसे पहले आलस्य और प्रमाद का स्थान है

उपनिषदों में तीन प्रकार के कर्म बताये गया है -

1. **संचित कर्म-** अनन्त जन्मों से किये गये कर्म जो बीजरूप में तैयार हो गये तथा जो पहले से अर्जित कर्म वर्तमान में विद्यमान है उन्हें संचित कर्म कहते हैं। ये भोग बिना नष्ट नहीं होते व स्वयं से कभी नहीं रूकते, ये ज्ञान द्वारा ही अवरोधित होते हैं।³
2. **क्रियमाण कर्म** – वह कर्म जिसके द्वारा हम अपना जीवन को क्रम बद्ध तरीके से चला सके।
3. **प्रारब्ध कर्म-** जिन कर्मों के प्रभाव से हमारी जो यह देह इस लोक में उत्पन्न हुई है, जिसमें सुख-दुःख, माता-पिता, घर-गाँव, अमीरी-गरीबी, ऊँच-नीच यह सब प्राप्त है। वह कर्म प्रारब्ध है। ये कर्म भी भोग द्वारा नष्ट हो जाते हैं।⁴

वेद में कर्म के दो प्रकार बताया गया है -

- 1) **विहित कर्म-** वह कार्य जो करने योग्य है जिसमें अच्छाईया निहित होती है तथा स्वर्ण और इष्ट की प्राप्ति करते हैं इसके चार प्रकार हैं-
 - 1) नित्य कर्म
 - 2) नैमित्तिक
 - 3) कर्म्य
 - 4) प्रायश्चित्त
- 2) **निषिद्ध कर्म:** – नरक तथा अनिष्ट की प्राप्ति
 - 1) **विहित कर्म**
 - 1) नित्य कर्म – वह कार्य जो नित्य प्रति दिन अनुष्ठान के रूप में करते हैं जैसे दिनचर्या के सारे कर्म
 - 2) नैमित्तिक – किसी उद्देश्य के लिए किय गये कार्य जैसे – जन्मदिन, मुंडन संस्कार, विवाह
 - 3) काम्य – वह काम जो किसी कामना के इच्छा की पूर्ति के लिये किया जायेगा
 - 4) प्रायश्चित्त – वह कर्म जो किसी पापकर्म से मुक्ति पाने के लिए किये जाते हैं

योग दर्शन महर्षि पतंजलि द्वारा बताये गये कर्म के प्रकार

- 1) **कृष्ण-** ये पाप कर्म होते हैं, जो दूसरो को पीड़ा पहुचने का काम करते हैं। इन कर्मों को करने से मनुष्य को नरक व नीच योनियों की प्राप्ति होती है।
- 2) **शुक्ल-** ये पुण्य कर्म होते हैं ये कर्म दूसरो को पीड़ा पहुचये बिना ही हमको सुख-शांति प्रदान करते हैं ये मन के द्वारा किये जाते हैं इन कर्मों को करने से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति तथा उच्च लोकों की प्राप्ति होती है परन्तु ये कर्म भी बन्धन में ही डालते हैं।
- 3) **कृष्ण शुक्ल मिश्रित-** ये पाप पुण्य से मिश्रित कर्म होते हैं जिसमें मनुष्य को सुख व दुःख दोनों की प्राप्ति होती रहती है तथा कृष्ण, शुक्ल व मिश्रित कर्मों का फल मनुष्य को अनुकूल अवसर आते ही प्राप्त होते हैं
- 4) **अशुक्लाकृष्णम पाप-** पुण्य से रहित स्थिति अर्थात् पुण्य फल प्रदान करने वाला और न ही पाप फल प्रदान करने वाला कर्म, ऐसे कर्म योगी के कर्म होते हैं इस तरह योगी कर्म को करता हुआ फल में अपना भाव शून्य रखता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म के तीन प्रकार के बताये गये हैं

- 1) **कर्म-** सकाम भाव से युक्त होकर शास्त्रविहित क्रिया को करना
- 2) **अकर्म-** किसी भी कार्य या क्रिया को ममता तथा फल की इच्छा के लिए के भाव युक्त होकर काम करना
- 3) **विकर्म-** जो कर्म दूसरो के प्रति अहित का भाव रखकर किया जाते जाने वाले कार्य⁵

अतः इन सभी तथ्यों के विवेचन से कह सकते हैं कि व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक बिना कर्म के नहीं रहता जबसे व्यक्ति इस धरती पर आता है। तब से अपने कर्म में लग जाता है। मनुष्य के अन्दर कुछ न कुछ करने की सहज व स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। व्यक्ति को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए, भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थानों पर योग से

सम्बंधित ज्ञान का वर्णन मिलता है जैसे की वेदों में कहा गया है- विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग के पूर्ण अर्थात् सिद्ध नहीं होता है योग के माध्यम से किस प्रकार किसी कार्य को पूर्ण किया जाता है इस बात को **कठोपनिषद** में बताया गया है - जब पांचो इन्द्रिय मन के साथ स्थिर हो जाती है और बुद्धि निश्चेष्ट अर्थात् स्थिर हो जाती है। तब इसे सर्वोच्च पद प्राप्त हुआ मानते है इन्द्रियों की स्थिर धारणा योग की अवस्था है। इस स्थिति को प्राप्त हुआ योगी प्रमाद रहित हो जाता है मन के इस दृढ़निग्रह को ही योग की संज्ञा दी जाती है⁶ इसी बात को अगर श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है की कर्मों की कुशलता ही योग है साथ ही हर परिस्थिति में समभाव में रहना ही योग है महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा बताते हुये कहा है की **‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’**। (प.यो सू.1/2) अर्थात् चित्त की वृत्ति का निरोध करना ही योग है।

योग वाशिष्ठ में वशिष्ठ जी राम को योग के विषय में बताते है कि संसार सागर से मुक्त होने की युक्ति का नाम ही योग है।⁷ परमात्म स्थिति को प्राप्त जीव जो जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था के बीच से रहित है, जो तुर्यावस्था को प्राप्त है, जिसे चित्त व आनन्द का अनुभव है तथा जो आनन्द व परम ज्ञान है, ऐसी अनुभव युक्त अवस्था ही योग की प्राप्ति है। उस अमृतरूपी समुद्र कि जिसकी समस्त लहरें शान्त हो चुकी हो उसमें मन के अस्त हुए बिना योगावस्था की स्थिति को प्राप्त करना असम्भव **‘योगाभ्यास के तीन प्रकार** - एक तत्त्व का गहन अभ्यास, प्राणों का विरोध करना तथा मन का निग्रह करना

उक्त तीनों में से किसी एक का भी अभ्यास सिद्ध कर लिया जाये तो अन्य दो स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। इन तीनों योग प्रकारों में से चित्त (मन) को शान्त करना सर्वोत्तम है। इसके सिद्ध होने पर बहुत कम समय में ही कल्याण हो जाता⁹। **योगवासिष्ठ में कर्मयोग का स्वरूप** - योग वाशिष्ठ में कर्म योग के बारे में निर्वाण प्रकरण में महर्षि वशिष्ठ ने कर्मयोग के स्वरूप के विषय में कहा है कि - किसी भी चीज, वस्तु या पदार्थ का विचार न करने या मनन न करने से मन की विचार शून्य अवस्था ही योग है योग में स्थित होकर ही साधक को कर्म करना चाहिए और निषिद्ध कर्मों का सदैव त्याग करना चाहिए बन्धन के दर से साधक को अकर्म में कभी भी आसक्ति नहीं होना चाहिए¹⁰

उक्त रीति से जो पुरुष कर्म में अकर्म (निष्क्रिय ब्रह्म) देखता है तथा निष्क्रिय ब्रह्म (अकर्म) में अवश्य कर्तव्य कर्म देखता है, सभी मनुष्यों में वही बुद्धिमान् तथा समस्त कर्मों का कर्ता है। हे अर्जुन तुम फल की इच्छा से नहीं प्रत्युत् कर्तव्य समझकर तथा अनासक्त भाव से योगस्थ रहकर सड़ त्यागपूर्वक कर्म करो। कर्मों में आसक्ति का तत्त्वदृष्टि में प्रमाद का तथा निष्कर्मता का आश्रय न लेकर यथाप्राप्त कर्म करते हुए स्थित रहो। कर्म की फलासक्ति छोड़, सतत तृप्त तथा आश्रयहीन ज्ञानवान् पुरुष कर्ता होकर भी अकर्ता ही रहता है।¹¹

चूँकि कर्ता केवल एकमात्र स्पन्द धर्म के स्वभाव से युक्त होता है, अतः जब उक्त पूर्ण शुद्ध चेतन ही वास्तविकता में असत् स्पन्दरूप गुण द्वारा कर्ता को गुणी बनाता है तथा स्पन्द से प्राप्त फल का (देह व उसके अवयवों का अन्य देश में जुड़ाव का) सम्पादन करने के हेतु से दौड़ता-सा है, तब वह कर्म कहलाता है। अर्थात् क्रिया (स्पन्दन) ही जिसके एकमात्र स्वभाव है। इस प्रकार की वह कलना (चेतना) स्वयं के भीतर शून्यता की अनुभव करके जब क्रिया के द्वारा प्राप्त हुए फल की और दौड़ लगाती है तो ऐसी स्थिति को कर्म कहते हैं।

जिसको अभी तक ज्ञान की दृष्टि प्राप्त नहीं हुई है उसे कर्म प्राप्ति नहीं हुई उसे अपना कम्बल नहीं फेंक देना चाहिए। बहुत पर ही निर्भर रहना चाहिये - जैसे जिसे रेशम की बढ़िया चादर की कहने की जरूरत नहीं है - संक्षेप से यह बताता हूँ कि संकल्प ही मन को बाँधने वाला है और संकल्प के अभाव से मुक्ति होती है। न मनुष्य को कुछ करना है और न कुछ नहीं करना है ; सब कुछ अज, अनन्त और शान्त शिव ही है ; वही हो जाओ। सब कामों के फलरूपी मल को सुप्त पुरुष की नाई भूलकर, वेदना रहित होकर, जैसा अवसर पड़े वैसी क्रिया करते रहो। जिस प्रकार शुद्ध शीशे के भीतर प्रतिबिंब पड़ने की क्रिया आप से आप होती रहती है वैसे ही असक्त रहकर यथा प्राप्त कामों को सदा करते रहना चाहिए। जन्म के दुःखों को सदा दूर करने वाला यह बहुत अच्छा धैर्य है कि अपने कामों को वासनारहित होकर करने का अभ्यास रखे। आत्मज्ञानी के लिये कोई विधि (यह करना चाहिये) और निषेध (यह नहीं करना चाहिए) नहीं है। जिसकी सब इच्छायें शान्त हो गई हैं। उसे कौन और क्यों कुछ करने की आज्ञा देगा ? अज्ञानी व्यक्ति जिसने विषयों की ओर चित्त प्रवृत्त कर रखा है, क्रिया के भले बुरे जाने बिना उसको करता हुआ, मछली की नाई बहुत दुःख पाता है। ज्ञानी लोग जितेन्द्रिय होने के कारण, तत्त्वज्ञानी होने के कारण और वासनारहित होने के कारण इष्ट और अनिष्ट वस्तुओं के चक्कर में नहीं पड़ते। उनके लिये तो न कोई कर्म बुरा है और न कोई भला न त्याज्य है और न कार्य न अपना है और न दूसरे का। हे पापरहित राम तुमको महाकर्ता, महाभोक्ता और

महात्यागी बनना चाहिए सब शंकाओं को त्यागकर अनन्त धैर्य को धारण करो। महाकर्ता वह है जो रागद्वेष, सुख दुःख, धर्म और अधर्म, सफलता और विफलता आदि सबका भोग अनपेक्ष भाव से करता है। महा भोक्ता वह है जो न किसी वस्तु को चाहता है और न किसी वस्तु से द्वेष करता है, बल्कि सबका स्वाभाविक रीति से उपभोग करता है। महात्यागी उसे कहते हैं जिसने अपने मन के भीतर से बुद्धि पूर्वक सब इच्छाओं, तृष्णाओं, निश्चयों और शंकाओं को दूर कर दिया है। हे राम बाहर से सब काम करते हुए, मन के भीतर आशा, राग और वासना से रहित होकर संसार में विचरण करो बाहर से तो उदार और मनोहर आचरण वाले और सब प्रकार के सदाचारों के अनुसार क्रिया करने वाले, लेकिन भीतर से सबको त्याग किये हुए रहकर, संसार में विचरण करो। बाहर से सब प्रकार की आशाओं से पूर्ण, लेकिन भीतर कोई आशा न रखकर, बाहर तप्त और अन्दर शान्त रहकर संसार में विचरण करो। बाहर से सब प्रकार की क्रियाओं का सम्पादन करते हुए, अन्दर से कोई क्रिया न करते हुए बाहरी तौर पर कर्ता और भीतर से अकर्ता बने रहकर संसार में विचरण करो। बाहर से लोकोचित आकार के अनुसार क्रिया करते हुए अन्दर किसी आचार विचार के बन्धन में पड़ते हुए, अत्यन्त सम होकर सब वासनाओं को शान्त करके रहना चाहिए। जब तक शरीर कायम है तब तक करने योग्य कामों को सब इच्छाओं का त्याग करके और आत्मभाव में स्थित होकर करते ही रहना चाहिए। सत् और असत् के मध्य में अपनी स्थिति करके, और उस स्थिति का आश्रय लेकर, बाहर और भीतर के दृश्य को न प्राप्त करने की इच्छा करो न त्याग करने की। हे राम कामों को करते हुए भी राग रहित, अत्यन्त विरत, आत्मा में स्थित और वासनाओं से रहित होकर अपने मन को आकाश के समान शून्य रखो। बुद्धिमान लोगों में जैसे कर्म करने की कामना नहीं होती, वैसे ही कर्म त्यागने की भी कामना नहीं होती। इसलिये निष्काम बुद्धि से सोते हुए पुरुष की नाई यथा प्राप्त कामों को जरूर करो। जैसे किसी विशेष स्थान को जाने वाले पथिक के पैर बिना किसी संकल्प के ही उस स्थान की ओर पड़ते रहते हैं उसी प्रकार तुम भी संकल्प रहित होकर यथोचित क्रिया करते रहो। बिना किसी संकल्प के, सुख दुःख की भावना न करते हुए, यथा प्राप्त कामों को ऐसे करते रहो जैसे तृण अपनी इच्छा न करते हुए भी इधर से उधर उड़ता रहता है। जैसे- लकड़ी की मशीन, अपने आप कुछ रस न लेते हुए भी, दूसरों के लिये क्रिया करती है वैसे ही (लोकोपकार के लिये) काम करते हुए तुम्हारे मन के भीतर उसका स्वाद नहीं आना चाहिए। तुम्हारी इन्द्रियों की सभी वृत्तियाँ नीरस हो जानी चाहिये बाहर की ओर प्रवृत्त होते हुए भी उनमें चिदानन्द का ही रस होना चाहिये। जैसे चक्र शनैः शनैः घूमता रहता है, वैसे ही तुम भी यथा प्राप्त क्रियाओं को संकल्प और वासनाओं से रहित होकर करते ही रहो।¹²

उपसंहार- भारतीय ज्ञान परम्परा के सभी ग्रन्थ में कर्म को अधिक प्राथमिकता दी है। ज्ञान एवं मोक्ष के लिए निष्काम कर्म की आवश्यकता होती है। 'कर्म के बिना ज्ञान' और 'ज्ञान के बिना कर्म' का सम्यक संपादन कठिन साध्य है। व्यक्ति को बिना कर्म के कुछ नहीं मिलता है। जन्म से मृत्यु तक हर क्षण, हर समय कर्म करना ही पड़ता है। कर्मयोग के माध्यम से मनुष्य परिवर्तनशील संसार में कर्म करते हुए दुःख से मुक्त रहता है। ज्ञान के आभाव में व्यक्ति व्यर्थ ही मेहनत करता हुआ जीवन में थक महसूस करता है। इसलिए मनुष्य को जीवन के यथार्थ कर्मयोग द्वारा जानकर जीवन को सही ढंग से जीना चाहिए और समाज में उत्तम व्यवहार करते हुये कर्मयोग को बताना चाहिए जिससे व्यक्ति निराशा से मुक्त हो और अपने जीवन को आनंदपूर्ण तरीके से जी सके।

सन्दर्भ :

1. (ईशावस्योपनिषद् /2)
2. न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् । (भ.गी.3/5)
3. शंकराचार्य, (2019) , बी.तत्व बोध, सेन्ट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट मुंबई पेज.न. 52
4. इदं शरीरं उत्पाद्य इह लोके एवं सुखदुःखादि प्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं भोगेन नष्टं भवति प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति । वही पेज न. 53
5. रामसुखदास, श्रीमद्भगवद्गीता श्लोक संख्या 4/17
6. कठोपनिषद् (2/3/10-11)
7. योगवाशिष्ठ (6/3/13)
8. आत्रेय, डॉ. भीखन लाल (2003), योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण - जन्मस्थान सेवा- संस्थान मथुरा, पेज.न. 579
9. आत्रेय, डॉ. भीखन लाल (2003), योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण - जन्मस्थान सेवा- संस्थान मथुरा, पेज.न. 580
10. आर्य, सोमवीर एवं यादव धर्मवीर (2022), महर्षि वाशिष्ठ का योग दृष्टिकोण, इन्दु बुक सर्विसेज, पेज न. 35
11. (भ.गी 6/25), (भ.गी.6/26)
12. आत्रेय, डॉ. भीखन लाल (2003), योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धांत, श्री कृष्ण - जन्मस्थान सेवा- संस्थान मथुरा पेज.न. 668 - 671 शर्मा, पं. श्रीराम (2022), योग वाशिष्ठ, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज हरिद्वार

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
माधव संस्कृति न्यास, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
एवं भारत शोध संस्थान
के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

षष्ठ वार्षिक युवा इतिहासकार राष्ट्रीय संगोष्ठी

इतिहास पाठ्यक्रम : वर्तमान परिप्रेक्ष्य व चुनौतियाँ

HISTORY CURRICULUM: RECENT PERSPECTIVES AND CHALLENGES

वैशाख, शुक्ल पक्ष, षष्ठी-सप्तमी, कलियुगाब्द: ५१२४, विक्रमी संवत् २०७९,
तदनुसार शनिवार-रविवार, ०७-०८ मई, २०२२
स्थान : नरोन्हा प्रशासनिक अकादमी, शाहपुरा लेक, भोपाल, मध्य प्रदेश

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रोफे./डॉ./श्री/श्रीमती महादेवी चतुर्वेदी के द्वारा इतिहास पाठ्यक्रम : वर्तमान परिप्रेक्ष्य व चुनौतियाँ विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में विषय विशेषज्ञ/ विशिष्ट अतिथि /मुख्य अतिथि / आयोजक सदस्य के रूप में योगदान देकर राष्ट्रीय संगोष्ठी को सफल बनाया गया। आपके द्वारा योगवशिष्ठ में परिणत योगिक जीवन दर्शन का ऐतिहासिक महत्व : शीर्षक पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया गया। एक अध्ययन

हम आपके यशस्वी जीवन की कामना करते हुए इतिहास के आलोक में आपके निरन्तर राष्ट्रीय अवदान की अपेक्षा करते हैं।

डॉ. नीरजा गुप्ता
कुलपति

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

डॉ. बालमुकुन्द पोण्डेय
संगठन सचिव

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

डॉ. रत्नेश कुमार त्रिपाठी
संयोजक

षष्ठ वार्षिक युवा इतिहासकार संगोष्ठी

प्रोफे. अलकेश चतुर्वेदी
कुलसचिव/संयोजक

षष्ठ वार्षिक युवा इतिहासकार संगोष्ठी



अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्

(A member of FISP)



प्रमाण-पत्र / Certificate

◆ केन्द्रीय विषय - कृष्णभक्ति चिन्तन-धारा ◆

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/श्रीमती/डॉ./प्रो. महादेवी चतुर्वेदी

स्थान सांची, मध्य प्रदेश ने श्री ५ नवतनपुरी धाम खीजड़ा मंदिर ट्रस्ट, जामनगर
(गुजरात) द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन में सहभागिता की तथा दार्शनिक विमर्श किया।

संगोष्ठी / व्याख्यानमाला / विभागीय पत्र वाचन में प्रस्तुत आपके शोध-पत्र का शीर्षक था

..... श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा की अवधारणा का विवेचनात्मक

अध्ययन



आशिष
महामंत्री
अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्

दिलीप
आयोजन सचिव
66 वां अधिवेशन

सत्राध्यक्ष
जामनगर अधिवेशन